हिन्दी संरचना

(Hindi Structure)

देव कुमार

हिन्दी संरचना

हिन्दी संरचना
(Hindi Structure)

देव कुमार

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5608-0

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

'हिन्दी भाषा क्षेत्र' में हिन्दी भाषा के जो प्रमुख क्षेत्रगत रूप बोले जाते हैं, उनकी संख्या 20 है। भाषाविज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि प्रत्येक भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ होती हैं। किसी ऐसी भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती जो जिस 'भाषा क्षेत्र' में बोली जाती है, उसमें किसी प्रकार की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ न हों। भिन्नत्व की दृष्टि से तो किसी भाषा क्षेत्र में जितने बोलने वाले व्यक्ति रहते हैं, उस भाषा की उतनी ही 'व्यक्ति बोलियाँ' होती हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि भाषा की संरचक 'बोलियाँ' होती हैं तथा बोलियों की संरचक 'व्यक्ति बोलियाँ'। इसी को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि 'व्यक्ति बोलियों' के समूह को 'बोली' तथा 'बोलियों' के समूह को भाषा कहते हैं।

विश्व की प्रत्येक विकसित भाषा के विविध बोली अथवा उपभाषा क्षेत्रों में से विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से जब कोई एक क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है तो उस क्षेत्र के भाषा रूप का सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र में प्रसारण होने लगता है। इस क्षेत्र के भाषारूप के आधार पर पूरे भाषाक्षेत्र की 'मानक भाषा' का विकास होना आरम्भ हो जाता है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी इस भाषारूप को 'मानक भाषा' मानने लगते हैं। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी भले ही इसका उच्चारण नहीं कर पाते, फिर भी वे इसको सीखने का प्रयास करते हैं। इसको मानक मानने के कारण यह मानक भाषा रूप 'भाषा क्षेत्र' के लिए

सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाता है। मानक भाषा रूप की शब्दावली, व्याकरण एवं उच्चारण का स्वरूप अधिक निश्चित एवं स्थिर होता है एवं इसका प्रचार, प्रसार एवं विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में होने लगता है।

कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम एवं शिक्षा का माध्यम यही मानक भाषा रूप हो जाता है। इस प्रकार भाषा के 'मानक भाषा रूप' का आधार उस भाषा क्षेत्र की क्षेत्रीय बोली अथवा उपभाषा ही होती है, किन्तु मानक भाषा होने के कारण इसका प्रसार अन्य बोली क्षेत्रों अथवा उपभाषा क्षेत्रों में होने लगता है। इस प्रसार के कारण इस भाषारूप पर 'भाषा क्षेत्र' की सभी बोलियों का प्रभाव भी पड़ता है तथा यह भी सभी बोलियों अथवा उपभाषाओं को प्रभावित करता है। उस भाषा क्षेत्र के शिक्षित व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। भाषा के मानक भाषा रूप को सामान्य व्यक्ति अपने भाषा क्षेत्र की 'मूल भाषा', केन्द्रक भाषा', 'मानक भाषा' के नाम से पुकारते हैं। यदि किसी भाषा का क्षेत्र हिन्दी भाषा की तरह विस्तृत होता है तथा यदि उसमें 'हिन्दी भाषा क्षेत्र' की भांति उपभाषाओं एवं बोलियों की अनेक परतें एवं स्तर होते हैं तो 'मानक भाषा' के द्वारा समस्त भाषा क्षेत्र में विचारों का आदान-प्रदान सम्भव हो पाता है, संप्रेषणीयता सम्भव हो पाती है।

भाषा क्षेत्र के यदि अबोधगम्य उपभाषी अथवा बोली बोलने वाले परस्पर अपनी उपभाषा अथवा बोली के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान नहीं कर पाते तो इसी मानक भाषा के द्वारा संप्रेषण करते हैं। भाषा विज्ञान में इस प्रकार की बोधगम्यता को 'पारस्परिक बोधगम्यता' न कहकर 'एकतरफा बोधगम्यता' कहते हैं। ऐसी स्थिति में अपने क्षेत्र के व्यक्ति से क्षेत्रीय बोली में बातें होती हैं किन्तु दूसरे उपभाषा क्षेत्र अथवा बोली क्षेत्र के व्यक्ति से अथवा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा के द्वारा बातचीत होती हैं। इस प्रकार की भाषिक स्थिति को फर्गुसन ने बोलियों की परत पर मानक भाषा का अध्यारोपण कहा है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	हिंदी भाषा की उत्पत्ति	2
	हिन्दी की विशेषताएँ एवं शक्ति	7
	हिन्दी के विकास की अन्य विशेषताएँ	8
	हिन्दी की शैलियाँ	9
	राजभाषा के रूप में हिंदी	9
	तकनीकी भाषा के रूप में हिंदी	11
	हिंदी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव	12
	हिंदी भाषा का स्वरूप	13
	हिन्दी भाषा का क्षेत्र एवं हिन्दी के क्षेत्रगत रूप	15
	भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की मजबूती	20
2.	**भाषाई संरचना**	**25**
	परिभाषा	26
	बोली, विभाषा, भाषा और राजभाषा	28
	राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा	29
	भाषा के विभिन्न रूप	30
	बोलचाल की भाषा	30

मानक भाषा 31
सम्पर्क भाषा 31
राजभाषा 32
राष्ट्रभाषा 32
मातृभाषा हिन्दी 34
प्रादेशिक भाषाएँ एवं 8वीं अनुसूची की समीक्षा 37
राजभाषा अधिनियम के प्रावधान 39
3. लिपि संरचना 41
लिपि का आविष्कार 41
भारत में लिपि का इतिहास 42
देवनागरी लिपि 43
देवनागरी लिपि 47
देवनागरी लिपि का नामकरण 48
हिन्दी भाषा की लिपि के रूप में विकास 50
देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता 54
देवनागरी लिपि का स्वरूप 56
भूमिका 63
नन्दिनागरी लिपि 66
राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देवनागरी लिपि 72
भाषा एवं लिपि का संबन्ध 84
भाषा और लिपि साम्य-वैषम्य 86
4. साहित्यिक संरचना 88
कविता 89
मनोरंजन और स्वभाव-संशोधन 90
कविता की आवश्यकता 92
सृष्टि-सौन्दर्य 93
कविता की भाषा 94
कहानी 97
प्रेमचंद और प्रसाद 98
उग्र और जैनेन्द्र 101
हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास 108

नाटक 109
हिन्दी रंगमंच और भारतेन्दु हरिश्चंद्र 110
स्वतंत्रता के पश्चात 114
स्वतंत्रता-पूर्व युग 120
भारत में जीवनचरित 127
सैद्धांतिक आलोचना 131
प्रगतिवादी आलोचना 132
5. व्याकरणीय संरचना 141
वर्ण-विचार 141
मात्राएँ 143
अर्थ की दृष्टि से शब्द-भेद 148
संज्ञा के विकारक तत्त्व 152
कारक विभक्ति चिन्ह (परसर्ग) 164
वाच्य 182
वाच्य परिवर्तन 184
क्रिया-विशेषण 184
संबंधबोधक अव्यय 185
समास के भेद 200

1

विषय बोध

भाषा के साहित्यिक रूप के अतिरिक्त लोक साहित्य में धड़कता भाषा का जनपदीय रूप, जनजीवन का आईना माना जाता है। जनपदीय भाषाओं में अवधी, ब्रज, भोजपुरी मगही, मैथिली, छत्तीसगढ़ी आदि प्रमुख हैं, जिनसे साहित्य समृद्ध हुआ है। ब्रज एवं अवधी में रचे गए साहित्य का अनुशीलन न केवल ब्रज क्षेत्र एवं अवध के जीवन एवं साहित्य को समझने के लिए आवश्यक है, अपितु एक लम्बे समय तक हिंदी साहित्य में इन दोनों जनपदीय भाषाओं ने अपना प्रभाव अमिट रखा। एक से दूसरी पीढ़ी को वाचिक परम्परा द्वारा साहित्य की संपदा हस्तांरित होती रही इन्हें संरक्षित करने का कार्य बीसवीं सदी में प्रारंभ हुआ। लोक साहित्य में भारतीय संस्कृति की सुवास रची बसी है। ग्राम्य परिवेश यहीं साकार होता देखा जा सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में धान का कटोरा कहे जाने वाले छत्तीसगढ़ की माटी की गंध, छत्तीसगढ़ी साहित्य के अनुशीलन द्वारा महसूस की जा सकती है।

हिंदी भाषा के अध्ययन में उसकी संरचना के प्रत्येक आयाम को समझना आवश्यक है। तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, संकर आदि शब्द प्रकार स्पष्ट करते हैं कि जननी भाषा संस्कृत की शब्दावली के अतिरिक्त वर्तमान हिंदी भाषा में उपलब्ध शब्द एवं भाषा का स्वरूप यह स्पष्ट करता है कि भाषा किस तरह शब्दों के लालन-पालन, परिवर्तन एवं नवनिर्माण की प्रक्रिया को वहन करती है, शब्दों की यात्र से भाषा की विकास यात्र की कहानी सुनी एवं समझी जा सकती है। हिंदी भाषा के स्वरूप के लिए संधि, समास, संक्षिप्तियों जैसे अध्याय हिंदी भाषा

की नींव को मजबूत करने के लिए आवश्यक हैं, वहीं स्थानीयता के आधार पर या अन्यान्य कारणों से होने वाली भाषागत त्रुटियों को समझकर उसका संशोधन, सुधार या परिष्कार भाषा के प्रति होने वाले न्याय का आवश्यक पक्ष है। छोटी-छोटी कविताओं के भावबोध, रोचक व्यंग्य, शब्द चित्र आदि के अध्ययन, सदैव भाषागत कौशल को विकसित करते हैं। हिंदी भाषा के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि उसकी विविध प्रयोजनीयता के अनुकूल उसकी धड़कनें चित्रपट, रंगमंच, साक्षात्कार, भारतीय संगीत में सुनी जाएँ।

वर्तमान प्रौद्योगिकी के युग में लिपि को लेकर उठ रहे प्रश्नों के साथ ही देवनागरी लिपि की विकास यात्र एवं इतिहास को जानना आवश्यक है। देवनागरी लिपि के स्वरूप का अध्ययन एवं उसकी वैज्ञानिकता स्वमेव ही यह सिद्ध करती है कि उसमें परिवर्तन तो हो सकता है, किंतु उसका बना रहना क्यों आवश्यक है? समस्त तथ्य इस विषय के अध्ययन द्वारा साहित्य एवं भाषा संबंधी समझ को विकसित करने में सहायक होंगे।

हिंदी भाषा की उत्पत्ति

प्रारम्भिक अवस्था में मानव ने अपने भावों-विचारों को अपने अंग संकेतों से प्रषित किया होगा बाद में इसमें जब कठिनाई आने लगी तो सभी मनुष्यों ने सामाजिक समझौते के आधार पर विभिन्न भावों, विचारों और पदार्थों के लिए अनेक ध्वन्यात्मक संकेत निश्चित कर लिए। यह कार्य सभी मनुष्यों ने एकत्र होकर विचार विनिमय द्वारा किया। इस प्रकार भाषा का क्रमिक गठन हुआ और एक सामाजिक पृष्ठभूमि में सांकेतिक संस्था द्वारा भाषा की उत्पत्ति हुई।

प्रत्येक भाषा लोगों की आत्मा की निशानी और शक्ति है, जो स्वाभाविक रूप से इसे उन्हें अभिव्यक्त करती है। इसलिए प्रत्येक के अपने विचार-स्वभाव ,जीवन ,ज्ञान और अनुभव व्यक्त करना का तरीका विकसित होता है 3। इसलिए किसी राष्ट्र के लिए या मानव समूह- का सबसे बड़ा मूल्य है, अपनी भाषा को संरक्षित करना और इसे एक मजबूत और जीवित संस्कृति का साधन बनाना। एक राष्ट्र, जाति या एक व्यक्ति, जो अपनी भाषा खो देता है, अपना संपूर्ण जीवन या उसका वास्तविक जीवन नहीं जी सकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में, संस्कृत के उद्भव के बाद, कई नई भाषाएँ समय के साथ विकसित हुई और बाद के पूर्ण उन्मूलन के बिंदु तक उनकी स्रोत भाषा को बदल दिया गया। कोई भी सिद्धांत या संभावना इस बात की जानकारी प्रदान

नहीं करता है कि संस्कृत के लिए स्रोत भाषा एशिया माइनर से नहीं बल्कि उपमहाद्वीप के भीतर से आई है, और यह कि संस्कृत का एक पुराना संस्करण ही स्रोत भाषा थी। वैदिक लोगों की उत्पत्ति और पृष्ठभूमि के बारे में इतिहासकारों के बीच काफी विवाद रहा है। न्यूजीलैंड के ऑकलैंड विश्वविद्यालय की विकासवादी जीवविज्ञानी क्विनटिन एटकिंसन ने अपने शोध के दौरान पाया कि इंडो-यूरोपीयन समूह की भाषाएँ पश्चिमी एशिया के एक ही इलाके में पैदा हुई हैं। उनके अनुसार ऐसा करीब 8000 से 9500 हजार साल पहले हुआ था। शोध के दौरान उन्होंने करीब 100 से ज्यादा प्राचीन और समकालीन भाषाओं का कंप्यूटर के माध्यम से अध्यन किया और पाया कि यह सभी भाषाएँ अनातोलिया के इलाकों में पैदा हुई हैं।

सिंधु सभ्यता मूल रूप से एक भारतीय मामला था, जिस पर बाहर की दुनिया का कम या कोई प्रभाव नहीं था और वे शायद वैदिक लोगों के पहले के चचेरे भाई थे, कुछ द्रविड़ तत्त्वों के साथ पुरानी संस्कृत के रूढ़िवादी रूप को भाषा के रूप में प्रयोग करते थे और कृषि, धातु विज्ञान, शहरी नियोजन, व्यापार और वाणिज्य के विशेषज्ञ थे।सभ्यता शायद 6000 ईसा पूर्व के आसपास शुरू हुई, क्योंकि ईरान के सीमाओं तक, उपमहाद्वीप के विशाल क्षेत्र में खेती और खाद्य एकत्रीकरण समुदाय फैला हुआ है। इसने दो चरणों में अपना चरम स्थान प्राप्त किया। पहले चरण में, शायद लगभग 4500 ईसा पूर्व, यह छोटे गाँव की बस्तियों में विकसित हुआ और फिर 3500 ईसा पूर्व या उससे भी पहले सुव्यवस्थित और समृद्ध शहरी शहरों में विकसित हुआ। सिंधु लोग संभवत: सरस्वती नदी के एक क्षेत्र में रहते थे, जो अब विलुप्त हो चुका है, इससे पहले कि वे अन्य क्षेत्रों में चले गए, जलवायु परिवर्तन से मजबूर हो गए।

संभवत: 2500 ईसा पूर्व के आस-पास सिंधु संस्कृति द्वारा वैदिक संस्कृति अपना ली गई और, संस्कृत संचार की प्रमुख भाषा के रूप में, कम से कम समाज के कुलीन और शासक वर्गों के बीच में स्थापित हो चुकी थी। इस समय तक संस्कृत पहले से ही एक पूर्ण विकसित भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी जैसा कि वेदों में पाए गए सबसे पहले के संस्कृत श्लोकों से स्पष्ट होता है।

संस्कृत के प्रत्येक स्वर और व्यंजन में एक विशेष और अविवेकी बल होता है, जो चीजों की प्रकृति और विकास या मानव की पसंद से मौजूद होता है, ये मूलभूत ध्वनियाँ हैं, जो तांत्रिक द्विजमंत्रों के आधार पर निहित हैं और मंत्र की प्रभावकारिता का गठन करती है। मूल भाषा के प्रत्येक स्वर और प्रत्येक

व्यंजन के कुछ प्राथमिक अर्थ होते थे, जो इस आवश्यक शक्ति या बल से उत्पन्न हुए थे और अन्य व्युत्पन्न अर्थों के आधार थे। स्वरों के साथ, व्यंजन और किसी भी संयोजन के बिना, स्वरों ने स्वयं कई प्राथमिक जड़ें बनाईं, जिनमें से द्वितीयक जड़ों को अन्य व्यंजन के अतिरिक्त विकसित किया गया था। सभी शब्द इन जड़ों से बने थे

हिंदी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है? किन पूर्ववर्ती भाषाओं से वह निकली है? वे कब और कहाँ बोली जाती थीं? हिंदी को उसका वर्तमान रूप कब मिला? इस पर बहुत मत और वादविवाद हो सकतें हैं, किन्तु कितने ही वैदिक छंद तक अवस्ता में तद्वत् पाए जाते हैं। इन उदाहरणों से साफ जाहिर है कि वैदिक आर्यों के पूर्वज किसी समय वही भाषा बोलते थे जो कि ईरानी आर्यों के पूर्वज बोलते थे। अन्यथा दोनों की भाषाओं में इतना सादृश्य कभी न होता। भाषा सादृश्य ही नहीं, किंतु अवस्ता को ध्यान-पूर्वक देखने से और भी कितनी ही बातों में विलक्षण सादृश्य देख पड़ता है। संस्कृत और अवस्ता की भाषा में इतना सादृश्य है कि दोनों का मिलान करने से इस बात में जरा भी संदेह की जगह नहीं रह जाती कि किसी समय ये दोनों भाषाएँ एक ही थी। शब्द, धातु, कृत, तद्धित, अव्यय इत्यादि सभी विषयों में विलक्षण सादृश्य है।

अशोक के समय में दो तरह की प्राकृत प्रचलित थी—एक पश्चिमी, दूसरी पूर्वी। इनमें से प्रत्येक का गुण-धर्म जुदा-जुदा है—प्रत्येक का लक्षण अलग-अलग है। पश्चिमी प्राकृत का मुख्य भेद शौरसेनी है। वह शूरसेन प्रदेश की भाषा थी। गंगा-यमुना के बीच के देश में, और उसके आस पास, उसका प्रचार था। पूर्वी प्राकृत का मुख्य भेद मागधी है। वह उस प्रांत की भाषा थी, जो आज कल बिहार कहलाता है। इन दोनों देशों के बीच में एक और भी भाषा प्रचलित थी। वह शौरसेनी और मागधी के मेल से बनी थी और अर्द्ध-मागधी कहलाती थी। सुनते हैं, जैन-तीर्थ कर महावीर इसी अर्द्ध-मागधी में जैन-धर्म का उपदेश देते थे। पुराने जैन ग्रंथ भी इसी भाषा में हैं। अर्द्ध-मागधी की तरह की और भी भाषा प्रचलित थी।

हिंदी की शब्दावली मुख्यत: संस्कृत से ली गई है। अन्य इंडो-आर्यन भाषाओं की तरह हिंदी अपने वर्तमान आकार में 10 वीं शताब्दी के आस-पास आकार लेने लगी। लेकिन 14 वीं शताब्दी से पहले यह सौरासेनी अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित था। दिलचस्प बात यह है कि सौरासेनी ने पंजाबी को भी जन्म दिया।

सबसे पुरानी हिंदी मिस्टिको–भक्ति काव्य–गोरख नाथ 1150 के पद्य और वेणी, महान नाथ पंथ के शिक्षक और अन्य समकालीन योगी हठ-योग के दर्शन और अभ्यास का उपदेश भी इसी अवधि में दिया गया है। लेकिन उनकी भाषा बहुत बदली हुई है और यह तय करना मुश्किल है कि इनमें से कितनी रचनाएँ वास्तविक हैं। इन कविताओं में शुद्ध जीवन की आवश्यकता, भौतिक समृद्धि से अलगाव और वास्तविक ज्ञान पर जोर दिया गया, जिसने बाद के काल के भक्त कवियों के लिए जमीन तैयार की।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल का समय 1500 ईसा पूर्व से लेकर 500 ईसापूर्व तक माना गया है इसमें वेदों ,ब्राह्मण ग्रंथो एवं पाणनि की अष्टाध्यायी की रचना हुई। हिंदुस्तान की वर्तमान संस्कृतोत्पन्न भाषाओं का जन्म कोई 1000 ईस्वी के लगभग हुआ। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा काल 500 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी सन तक माना जाता है इस समय लोक भाषा का विकास हुआ और उन्हें पालि (500 ईसा पूर्व से -1 ईसा पूर्व तक) प्राकृत (1 ईसा से 500 ईस्वी तक) अपभ्रंश (500 ईस्वी से 1000 ईस्वी तक) भाषा का नाम दिया गया। अभी तक माना जाता था कि ब्राह्मी लिपि का विकास चौथी से तीसरी सदी ईसा पूर्व में मौर्यों ने किया था, पर भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण के ताजा उत्खनन से पता चला है कि तमिलनाडु और श्रीलंका में यह 6ठी सदी ईसा पूर्व से ही विद्यमान थी। यह लिपि प्राचीन सरस्वती लिपि (सिन्धु लिपि) से निकली, अतः यह पूर्ववर्ती रूप में भारत में पहले से प्रयोग में थी। सरस्वती लिपि के प्रचलन से हट जाने के बाद प्राकृत भाषा लिखने के लिये ब्रह्मी लिपि प्रचलन में आई। ब्रह्मी लिपि में संस्कृत में ज्यादा कुछ ऐसा नहीं लिखा गया जो समय की मार झेल सके। भारतीय आचार्यों ने शब्दों की दो स्थितियाँ–सिद्ध एवं असिद्ध दी हैं। इनमें "असिद्ध" शब्द को केवल "शब्द" तथा "सिद्ध" शब्द को "पद" के रूप में परिणत किया जाता है। "सिद्धि" के सुंबत (नाम) एवं तिङंत (क्रिया) तथा "असिद्ध" के कई भेद प्रभेद किए गए हैं। यहाँ तक कि संस्कृत का प्रत्येक शब्द "धातुज" ठहराया गया है। व्याकरण शास्त्र का नामकरण एवं उनकी परिभाषा इसी प्रक्रिया को ध्यान में रख कर की गई है यथा, शब्दानुशसन (महर्षि पतंजलि एवं आचार्य हेमचंद्र) तथा "व्याक्रियंते विविच्यंते शब्दाः अनेन इति व्याकरणम्।" पाश्चात्य विद्वान् धात्वंश को आवश्यक नहीं मानते, वे आधार रूपांशों (इंम-मसमउमदजे) को नाम एवं आख्यात् दोनों के लिये अलग-अलग स्वीकार करते हैं। वस्तुतः बहुत-सी भाषाओं के लिये धात्वंश आवश्यक नहीं।

प्राकृतध्पाली भाषा में लिखे गये मौर्य सम्राट अशोक के बौद्ध उपदेश आज भी सुरक्षित है।जो शब्द संस्कृत से आ कर प्राकृत में मिल गए हैं वे "तत्सम" शब्द कहलाते हैं। और मूल प्राकृत शब्द जो सीधे प्राकृत से आए हैं "तद्भव' कहलाते हैं। पहले प्रकार के शब्द बिलकुल संस्कृत हैं। दूसरे प्रकार के प्रारंभिक प्राकृत से आए हैं, अथवा यों कहिए कि वे उस प्राकृत या प्राकृत की उस शाखा से आए हैं जिससे खुद संस्कृत की उत्पत्ति हुई हैं। हिंदी ही पर नहीं, किंतु हिंदुस्तान की प्राय: सभी वर्तमान भाषाओं पर, आज सैकड़ों वर्ष से संस्कृत का प्रभाव पड़ रहा है। संस्कृत के अनंत शब्द आधुनिक भाषाओं में मिल गए हैं। परंतु उसका प्रभाव सिर्फ वर्तमान भाषाओं के शब्द-समूह पर ही पड़ा है।

500 ई। के आसपास उत्तर भारत में, अपभ्रंश बोलियाँ प्राकृत से विकसित हुई। उन्होंने 13 वीं शताब्दी ईस्वी तक एक प्रकार के लिंगुआ फ्रेंका के रूप में कार्य किया और दिल्ली सल्तनत के फारसी शासकों द्वारा हिंदवी के रूप में संदर्भित किया गया, जिन्होंने 1206 से 1526 तक भारत के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर शासन किया। हिंदी भाषा अपभ्रंश के आसपास से बिखर रही थी। 11वीं शताब्दी ईस्वी, उनमें से अधिकांश 12वीं तक पूरी तरह से अलग थे, हालांकि कई स्थानों पर अपभ्रंश भाषाएँ अभी भी समानांतर में बोली जाती थीं।यह दिल्ली सल्तनत के अधीन था कि फारसी भाषा ने पहले स्थानीय अपभ्रंश बोलियों के साथ मिश्रण करना शुरू किया था, जो बाद में हिंदी और उर्दू भाषा बन गई।

उत्तरी भारत में बोली जाने वाली भाषाएँ, इंडो-ईरानी शाखा के इंडो-आर्यन संस्कृत समूह से पनपी हैं, जो बड़े भारत-यूरोपीय परिवार से संबंधित है। संस्कृत, आज की पूरी तरह से मृत भाषा है, लेकिन संस्कृत और पाली, जो प्राचीन काल से जीवित रहने वाली दो भाषाएँ हैं, आज भी महत्त्वपूर्ण हैं– संस्कृत भारत और हिंदू धर्म की शास्त्रीय भाषा है, जिसमें अधिकांश धर्मग्रंथ (वृंदावन), महाकाव्य (महाभारत, भगवत गीता) और प्राचीन साहित्य लिखा जाता है। पाली का उपयोग थेरवाद बौद्ध धर्म की प्रचलित और विद्वतापूर्ण भाषा के रूप में किया जाता है, क्योंकि बौद्ध धर्म की उत्पत्ति सबसे पहले बिहार, भारत में हुई थी। उत्तर भारत की अधिकांश आधुनिक भाषाएँ इन दो भाषाओं जैसे हिंदी, उर्दू, पुनाजाबी, गुजराती, बंगाली, मराठी, कश्मीर, सिंधी, कोंकणी, राजस्थानी, असमिया और उड़िया से उपजी हैं।

हिन्दी की विशेषताएँ एवं शक्ति

हिंदी भाषा के उज्ज्वल स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी गुणवत्ता, क्षमता, शिल्प-कौशल और सौंदर्य का सही-सही आकलन किया जाए। यदि ऐसा किया जा सके तो सहज ही सब की समझ में यह आ जाएगा कि-

1. संसार की उन्नत भाषाओं में हिंदी सबसे अधिक व्यवस्थित भाषा है।
2. वह सबसे अधिक सरल भाषा है।
3. वह सबसे अधिक लचीली भाषा है।
4. हिंदी दुनिया की सर्वाधिक तीव्रता से प्रसारित हो रही भाषाओं में से एक है।
5. वह एक मात्र ऐसी भाषा है जिसके अधिकतर नियम अपवादविहीन है।
6. वह सच्चे अर्थों में विश्व भाषा बनने की पूर्ण अधिकारी है।
7. हिंदी का शब्दकोष बहुत विशाल है और एक-एक भाव को व्यक्त करने के लिए सैकड़ों शब्द हैं।
5. हिन्दी लिखने के लिये प्रयुक्त देवनागरी लिपि अत्यन्त वैज्ञानिक है।
9. हिन्दी को संस्कृत शब्द संपदा एवं नवीन शब्द-रचना-सामर्थ्य विरासत में मिली है। वह देशी भाषाओं एवं अपनी बोलियों आदि से शब्द लेने में संकोच नहीं करती। अंग्रेजी के मूल शब्द लगभग 10,000 हैं, जबकि हिन्दी के मूल शब्दों की संख्या ढाई लाख से भी अधिक है।
10. हिन्दी बोलने एवं समझने वाली जनता पचास करोड़ से भी अधिक है।
11. हिंदी दुनिया की दुनिया की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।
12. हिन्दी का साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है।
13. हिन्दी आम जनता से जुड़ी भाषा है तथा आम जनता हिन्दी से जुड़ी हुई है। हिन्दी कभी राजाश्रय की मोहताज नहीं रही।
14. भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की वाहिका और वर्तमान में देशप्रेम का अमूर्त-वाहन

भारत की सम्पर्क भाषा
भारत की राजभाषा

हिन्दी के विकास की अन्य विशेषताएँ

हिन्दी पत्रकारिता का आरम्भ भारत के उन क्षेत्रों से हुआ जो हिन्दी-भाषी नहीं थे/हैं (कोलकाता, लाहौर आदि।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन अहिन्दी भाषियों (महात्मा गांधी, दयानन्द सरस्वती आदि) ने आरम्भ किया।

हिन्दी भाषा सदा से उत्तर-दक्षिण के भेद से परे चहुंदिशी व्यावहारिक होती चली आई है। उदाहरण के लिये दक्षिण के प्रमुख संतो वल्लभाचार्य, विट्ठल, रामानुज, रामानन्द आदि महाराष्ट्र के नामदेव तथा संत ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान के दादू, रज्जब, मीराबाई, पंजाब के गुरु नानक, असम के शंकरदेव, बंगाल के चौतन्य महाप्रभु तथा सूफी संतो ने अपने धर्म और संस्कृति का प्रचार हिन्दी में ही किया है। इन्होने एक मात्र सशक्त साधन हिन्दी को ही माना था।

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है।

हिन्दी के विकास में राजाश्रय का कोई स्थान नहीं है, इसके विपरीत, हिन्दी का सबसे तेज विकास उस दौर में हुआ जब हिन्दी अंग्रेजी-शासन का मुखर विरोध कर रही थी। जब-जब हिन्दी पर दबाव पड़ा, वह अधिक शक्तिशाली होकर उभरी है।

जब बंगाल, उड़ीसा, गुजरात तथा महाराष्ट्र में उनकी अपनी भाषाएँ राजकाज तथा न्यायालयों की भाषा बन चुकी थी उस समय भी संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की भाषा हिन्दुस्तानी थी (और उर्दू को ही हिन्दुस्तानी माना जाता था जो फारसी लिपि में लिखी जाती थी)।

19वीं शताब्दी तक उत्तर प्रदेश की राजभाषा के रूप में हिन्दी का कोई स्थान नहीं था। परन्तु 20वीं सदी के मध्यकाल तक इसे भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव दिया गया।

हिन्दी के विकास में पहले साधु-संत एवं धार्मिक नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उसके बाद हिन्दी पत्रकारिता एवं स्वतंत्रता संग्राम से बहुत मदद मिलीय फिर बंबइया फिल्मों से सहायता मिली और अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (टीवी) के कारण हिन्दी समझने-बोलने वालों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

हिन्दी की शैलियाँ

भाषाविदों के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं–

(1) उच्च हिन्दी – हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द है, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (खघस तौर पर बोलचाल की भाषा में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।

(2) दक्खिनी – उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आसपास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

(3) रेखता – उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।

(4) उर्दू – हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं, और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ीबोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी-अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली। इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है। उर्दू पाकिस्तान की और भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर की राजभाषा है, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, तेलंगाना और दिल्ली में द्वितीय राजभाषा है। यह लगभग सभी ऐसे राज्यों की सह-राजभाषा है, जिनकी मुख्य राजभाषा हिन्दी है।

राजभाषा के रूप में हिंदी

भारत के संविधान में देवनाग री लिपि में हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है (अनुच्छेद 343(1)). हिंदी की गिनती भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल पच्चीस भाषाओं में की जाती है।

भारतीय संविधान में व्यवस्था है कि केंद्र सरकार की पत्रचार की भाषा हिंदी और अंग्रेजी होगी। यह विचार किया गया था कि 1965 तक हिंदी पूर्णत: केंद्र सरकार के कामकाज की भाषा बन जाएगी (अनुच्छेद 344 (2)) और अनुच्छेद 351 में वर्णित निदेशों के अनुसार), साथ में राज्य सरकारें अपनी पंसद की भाषा में कामकाज संचालित करने के लिए स्वतंत्र होगी। लेकिन राजभाषा अधिनियम (1963) को पारित करके यह व्यवस्था की गई कि सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग भी अनिश्चित काल के लिए जारी रखा जाए अत: अब भी सरकारी दस्तावेजों, न्यायालयों आदि में अंग्रेजी का इस्तेमाल होता है। हालांकि, हिंदी के विस्तार के संबंध में संवैधानिक निदेश बरकरार रखा गया।

राज्य स्तर पर हिंदी भारत के निम्नलिखित राज्यों की राजभाषा है– बिहार, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और दिल्ली ये प्रत्येक राज्य अपनी सह-राजभाषा भी बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर उत्तर प्रदेश में यह भाषा उर्दू है। इसी प्रकार कई राज्यों में हिंदी को भी सह-राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है।

वैश्विक भाषा के रूप में हिंदी–भाषा–यह उल्लेख करना उचित होगा कि विदेशियों में भी भारत की धनी संस्कृति को समझने की रुचि बढ़ी है। यही वजह है कि कई देशों ने अपने यहां भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने के लिए शिक्षण केंद्रों की स्थापना की है।

भारतीय धर्म, इतिहास और संस्कृति पर विभिन्न पाठ्यक्रम संचालित करने के अलावा इन केंद्रों में हिंदी, उर्दू और संस्कृत जैसी कई भारतीय भाषाओं में भी पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं। वैश्वीकरण और निजीकरण के इस परिदृश्य में अन्य देशों के साथ भारत के बढ़ते व्यापारिक संबंधों को देखते हुए संबंधित व्यापारिक साझेदार देशों की भाषाओं की अन्तर-शिक्षा की जरूरत महसूस की जाने लगी है।

इस घटनाक्रम ने अन्य देशों में हिंदी को लोकप्रिय और सरलता से सीखने योग्य भारतीय भाषा बनाने में काफी योगदान किया है। अमेरिका में कुछ स्कूलों ने फ्रेंच, स्पेनिश और जर्मन के साथ-साथ हिंदी को भी विदेशी भाषा के रूप में शुरू करने का फैसला किया है। हिंदी ने भाषा-विषयक कार्य-क्षेत्र में स्वयं के लिए एक वैश्विक मान्यता अर्जित कर ली है।

तकनीकी भाषा के रूप में हिंदी

भाषाओं और विशेष रूप से हिंदी में भाषा प्रौद्योगिकी में विकास की शुरूआत 1991 में इलेक्ट्रॉनिकी विभाग के अधीन भारतीय भाषा प्रौद्योगिकी विकास मिशन (टीडीआईएल) की स्थापना के साथ हुई। इसके उपरांत मिशन के तहत बड़ी संख्या में गतिविधियां संचालित की गई। भारतीय भाषाओं की स्मृद्धि को ध्यान में रखते हुए 1991 में हिंदी सहित संवैधानिक रूप से स्वीकार्य प्रत्येक भाषा में तीन लाख शब्दों का संग्रह विकसित करने का फैसला किया गया। तदनुसार हिंदी शब्द संग्रह विकसित करने का काम आईआईटी दिल्ली को सौंपा गया।

1981-1990 के दौरान मुद्रित पुस्तकें, जर्नल्स, पत्रिकाएं, समाचार पत्र और सरकारी दस्तावेज हैं। इन्हें छः मुख्य श्रेणियों में बांटा गया है, समाज विज्ञान, भौतिक एवं व्यावसायिक विज्ञान, सौन्दर्यविषयक, प्राकृतिक विज्ञान, वाणिज्य, सरकारी और मीडिया भाषाएँ तथा अनुदित सामग्री शब्द स्तरीय टैगिंग, शब्द गणना, अक्षर गणना, फ्रीक्वेन्सी गणना के लिए सॉफ्टवेयर टूल्स भी विकसित किए गए। विभिन्न संस्थानों द्वारा करीब तीस लाख शब्दों को मशीन से पढ़ने योग्य संग्रह विकसित किया गया है।

हिंदी भाषा में रोजगार के अवसर–हमारी राष्ट्रीय भाषा की अत्यधिक लोकप्रियता और बढ़ते अंतर्राष्ट्रीय महत्व के साथ-साथ, हिंदी भाषा के क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में भी जबर्दस्त प्रगति हुई है। केंद्र सरकार, राज्य सरकारों (हिंदी भाषी राज्यों में) के विभिन्न विभागों में, हिंदी भाषा में काम करना अनिवार्य है। अतः केंद्र-राज्य सरकारों के विभिन्न विभागों और इकाइयों में हिंदी अधिकारी, हिंदी अनुवादक, हिंदी सहायक, प्रबंधक (राजभाषा) जैसे विभिन्न पदों की भरमार है।

निजी टीवी और रेडियो चैनलों की शुरूआत और स्थापित पत्रिकाओं समाचार-पत्रों के हिंदी रूपान्तर आने से रोजगार के अवसरों में कई गुणा वृद्धि हुई है। हिंदी मीडिया के क्षेत्र में संपादकों, संवाददाताओं, रिपोर्टरों, न्यूजरीडर्स, उप-संपादकों, प्रूफ रीडरों, रेडियो जॉकी, एंकसे आदि। रॉकी, एंकर्स आदि की बहुत आवश्यकता है। इनमें रोजगार की इच्छा रखने वालों के लिए पत्रकारिता/जन-संचार में डिग्री/डिप्लोमा के साथ-साथ हिंदी में अकादमिक योग्यता रखना महत्त्वपूर्ण है।

इसमें प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय लेखकों के कार्यों का हिंदी में अनुवाद तथा हिंदी लेखकों की कृतियों का अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य करना भी सम्मिलित होता है। फिल्मों की स्क्रिप्टों/विज्ञापनों को हिंदी/अंग्रेजी में अनुवाद करने का भी कार्य होता है।

हिंदी भाषा में स्नातकोत्तरों, विशेषकर जिन्होंने अपनी पीएच.डी पूरी कर ली है, के लिए विदेशों में भी रोजगार के अवसर हैं। कुछ देशों द्वारा हिंदी को बिजनेस की भाषा स्वीकार किए जाने के फलस्वरूप विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा और भाषा-विज्ञान के शिक्षण की जबर्दस्त माँग बढ़ी है। भारत में स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षक के तौर पर भी परंपरागत शिक्षण व्यवसाय को चुना जा सकता है।

हिंदी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

अपने पूरे इतिहास में, हिंदी ने कई अलग-अलग भाषाओं के उधार लिए शब्दों को अवशोषित किया।ड़ी बोली पर मुख्य बाहरी प्रभाव जो बाद में हिंदुस्तानी बन गया, दिल्ली सल्तनत के प्रशासकों और सैनिकों और बाद में मोगुल साम्राज्य के माध्यम से फारसी था। हिंदुस्तानी में ज्यादातर अरबी शब्द फारसी से आते हैं, जिसमें बहुत सारे अरबी से उधार शब्द हैं।

इसके अतिरिक्त, चूंकि 1960 के दशक तक पुर्तगाल के पास भारत में क्षेत्र थे, इसलिए हिंदी में "टेबल" (पुर्तगाली मेसा से) या कमीज, "शर्ट", जैसे कैमिसा से पुर्तगाली शब्द की उचित मात्र है। बेशक, अंग्रेजी औपनिवेशीकरण और आधुनिक वैश्वीकरण के माध्यम से, हिंदी में "प्रोफेसर" से "बॉटल" या प्रैफेसर जैसे बोटल जैसे अंग्रेजी शब्द भी अच्छी संख्या में हैं।

जाहिर है, अन्य भारतीय भाषाओं ने भी हिंदी को नए शब्दों के साथ प्रदान किया है, जैसे कि हिंदी शब्दों ने अन्य भाषाओं जैसे कि तमिल या मराठी में लिया है।

हिंदी और उर्दू एक भाषा विभाजन या एक पुनर्मिलन?उर्दू को सबसे पहले मुगल साम्राज्य में खड़ी बोली के एक संस्करण के रूप में देखा जाता है, जिसमें जबान-ए उर्दू-ए मुअला, जिसे "अदालत की भाषा (या शिविर)" कहा जाता है। यह हिंदी के समानांतर अस्तित्त्व में था और अंततः देश की स्थापना के समय पाकिस्तान की आधिकारिक भाषा बन गई। उर्दू और हिंदी दोनों को हिंदुस्तानी का रजिस्टर माना जाता है–ये एक ही भाषा के दो संस्करण, जैसे कि ब्रिटिश

अंग्रेजी और अमेरिकी अंग्रेजी दोनों अंग्रेजी के रजिस्टर हैं।हिंदी और उर्दू दोनों हिंदुस्तानी भाषाएँ हैं।

हिंदी केवल एक भाषा नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति का एक विशाल दर्पण भी है। इसकी मृदु-ध्वनियाँ भारतीय कविता को परिभाषित करती हैं। वास्तव में हिंदी पूरे देश को संगीतमय सम्मोहन से बांधती है और एक जीवंत समाजकी परिकल्पना प्रदान करती है। भाषाओं की भव्य योजना में यह अपेक्षाकृत युवा है। बहुत से लोग हिंदी भाषा सीखने के लिए प्रयास कर रहे हैं क्योंकि भारत अधिक सामाजिक और राजनीतिक रूप से शक्तिशाली हो रहा है, भारत एक वैश्विक महाशक्ति भूमिका में बढ़ रहा है और हिंदी में विश्वगुरु बनने की अपार संभावनाएँ हैं ।

हिंदी भाषा का स्वरूप

हिंदी भाषा के पांच प्राकृतिक स्वरूप माने जाते हैं-

मातृभाषा हिंदी: हिंदी का मातृभाषिक प्रदेश दिल्ली और दिल्ली से लगा उत्तर प्रदेश का जिला मेरठ मात्र है। वस्तुत: मातृभाषा वह भाषा है, जिसे व्यक्ति अपनी माता की गोद में सीखता है, अर्थात् उसके माँ-बाप, उसके अड़ोस-पड़ोस एवं उसके अपने संस्कार की भाषा मातृभाषा होती है। मातृभाषा की पहचान के संबंध में गुलाब राय ने अपने लेख "मातृभाषा की महत्ता" में लिखा है कि यदि किसी की मातृभाषा का पता करना हो और यह किसी भी प्रकार पता नहीं चल पाएं तो अचानक पीछे से उसकी पीठ पर मुक्का मारो। ऐसी स्थिति में जिस भाषा में वह अपनी आह व्यक्त करे वही उसकी मातृभाषा होगी। कारण, कोई कितना भी विदेशी भाषा का ज्ञान रखने वाला हो, अतिशय सुख अथवा अतिशय दु:ख की अवस्था में वह अपनी मातृभाषा में ही अपने हृदय का भाव व्यक्त करेगा। यह एक अजीब-सी बात देखने को मिलती है कि जो हिंदी मातृभाषा के रूप में मात्र दिल्ली और उससे लगे मेरठ जिले एंव उसके आस-पास के एक छोटे से भू-भाग में प्रयोग में रही, द्वितीय भाषा के रूप में लगभग सारे भारत के विस्तार में प्रांजल संपर्क का एक मात्र साधन बन चुकी है।

संपर्क भाषा हिंदी: एक भाषा भाषी जिसे भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ संपर्क स्थापित कर सके, उसे संपर्क भाषा कहते हैं। ऐसी भाषा मात्र दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के बीच संपर्क का माध्यम नहीं बनती, जो एक दूसरे की भाषा से परिचित नहीं हैं, अपितु

दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषाभाषी राज्यों के बीच तथा केंद्र और राजयों के बीच भी संपर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है। भारत के ही प्राचीन इतिहास पर यदि हम नजर डालते हैं। तो पाते हैं कि यहाँ हर युग में राष्ट्र की एक प्रमुख भाषा संपर्क भाषा की भूमिका का निर्वाह करती रही है।

राष्ट्र भाषा हिंदी: राष्ट्रभाषा का अर्थ है राष्ट्र की भाषा। इस तरह राष्ट्र की जितनी भी भाषाएँ है, सभी राष्ट्रभाषा है। फल्स्वरूप भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं के अतिरिक्त देश की दर्जनों अन्य भाषाएं भी जो अपने-अपने क्षेत्रों में लोक सम्प्रेषण के माध्यम है, हमारी राष्ट्र भाषाएं है। यही कारण है कि भारत के संविधान में इनमें से किसी भी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के नाम से अभिहित नहीं किया गया है। यही राजभाषा, संघभाषा अथवा संपर्क भाषा जैसे शब्दों का ही व्यवहार हुआ है। परंतु इतना होते हुए भी एक विशिष्ट अर्थ में राष्ट्रभाषा की संकल्पना और उसकी सार्थकता से हम इंकार नहीं कर सकते और इस सार्थकता एवं यथार्थता के हकदार भी अपनी स्थिति के चलते हिंदी हो रही है।

राजभाषा हिंदी: राजभाषा का अर्थ है वह भाषा जो राजकाज एवं प्रशासन-तंत्र के कार्य के संपादन की गतिविधि की कार्यकलापों की भाषा हो। जैसे हर देश के अपने प्रतीक स्वरूप झंडे होते हैं और उसे राष्ट्रध्वज के नाम से पुकारते हैं। उसी तरह हर देश की समग्रता की अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में सार्वदेशिक स्वरूप रखनेवाली उसकी राजकीय गतिविधि के संपादन की एक भाषा भी होती है और उस भाषा को राजभाषा की संज्ञा दी जाती है। परंतु ऐसे संघ राष्ट्रों में जहाँ देश (राष्ट) के भिन्न-भिन्न राज्यों की अलग अलग राजभाषाएँ हैं। वहां भाषा संघ की राजभाषा होती है। जो आमतौर पर समस्त देश में अथवा देश के अधिकांश भागों में परस्पर भिन्न - भिन्न भाषभाषियों के बीच संपर्क के माध्यम का कार्य करने के साथ हीं देश की शिक्षा, देश का ज्ञान विज्ञान, रीति-नीति, कला संस्कृति आदि से संबंधित समस्त कार्य व्यापार का निर्वाह भी करती है। हिंदी बखूबी इन दायित्वों का निर्वाह करती है। यह आजादी से पहले मुगल शासन काल में और अंग्रेजी शासन काल में अनेक देशी राजाओं के राज्य की राजभाषा, देश के व्यापक क्षेत्रों की संपर्क भाषा तथा मुगल एवं अंग्रेजी शासन में ऊपरी तौर पर द्वितीय राजभाषा की तरह प्रयोग की जाती रही। भारत के संविधान के अनुसार "देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी। "

बहुराष्ट्रीय भाषा हिंदी अथवा विश्वात्मक भाषा हिंदी: बहुराष्ट्रीय भाषा अथवा विश्वात्मक भाषा से उस भाषा का बोध होता है, जो एक से अधिक देशें में प्रयोग किया जाता है। हिंदी गुयाना, फिजी, सुरिनाम, मॉरीशस त्रिनिदाद आदि अनेक देशों में बहुसंख्यक जनता के बीच संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। भारत के पड़ोसी देश नेपाल, बर्मा, श्रीलंका आदि के अतिरिक्त इंग्लैंड अमेरिका, कनाडा, अफ्रिका, आदि देशों में काफी संख्या में एशियाई लोग हैं, जिनके बीच हिंदी संपर्क भाषा है। मुस्लिम देशों में तो हिंदी इतनी परिचित एवं सुलभ है कि वे अनेक हिंदी सीरियल बड़े चाव से और नियमित रूप से देखते हैं। विश्व के अधिकांश बड़े देशों में विश्वविद्यालय स्तर तक हिंदी का पाठ्यक्रम है और उसमें काफी छात्र-छात्रएं अध्ययनरत है। आज विश्वात्मक गणना के आधार पर हिंदी विश्व में सबसे अधिक बोली समझी जाने वाली भाषाओं में पहले स्थान पर है। तात्पर्य यह है कि विश्व में किसी एक भाषा बोलने समझने वालों में हिंदी बोलने समझने वाले सर्वाधिक लोग है।

हिन्दी भाषा का क्षेत्र एवं हिन्दी के क्षेत्रगत रूप

'हिन्दी भाषा क्षेत्र' के अन्तर्गत भारत के निम्नलिखित राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश समाहित हैं - 1. उत्तर प्रदेश 2. उत्तराखंड 3. बिहार 4. झारखंड 5. मध्यप्रदेश 6. छत्तीसगढ़ 7. राजस्थान 8. हिमाचल प्रदेश 9. हरियाणा 10. दिल्ली 11. चण्डीगढ़।

' हिन्दी भाषा क्षेत्र ' में हिन्दी भाषा के जो प्रमुख क्षेत्रगत रूप बोले जाते हैं उनकी संख्या 20 है। भाषाविज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि प्रत्येक भाषा क्षेत्र में भाषिक भिन्नताएँ होती हैं। किसी ऐसी भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती जो जिस 'भाषा क्षेत्र' में बोली जाती है। उसमें किसी प्रकार की क्षेत्रगत एवं वर्गगत भिन्नताएँ न हों। भिन्नत्व की दृष्टि से तो किसी भाषा क्षेत्र में जितने बोलने वाले व्यक्ति रहते हैं उस भाषा की उतनी ही 'व्यक्ति बोलियाँ' होती हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि भाषा की संरचक 'बोलियाँ' होती हैं तथा बोलियों की संरचक 'व्यक्ति बोलियाँ'। इसी को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि 'व्यक्ति बोलियों' के समूह को 'बोली' तथा 'बोलियों' के समूह को भाषा कहते हैं। बोलियों की समष्टि का नाम ही भाषा है। किसी भाषा की बोलियों से इतर व्यवहार में सामान्य व्यक्ति भाषा के जिस रूप को 'भाषा' के नाम से अभिहित करते हैं वह तत्वत: भाषा नहीं होती। भाषा का यह रूप उस भाषा क्षेत्र

के किसी बोली/बोलियों के आधार पर विकसित उस भाषा का 'मानक भाषा रूप' होता है। भाषा विज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति 'मानक भाषा रूप' को 'भाषा' कहने एवं समझने लगते हैं तथा 'भाषा क्षेत्र' की बोलियों को अविकसित, हीन एवं गँवारू कहने, मानने एवं समझने लगते हैं। भारतीय भाषिक परम्परा इस दृष्टि से अधिक वैज्ञानिक रही है। भारतीय परम्परा ने भाषा के अलग अलग क्षेत्रों में बोले जाने वाले भाषिक रूपों को देसी भाषा' के नाम से पुकारा तथा घोषणा की कि देसी वचन सबको मीठे लगते हैं – ' देसिल बअना सब जन मिट्ठा '। (विशेष अध्ययन के लिए देखें – प्रोफेसर महावीर सरन जैन–भाषा एवं भाषा विज्ञान, अध्याय 4 – भाषा के विविधरूप एवं प्रकार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985)

हिन्दी भाषा क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: 20 बोलियाँ अथवा उपभाषाएँ बोली जाती हैं। इन 20 बोलियों अथवा उपभाषाओं को ऐतिहासिक परम्परा से पाँच वर्गों में विभक्त किया जाता है – पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, बिहारी हिन्दी और पहाड़ी हिन्दी।

1. पश्चिमी हिन्दी – 1.खड़ी बोली 2. ब्रजभाषा 3. हरियाणवी 4. बुन्देली 5.कन्नौजी

2. पूर्वी हिन्दी – 1.अवधी 2.बघेली 3. छत्तीसगढ़ी

3.राजस्थानी – 1.मारवाड़ी 2.मेवाती 3.जयपुरी 4.मालवी

4. बिहारी – 1. भोजपुरी 2. मैथिली 3. मगही 4. अंगिका 5. बज्जिका (इनमें 'मैथिली' को अलग भाषा का दर्जा दे दिया गया है हॉलाकि हिन्दी साहित्य के पाठ्यक्रम में अभी भी मैथिली कवि विद्यापति पढ़ाए जाते हैं तथा जब नेपाल में रहने वाले मैथिली बोलने वालों पर कोई दमनात्मक कार्रवाई होती है तो वे अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार मुम्बई में रहने वाले भोजपुरी, मगही, मैथिली एवं अवधी आदि बोलने वाले अपनी पहचान 'हिन्दी भाषी' के रूप में करते हैं।)

5. पहाड़ी – 'आधुनिक भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण' के अन्तर्गत डॉ. सर जॉर्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण के संदर्भ में इसका उल्लेख किया जा चुका है कि ग्रियर्सन ने 'पहाड़ी' समुदाय के अन्तर्गत बोले जाने वाले भाषिक रूपों को तीन शाखाओं में बाँटा – पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली, मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी एवं पश्चिमी पहाड़ी। हिन्दी भाषा के संदर्भ में वर्तमान स्थिति यह है कि

हिन्दी भाषा के अन्तर्गत मध्य या केन्द्रीय पहाड़ी की उत्तराखंड में बोली जाने वाली 1. कूमाऊँनी 2.गढ़वाली तथा पश्चिमी पहाड़ी की हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की अनेक बोलियाँ आती हैं जिन्हें आम बोलचाल में ' पहाड़ी ' नाम से पुकारा जाता है।

हिन्दी भाषा के संदर्भ में विचारणीय है कि अवधी, बुन्देली, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली आदि को हिन्दी भाषा की बोलियाँ माना जाए अथवा उपभाषाएँ माना जाए। सामान्य रूप से इन्हें बोलियों के नाम से अभिहित किया जाता है किन्तु लेखक ने अपने ग्रन्थ ' भाषा एवं भाषाविज्ञान' में इन्हें उपभाषा मानने का प्रस्ताव किया है। '-क्षेत्र, बोलने वालों की संख्या तथा परस्पर भिन्नताओं के कारण इनको बोली की अपेक्षा उपभाषा मानना अधिक संगत है।

इसी ग्रन्थ में लेखक ने पाठकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि हिन्दी की कुछ उपभाषाओं के भी क्षेत्रगत भेद हैं, जिन्हें उन उपभाषाओं की बोलियों अथवा उपबोलियों के नाम से पुकारा जा सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन उपभाषाओं के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। प्रत्येक दो उपभाषाओं के मध्य संक्रमण क्षेत्र विद्यमान है।

विश्व की प्रत्येक विकसित भाषा के विविध बोली अथवा उपभाषा क्षेत्रों में से विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से जब कोई एक क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है तो उस क्षेत्र के भाषा रूप का सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र में प्रसारण होने लगता है। इस क्षेत्र के भाषारूप के आधार पर पूरे भाषाक्षेत्र की 'मानक भाषा' का विकास होना आरम्भ हो जाता है। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी इस भाषारूप को 'मानक भाषा' मानने लगते हैं। भाषा के प्रत्येक क्षेत्र के निवासी भले ही इसका उच्चारण नहीं कर पाते, फिर भी वे इसको सीखने का प्रयास करते हैं। इसको मानक मानने के कारण यह मानक भाषा रूप 'भाषा क्षेत्र' के लिए सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाता है। मानक भाषा रूप की शब्दावली, व्याकरण एवं उच्चारण का स्वरूप अधिक निश्चित एवं स्थिर होता है एवं इसका प्रचार, प्रसार एवं विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में होने लगता है। कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम एवं शिक्षा का माध्यम यही मानक भाषा रूप हो जाता है। इस प्रकार भाषा के 'मानक भाषा रूप' का आधार उस भाषा क्षेत्र की क्षेत्रीय बोली अथवा उपभाषा ही होती है, किन्तु मानक भाषा होने के कारण इसका प्रसार अन्य बोली क्षेत्रों अथवा उपभाषा क्षेत्रों में होने लगता है। इस प्रसार

के कारण इस भाषारूप पर 'भाषा क्षेत्र' की सभी बोलियों का प्रभाव भी पड़ता है तथा यह भी सभी बोलियों अथवा उपभाषाओं को प्रभावित करता है। उस भाषा क्षेत्र के शिक्षित व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर इसका प्रयोग करते हैं। भाषा के मानक भाषा रूप को सामान्य व्यक्ति अपने भाषा क्षेत्र की 'मूल भाषा', केन्द्रक भाषा', 'मानक भाषा' के नाम से पुकारते हैं। यदि किसी भाषा का क्षेत्र हिन्दी भाषा की तरह विस्तृत होता है तथा यदि उसमें 'हिन्दी भाषा क्षेत्र' की भांति उपभाषाओं एवं बोलियों की अनेक परतें एवं स्तर होते हैं तो 'मानक भाषा' के द्वारा समस्त भाषा क्षेत्र में विचारों का आदान प्रदान सम्भव हो पाता है, संप्रेषणीयता सम्भव हो पाती है। भाषा क्षेत्र के यदि अबोधगम्य उपभाषी अथवा बोली बोलने वाले परस्पर अपनी उपभाषा अथवा बोली के माध्यम से विचारों का आदान प्रदान नहीं कर पाते तो इसी मानक भाषा के द्वारा संप्रेषण करते हैं। भाषा विज्ञान में इस प्रकार की बोधगम्यता को 'पारस्परिक बोधगम्यता' न कहकर 'एकतरफा बोधगम्यता' कहते हैं। ऐसी स्थिति में अपने क्षेत्र के व्यक्ति से क्षेत्रीय बोली में बातें होती हैं किन्तु दूसरे उपभाषा क्षेत्र अथवा बोली क्षेत्र के व्यक्ति से अथवा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा के द्वारा बातचीत होती हैं। इस प्रकार की भाषिक स्थिति को फर्गुसन ने बोलियों की परत पर मानक भाषा का अध्यारोपण कहा है।

हम यह कह चुके हैं कि किसी भाषा क्षेत्र की मानक भाषा का आधार कोई बोली अथवा उपभाषा ही होती है, किन्तु कालान्तर में उक्त बोली एवं मानक भाषा के स्वरूप में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र के शिष्ट एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा औपचारिक अवसरों पर मानक भाषा का प्रयोग किए जाने के कारण तथा साहित्य का माध्यम बन जाने के कारण स्वरूपगत परिवर्तन स्वाभाविक है। प्रत्येक भाषा क्षेत्र में किसी क्षेत्र विशेष के भाषिक रूप के आधार पर उस भाषा का मानक रूप विकसित होता है, जिसका उस भाषा-क्षेत्र के सभी क्षेत्रों के पढे-लिखे व्यक्ति औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। पूरे भाषा क्षेत्र में इसका व्यवहार होने तथा इसके प्रकार्यात्मक प्रचार-प्रसार के कारण विकसित भाषा का मानक रूप भाषा क्षेत्र के समस्त भाषिक रूपों के बीच संपर्क सेतु का काम करता है तथा कभी-कभी इसी मानक भाषा रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है। प्रत्येक देश की एक राजधानी होती है तथा विदेशों में किसी देश की राजधानी के नाम से प्रायः देश का बोध होता है, किन्तु सहज रूप से समझ में आने वाली बात है कि राजधानी ही देश नहीं होता।

हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस कारण इसकी क्षेत्रगत भिन्नताएँ भी बहुत अधिक हैं। 'खड़ी बोली' हिन्दी भाषा क्षेत्र का उसी प्रकार एक भेद है, जिस प्रकार हिन्दी भाषा के अन्य बहुत से क्षेत्रगत भेद हैं। हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऐसी बहुत सी उपभाषाएँ हैं जिनमें पारस्परिक बोधगम्यता का प्रतिशत बहुत कम है किन्तु ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पूर्ण भाषा क्षेत्र एक भाषिक इकाई है तथा इस भाषा-भाषी क्षेत्र के बहुमत भाषा-भाषी अपने-अपने क्षेत्रगत भेदों को हिन्दी भाषा के रूप में मानते एवं स्वीकारते आए हैं। भारत के संविधान की दृष्टि से यही स्थिति है। सन् 1997 में भारत सरकार के सैन्सस ऑफ इण्डिया द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ में भी यही स्थिति है। वस्तु स्थिति यह है कि हिन्दी, चीनी एवं रूसी जैसी भाषाओं के क्षेत्रगत प्रभेदों की विवेचना यूरोप की भाषाओं के आधार पर विकसित पाश्चात्य भाषाविज्ञान के प्रतिमानों के आधार पर नहीं की जा सकती।

अपने 28 राज्यों एवं 07 केन्द्र शासित प्रदेशों को मिलाकर भारत देश है, उसी प्रकार भारत के जिन राज्यों एवं शासित प्रदेशों को मिलाकर हिन्दी भाषा क्षेत्र है, उस हिन्दी भाषा-क्षेत्र के अन्तर्गत जितने भाषिक रूप बोले जाते हैं उनकी समार्षटि का नाम हिन्दी भाषा है। हिन्दी भाषा क्षेत्र के प्रत्येक भाग में व्यक्ति स्थानीय स्तर पर क्षेत्रीय भाषा रूप में बात करता है। औपचारिक अवसरों पर तथा अन्तर-क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं सार्वदेशिक स्तरों पर भाषा के मानक रूप अथवा व्यावहारिक हिन्दी का प्रयोग होता है। आप विचार करें कि उत्तर प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, अवधी, बुन्देली आदि भाषाओं का राज्य है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश हिन्दी भाषी राज्य है अथवा बुन्देली, बघेली, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का राज्य है। जब संयुक्त राज्य अमेरिका की बात करते हैं तब संयुक्त राज्य अमेरिका के अन्तर्गत जितने राज्य हैं उन सबकी समष्टि का नाम ही तो संयुक्त राज्य अमेरिका है। विदेश सेवा में कार्यरत अधिकारी जानते हैं कि कभी देश के नाम से तथा कभी उस देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा होती है। वे ये भी जानते हैं कि देश की राजधानी के नाम से देश की चर्चा भले ही होती है, मगर राजधानी ही देश नहीं होता। इसी प्रकार किसी भाषा के मानक रूप के आधार पर उस भाषा की पहचान की जाती है मगर मानक भाषा, भाषा का एक रूप होता है। मानक भाषा ही भाषा नहीं होती। इसी प्रकार खड़ी बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास अवश्य हुआ है किन्तु खड़ी बोली ही हिन्दी नहीं है। तत्वत: हिन्दी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत जितने

भाषिक रूप बोले जाते हैं उन सबकी समष्टि का नाम हिन्दी है। हिन्दी को उसके अपने ही घर में तोड़ने का षडयंत्र अब विफल हो गया है, क्योंकि 1991 की भारतीय जनगणना के अंतर्गत जो भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है उसमें मातृभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने वालों की संख्या का प्रतिशत उत्तर प्रदेश (उत्तराखंड राज्य सहित) में 90.11, बिहार (झारखण्ड्ड राज्य सहित) में 80.86, मध्य प्रदेश (छत्तीसगढ़ राज्य सहित) में 85.55, राजस्थान में 89.56, हिमाचल प्रदेश में 88.88, हरियाणा में 91.00, दिल्ली में 81.64 तथा चण्डीगढ़ में 61.06 है।

भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की मजबूती

अंतरभाषाई संचार और द्विभाषिता पर अनुसंधान करने वाले महादेव एल. आप्टे का विचार है कि एक बहुभाषी नजारे में द्विभाषिता विकसित होने की दो शर्तें होती हैं जिनके समीकरण के आधार पर ही लोग अपनी भाषा के अलावा दूसरी भाषा सीखने का प्रयास करते हैं–भाषाओं के बीच संरचनात्मक समानता किस दर्जे की है, और सामाजिक- आर्थिक उपयोगिता के लिहाज से किस भाषा की दावेदारी बेहतर है। सत्तर के दशक में आप्टे ने निष्कर्ष निकाला था कि अन्य भारतीय भाषाओं से संरचनात्मक (ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भण्डार, वाक्य-रचना और वर्णमाला) समानता के लिहाज से हिंदी-द्विभाषिता की सम्भावनाएँ बेहतर होनी चाहिए, और सामाजिक आर्थिक-उपयोगिता के लिहाज से अंग्रेजी-द्विभाषिता बढ़नी चाहिए। साथ ही आप्टे का कहना यह भी था कि साक्षरता में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ प्रमुख भाषाओं और हिंदी के बीच अंतरभाषाई संचार बढ़ सकता है, भले ही अंग्रेजी की सामाजिक-आर्थिक उपयोगिता के कारण लोग इस सम्भावना को नजरअंदाज करते रहें। आप्टे का यह अवलोकन इस जरूरत पर बल देता प्रतीत होता है कि भाषा की सामाजिक-आर्थिक उपयोगिता निर्धारित करने के लिए बनाये गये सूचकांकों में आर्थिक प्रगति उपलब्ध कराने की क्षमता को तो सर्वोच्च स्थान दिया ही जाना चाहिए, साथ ही बाजार से संबंधित सांस्कृतिक कारकों को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। आप्टे ने केवल साक्षरता का जिक्र किया था, पर हिंदी-द्विभाषिता के बढ़ने की सम्भावना के अन्य कारण लगातार जारी उद्योगीकरण और आबादी के आवागमन में भी चिह्नित किये जा सकते थे। कहना न होगा कि साक्षरता, शिक्षा, उद्योगीकरण और आव्रजन से अंग्रेजी

द्विभाषिता में लाजमी तौर पर बढ़ोतरी होनी थी। लेकिन क्या इन वैकासिक पहलुओं ने हिंदी-द्विभाषिता को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है?

साठ के दशक से हिंदी-द्विभाषिता और अंग्रेजी- द्विभाषिता के बीच होड़ के ग्राफ को देखा जा सकता है। शुरुआती दौर में अंग्रेजी का पलड़ा बहुत ज्यादा झुका हुआ नजर आता है, पर यह अंतराल धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से कम हो रहा है। बढ़ती हुई साक्षरता तो इसे घटा ही रही है, अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तनों और बाजार के विस्तार ने हिंदी के 'मल्टीप्लायर इफेक्ट' को और प्रभावी बनाया है, जिससे उसकी सामाजिक-आर्थिक उपयोगिता भी पहले के मुकाबले बढ़ी है। 1991 की जनगणना और 2001 की जनगणना से मिलने वाले द्विभाषिता के आँकड़ों के आधार पर किये गये विश्लेषण से यही संदेश मिलता है। 1991 की जनगणना दिखाती है कि आठवीं अनुसूची में दर्ज भाषाओं में द्विभाषियों की संख्या कितनी है, और उनमें कितने हिंदी- द्विभाषी हैं और कितने अंग्रेजी-द्विभाषी। इन आँकड़ों को पढ़ने के सवाल पर कुछ विवाद है। पॉल ब्रास के अनुसार उत्तरी और पश्चिमी भाषाएँ बरतने वाले द्विभाषी होने के लिए हिंदी को प्राथमिकता देते हैं। दक्षिणी और पूर्वी भाषाएँ बरतने वालों की प्राथमिकता अंग्रेजी है। यानी भारत द्विभाषिता के मामले में बँटा हुआ है। ब्रास को यह भी लगता है कि दक्षिण और पूर्वी भाषाओं ने एक 'सांस्कृतिक भाषा' के तौर पर हिंदी को खघरिज कर दिया है। सांस्कृतिक से उनका क्या अर्थ है, यह समझ में नहीं आता, क्योंकि उनके विश्लेषण की कसौटी उन 'लाइफ चांसिस' पर टिकी है जिसका जिक्र द्विभाषिता के मामले में महादेव आप्टे ने किया है। इन आँकड़ों को ब्रास के अलावा एक वैकल्पिक तरीके से भी पढ़ा जा सकता है। सिंधी, पंजाबी, नेपाली, मराठी, गुजराती और उर्दू बरतने वालों के बीच हिंदी द्विभाषिता के मामले में पहले ही अंग्रेजी से बहुत आगे चल रही है। यह अंतर दोगुने से भी ज्यादा से लेकर दस-बारह फीसदी तक दिखता है। असमी के संदर्भ में भी हिंदी आगे है, लेकिन वहाँ दोनों द्विभाषिताओं के बीच कुछ कम यानी 2. 71 प्रतिशत का अंतर है। इसी तरह मणिपुरी और ओड़िया के संदर्भ में अंग्रेजी आगे है, लेकिन हिंदी केवल 1.96 और 1.26 प्रतिशत के बेहद मामूली अंतर से ही पिछड़ रही है। दक्षिण भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में अंग्रेजी द्विभाषिता हिंदी से कहीं बेहतर है, लेकिन आँकड़ों की रोशनी में देखने पर हिंदी की स्थिति केवल तमिलनाडु के मामले में बेहद खराब निकलती है। यहाँ अंग्रेजी के 14 फीसदी द्विभाषियों के मुकाबले हिंदी के द्विभाषी डेढ़ फीसदी के आसपास ही हैं। लेकिन

बाकी दक्षिणी क्षेत्र में स्थिति इतनी बुरी नहीं है। सौ फीसदी साक्षरता वाले क्षेत्र मलयालम में अंग्रेजी द्विभाषिता अगर 24.35 प्रतिशत है तो हिंदी-द्विभाषिता भी 19.07 फीसदी है। इस आँकड़े को देख कर किसी भी हिंदी समर्थक को सुखद आश्चर्य हो सकता है। इसी तरह कन्नड़भाषी क्षेत्र में अंग्रेजी-हिंदी द्विभाषिताओं का अंतर महज तीन फीसदी से अंग्रेजी के पक्ष में झुका हुआ है। इसी तरह तेलुगु क्षेत्र में भी द्विभाषिता का यह अंतर केवल दो फीसदी है। दक्षिण भारत में उम्मीद से बेहतर परिणाम प्राप्त करने के बाद हिंदी जिस क्षेत्र में बहुत अच्छे नतीजे प्राप्त करती हुई दिखती है, वह बंगाल। बंगाल में दोनों द्विभाषिताओं में अंग्रेजी हिंदी से केवल 2.40 प्रतिशत ही आगे है।

तीस साल पहले हुए 1961 की जनगणना में द्विभाषिता के आँकड़ों पर नजर डालते ही पॉल ब्रास द्वारा किया गया सरलीकरण अपने आप खारिज हो जाता है। हिंदी-विरोध के गढ़ समझे जाने वाले बंगाल में अंग्रेजी उस समय भी तीन फीसदी से आगे थी। अर्थात् इस दौरान बंगाल में अंग्रेजी- द्विभाषिता में जरा भी बढ़ोतरी नहीं हुई, और हिंदी ने अपनी वृद्धि-दर कायम रखी है। 1961 की जनगणना बताती है कि कन्नड़भाषी, तमिलभाषी और तेलुगुभाषी क्षेत्र में हिंदी-द्विभाषिता पूरी तरह से गैर-हाजिर थी। मलयालमभाषी क्षेत्र में वह आधे फीसदी से भी कम थी। इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि पिछले तीस सालों में दक्षिण के प्रमुख भाषाई क्षेत्रों में हिंदी-द्विभाषिता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मलयालम, कन्नड़ और तेलुगु में वह अंग्रेजी के निकट आती जा रही है और तमिलनाडु में उसने अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी है। जिन क्षेत्रों में हिंदी-द्विभाषिता जबरदस्त रूप से बढ़ी है वह है गुजरात। असमियाभाषियों के बीच तो स्थिति उलट ही गयी है। 1961 में वहाँ अंग्रेजी-द्विभाषी अधिक थे, पर 1991 में हिंदी-द्विभाषी आगे निकल गये हैं। 1961 और 1991 के बीच दोनों द्विभाषिताओं की वृद्धि-दर से स्पष्ट है कि हिंदी-द्विभाषिता की रूपरेखा में उत्तर, मध्य और उत्तर- पूर्व के साथ दक्षिण भी जुड़ गया है।

अंग्रेजी और हिंदी के बीच द्विभाषिता की इस होड़ के लिए 1991 से लेकर 2001 के बीच की अवधि बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह भूमण्डलीकरण का दौर है, और समझा जाता है कि इस दौरान अंग्रेजी की आर्थिक-सामाजिक उपयोगिता में पहले के मुकाबले बहुत बढ़ोत्तरी हुई है। उसने युरोप की स्थापित भाषाओं के दायरों में भी अतिक्रमण शुरू कर दिया है। हमारे पास 2001 की जनगणना के आँकड़े हैं जिनसे पता लगाया जा सकता है कि भूमण्डलीकरण के प्रभाव के

तहत इस होड़ की दिशा अब क्या है। दक्षिण और पूर्वी भाषाओं में हुए द्विभाषिता संबंधी परिवर्तनों का विश्लेषण बताता है इन क्षेत्रों में हिदी-द्विभाषिता का प्रतिशत कमोबेश दस साल पहले जितना ही बना हुआ है। असम में हिंदी अभी भी आगे है, बंगाल में हिंदी-द्विभाषी अंग्रेजी के और नजदीक आये हैं, तमिल में हिंदी ने अपनी जो उपस्थिति दर्ज करायी थी। उसमें अंग्रेजी की बढ़ी हुई प्रतिष्ठा कटौती नहीं कर पायी है, कन्नड़ में अंग्रेजी-द्विभाषिता हिंदी से केवल मामूली अंतर से ही आगे रह गयी है, मलयालम क्षेत्र में हिंदी-द्विभाषिता का मजबूत प्रदर्शन जारी है और तेलुगु क्षेत्र में हिंदी- द्विभाषिता की स्थिति पहले की तरह आश्वस्तिकारक बनी हुई है। ओड़िया क्षेत्र में दोनों द्विभाषिताएँ करीब-करीब बराबरी की स्थिति में हैं। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि जिन क्षेत्रों में हिंदी अंग्रेजी से बहुत आगे थी, जैसे मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, नेपाली, मैथिली और डोगरी, उनमें अंग्रेजी- द्विभाषिता अपनी स्थिति सुधारने में विफल रही है। 1991 से 2001 के बीच दोनों द्विभाषिताओं की वृद्धि-दर का एक अंदाजा ग्राफ-2 से लगाया जा सकता है। यहीं सवाल उठता है कि 1961, 1991 और 2001 की जनगणनाओं के इस विश्लेषण में हिंदी के अंग्रेजी-द्विभाषियों और उर्दू के अंग्रेजी-द्विभाषियों को किस श्रेणी में रखा जाना चाहिए? हिंदी और उर्दू का अंग्रेजी-द्विभाषी हर तरह से दोनों तरह की द्विभाषिताओं से सम्पन्न है। उसे द्विभाषिता की इस प्रतियोगिता से तटस्थ कर करके विश्लेषण करना चाहिए। 1961 की जनगणना में तो हिंदुस्तानी बोलने वाले भी अलग से दर्ज किये गये थे। हिंदुस्तानी के अंग्रेजी-द्विभाषी भी तटस्थ कर देने चाहिए।

इस विश्लेषण से पता चलता है कि अंग्रेजी के मुकाबले सम्पर्क-भाषा बनने के मामले में अखिल भारतीय पैमाने पर हिंदी की स्थिति उत्तरोत्तर सुदृढ़ हुई है। लेकिन सिर्फ द्विभाषिता के इन जनगणना प्रदत्त आँकड़ों के आधार पर सम्पर्क-भाषा के सभी पहलुओं पर विचार नहीं हो सकता। हिंदी-क्षेत्र में सम्पर्क-भाषा को यूरोपीय किस्म की राष्ट्र- भाषा के आईने में देखने की प्रवृत्ति काफी प्रबल है। यह रवैया दो तरह की माँग करता है—पहली, उत्तर भारत की जनपदीय भाषाओं के पैरोकार अगर उन्हें आठवीं अनुसूची में माँग करने की राजनीति करेंगे, तो हिंदी की बहुसंख्यक दावेदारी कमजोर हो जाएगीय और दूसरी, गैर-हिंदीभाषियों के लिए हिंदी समझना-बोलना ही काफी नहीं है, उन्हें उत्तर-भारतीयों की तरह हिंदी लिखना-पढ़ना भी आना चाहिए। यह आग्रह दृश्य-श्रव्य मीडिया के जरिए हुए हिंदी के प्रसार के प्रति असहज है क्योंकि यह प्रक्रिया

अहिंदीभाषियों को हिंदी का 'लिटराटी' बनाने की तरफ नहीं ले जाती। दरअसल, यह दूसरी माँग हिंदी को उस खाने में फिट करना चाहती है, जिसमें आजकल अंग्रेजी है। अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं का रिश्ता डॉयग्लॉसिकल है जिसके तहत अंग्रेजी को सामाजिक-सांस्कृतिक तौर पर बेहतर मान कर सीखा- सिखाया जाता है। इस प्रक्रिया के साथ सीखने वाले की अपनी भाषा को जाने-अनजाने 'अनलर्न' करने का सिलसिला भी जुड़ा रहता है। हिंदी को सारे देश की सम्पर्क-भाषा बनते हुए देखने की इच्छा रखने वालों को यह तय करना पड़ेगा कि क्या वे भी अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी जैसा ही डॉयग्लॉसिक रिश्ता बनाना चाहते हैं?

2

भाषाई संरचना

भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं और इसके लिये हम वाचिक ध्वनियों का प्रयोग करते हैं।

भाषा, मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह है जिनके द्वारा मन की बात बताई जाती है। किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वन एक व्यवस्था में मिलकर एक सम्पूर्ण भाषा की अवधारणा बनाते हैं। व्यक्त नाद की वह समष्टि जिसकी सहायता से किसी एक समाज या देश के लोग अपने मनोगत भाव तथा विचार एक दूसरे से प्रकट करते हैं। मुख से उच्चारित होनेवाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह जिनके द्वारा मन की बात बताई जाती है जैसे - बोली, जबान, वाणी विशेष।

सामान्यत: भाषा को वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आभ्यंतर अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। यही नहीं वह हमारे आभ्यंतर के निर्माण, विकास, हमारी अस्मिता, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन है। भाषा के बिना मनुष्य सर्वथा अपूर्ण है और अपने इतिहास तथा परम्परा से विच्छिन्न है।

इस समय सारे संसार में प्राय: हजारों प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है, जो साधारणत: अपने भाषियों को छोड़ और लोगों की समझ में नहीं आतीं। अपने समाज या देश की भाषा तो लोग बचपन से ही अभ्यस्त होने के कारण अच्छी तरह जानते हैं, पर दूसरे देशों या समाजों की भाषा बिना अच्छी तरह सीखे नहीं

आती। भाषाविज्ञान के ज्ञाताओं ने भाषाओं के आर्य, सेमेटिक, हेमेटिक आदि कई वर्ग स्थापित करके उनमें से प्रत्येक की अलग अलग शाखाएँ स्थापित की हैं और उन शाखाओं के भी अनेक वर्ग-उपवर्ग बनाकर उनमें बड़ी बड़ी भाषाओं और उनके प्रांतीय भेदों, उपभाषाओं अथवा बोलियों को रखा है। जैसे हिंदी भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषाओं के आर्य वर्ग की भारतीय आर्य शाखा की एक भाषा है, और ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि इसकी उपभाषाएँ या बोलियाँ हैं। पास पास बोली जानेवाली अनेक उपभाषाओं या बोलियों में बहुत कुछ साम्य होता है और उसी साम्य के आधार पर उनके वर्ग या कुल स्थापित किए जाते हैं। यही बात बड़ी बड़ी भाषाओं में भी है जिनका पारस्परिक साम्य उतना अधिक तो नहीं, पर फिर भी बहुत कुछ होता है।

संसार की सभी बातों की भाँति भाषा का भी मनुष्य की आदिम अवस्था के अव्यक्त नाद से अब तक बराबर विकास होता आया है और इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। भारतीय आर्यों की वैदिक भाषा से संस्कृत और प्राकृतों का, प्राकृतों से अपभ्रंशों का और अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है।

प्राय: भाषा को लिखित रूप में व्यक्त करने के लिये लिपियों की सहायता लेनी पड़ती है। भाषा और लिपि, भाव व्यक्तीकरण के दो अभिन्न पहलू हैं। एक भाषा कई लिपियों में लिखी जा सकती है और दो या अधिक भाषाओं की एक ही लिपि हो सकती है। उदाहरणार्थ पंजाबी, गुरूमुखी तथा शाहमुखी दोनो में लिखी जाती है जबकि हिन्दी, मराठी, संस्कृत, नेपाली इत्यादि सभी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

परिभाषा

भाषा को प्राचीन काल से ही परिभाषित करने की कोशिश की जाती रही है। इसकी कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

(1) 'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष' धातु से बना है जिसका अर्थ है बोलना या कहना अर्थात् भाषा वह है जिसे बोला जाय।

(2) प्लेटो ने सोफिस्ट में विचार और भाषा के संबंध में लिखते हुए कहा है कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है और वही शब्द जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।

(3) स्वीट के अनुसार ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।

(4) वेंद्रीय कहते हैं कि भाषा एक तरह का चिह्न है। चिह्न से आशय उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपना विचार दूसरों के समक्ष प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं जैसे नेत्रग्राह्य, श्रोत्र ग्राह्य और स्पर्श ग्राह्य। वस्तुत: भाषा की दृष्टि से श्रोत्रग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।

(5) ब्लाक तथा ट्रेगर- भाषा यादृच्छिक भाष् प्रतिकों का तंत्र है, जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह सहयोग करता है।

(6) स्त्रुत्वा–भाषा यादृच्छिक भाष् प्रतीकों का तंत्र है जिसके द्वारा एक सामाजिक समूह के सदस्य सहयोग एवं संपर्क करते हैं।

(7) इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका - भाषा को यादृच्छिक भाष् प्रतिकों का तंत्र है जिसके द्वारा मानव प्राणि एक सामाजिक समूह के सदस्य और सांस्कृतिक साझीदार के रूप में एक सामाजिक समूह के सदस्य संपर्क एवं संप्रेषण करते हैं।

(8) ''भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि-संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परम्परा विचारों का आदान-प्रदान करता है।'' स्पष्ट ही इस कथन में भाषा के लिए चार बातों पर ध्यान दिया गया है-

(1) भाषा एक पद्धति है, यानी एक सुसम्बद्ध और सुव्यवस्थित योजना या संघटन है, जिसमें कर्ता, कर्म, क्रिया, आदि व्यवस्थिति रूप में आ सकते हैं।

(2) भाषा संकेतात्कम है अर्थात् इसमे जो ध्वनियाँ उच्चारित होती हैं, उनका किसी वस्तु या कार्य से सम्बन्ध होता है। ये ध्वनियाँ संकेतात्मक या प्रतीकात्मक होती हैं।

(3) भाषा वाचिक ध्वनि-संकेत है, अर्थात् मनुष्य अपनी वागिन्द्रिय की सहायता से संकेतों का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अंतर्गत आते हैं।

(4) भाषा यादृच्छिक संकेत है। यादृच्छिक से तात्पर्य है - ऐच्छिक, अर्थात् किसी भी विशेष ध्वनि का किसी विशेष अर्थ से मौलिक अथवा दार्शनिक सम्बन्ध नहीं होता। प्रत्येक भाषा में किसी विशेष ध्वनि को किसी विशेष अर्थ का वाचक 'मान लिया जाता' है। फिर वह उसी अर्थ के लिए रूढ़ हो जाता है। कहने का अर्थ यह है कि वह परम्परानुसार उसी

अर्थ का वाचक हो जाता है। दूसरी भाषा में उस अर्थ का वाचक कोई दूसरा शब्द होगा।

हम व्यवहार में यह देखते हैं कि भाषा का सम्बन्ध एक व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण विश्व तक है। व्यक्ति और समाज के बीच व्यवहार में आने वाली इस परम्परा से अर्जित सम्पत्ति के अनेक रूप हैं। समाज सापेक्षता भाषा के लिए अनिवार्य है, ठीक वैसे ही जैसे व्यक्ति सापेक्षता। भाषा संकेतात्मक होती है अर्थात् वह एक 'प्रतीक-स्थिति' है। इसकी प्रतीकात्मक गतिविधि के चार प्रमुख संयोजक है: दो व्यक्ति-एक वह जो संबोधित करता है, दूसरा वह जिसे संबोधित किया जाता है, तीसरी संकेतित वस्तु और चौथी-प्रतीकात्मक संवाहक जो संकेतित वस्तु की ओर प्रतिनिधि भंगिमा के साथ संकेत करता है।

विकास की प्रक्रिया में भाषा का दायरा भी बढ़ता जाता है। यही नहीं एक समाज में एक जैसी भाषा बोलने वाले व्यक्तियों का बोलने का ढंग, उनकी उच्चारण-प्रक्रिया, शब्द-भण्डार, वाक्य-विन्यास आदि अलग-अलग हो जाने से उनकी भाषा में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। इसी को शैली कह सकते हैं। भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर, सुनकर, लिखकर व पढ़कर अपने मन के भावों या विचारों का आदान-प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में- जिसके द्वारा हम अपने भावों को लिखित अथवा कथित रूप से दूसरों को समझा सके और दूसरों के भावो को समझ सके उसे भाषा कहते है।सार्थक शब्दों के समूह या संकेत को भाषा कहते है। यह संकेत स्पष्ट होना चाहिए। मनुष्य के जटिल मनोभावों को भाषा व्यक्त करती है, किन्तु केवल संकेत भाषा नहीं है। रेलगाड़ी का गार्ड हरी झण्डी दिखाकर यह भाव व्यक्त करता है कि गाड़ी अब खुलनेवाली है, किन्तु भाषा में इस प्रकार के संकेत का महत्त्व नहीं है। सभी संकेतों को सभी लोग ठीक-ठीक समझ भी नहीं पाते और न इनसे विचार ही सही-सही व्यक्त हो पाते हैं। सारांश यह है कि भाषा को सार्थक और स्पष्ट होना चाहिए।

बोली, विभाषा, भाषा और राजभाषा

यों बोली, विभाषा और भाषा का मौलिक अन्तर बता पाना कठिन है, क्योंकि इसमें प्रमुख अन्तर व्यवहार-क्षेत्र के विस्तार पर निर्भर है। वैयक्तिक विविधता के चलते एक समाज में चलने वाली एक ही भाषा के कई रूप दिखाई देते हैं। मुख्य रूप से भाषा के इन रूपों को हम इस प्रकार देखते हैं-

(1) बोली,
(2) विभाषा, और
(3) भाषा (अर्थात् परिनिष्ठित या आदर्श भाषा)

बोली और भाषा में अन्तर होता है। यह भाषा की छोटी इकाई है। इसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल अर्थात सीमित क्षेत्र से होता है। इसमें प्रधानता व्यक्तिगत बोलचाल के माध्यम की रहती है और देशज शब्दों तथा घरेलू शब्दावली का बाहुल्य होता है। यह मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा है, इसका रूप (लहजा) कुछ-कुछ दूरी पर बदलते पाया जाता है तथा लिपिबद्ध न होने के कारण इसमें साहित्यिक रचनाओं का अभाव रहता है। व्याकरणिक दृष्टि से भी इसमें विसंगतियाँ पायी जाती है।

विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा विस्तृत होता है यह एक प्रान्त या उपप्रान्त में प्रचलित होती है। एक विभाषा में स्थानीय भेदों के आधार पर कई बोलियाँ प्रचलित रहती हैं। विभाषा में साहित्यिक रचनाएँ मिल सकती हैं।

भाषा, या परिनिष्ठित भाषा अथवा आदर्श भाषा, विभाषा की विकसित स्थिति हैं। इसे राष्ट्र-भाषा या टकसाली-भाषा भी कहा जाता है।

प्राय: देखा जाता है कि विभिन्न विभाषाओं में से कोई एक विभाषा अपने गुण-गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि, जन-सामान्य में अधिक प्रचलन आदि के आधार पर राजकार्य के लिए चुन ली जाती है और उसे राजभाषा के रूप में या राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया जाता है।

राज्यभाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा

किसी प्रदेश की राज्य सरकार के द्वारा उस राज्य के अन्तर्गत प्रशासनिक कार्यों को सम्पन्न करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे राज्यभाषा कहते हैं। यह भाषा सम्पूर्ण प्रदेश के अधिकांश जन-समुदाय द्वारा बोलीऔर समझी जाती है। प्रशासनिक दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य में सर्वत्र इस भाषा को महत्त्व प्राप्त रहता है।

भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के लिए हिन्दी के अतिरिक्त 22 अन्य भाषाएं राजभाषा स्वीकार की गई हैं। राज्यों की विधानसभाएँ बहुमत के आधार पर किसी एक भाषा को अथवा चाहें तो एक से अधिक भाषाओं को अपने राज्य की राज्यभाषा घोषित कर सकती हैं।

राष्ट्रभाषा सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। प्राय: वह अधिकाधिक लोगों द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा होती है। प्राय: राष्ट्रभाषा ही किसी देश की राजभाषा होती है।

भाषा के विभिन्न रूप

जीवन के विभिन्न व्यवहारों के अनुरूप भाषिक प्रयोजनों की तलाश हमारे दौर की अपरिहार्यता है। इसका कारण यह है कि भाषाओं को सम्प्रेषणपरक प्रकार्य (फंक्शन) कई स्तरों पर और कई सन्दर्भों में पूरी तरह प्रयुक्ति सापेक्ष होता गया है। प्रयुक्ति और प्रयोजन से रहित भाषा, अब भाषा ही नहीं रह गई है। भाषा की पहचान केवल यही नहीं कि उसमें कविताओं और कहानियों का सृजन कितनी सप्राणता के साथ हुआ है, बल्कि भाषा की व्यापकतर संप्रेषणीयता का एक अनिवार्य प्रतिफल यह भी है कि उसमें सामाजिक सन्दर्भों और नये प्रयोजनों को साकार करने की कितनी सम्भावना है। इधर संसार भर की भाषाओं में यह प्रयोजनीयता धीरे-धीरे विकसित हुई है और रोजी-रोटी का माध्यम बनने की विशिष्टताओं के साथ भाषा का नया आयाम सामने आया है—वर्गाभाषा, तकनीकी भाषा, साहित्यिक भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा, बोलचाल की भाषा, मानक भाषा आदि।

बोलचाल की भाषा

'बालेचाल की भाषा' को समझने के लिए 'बोली' (क्पंसमबज) को समझना जरूरी है। 'बोली' उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है। विश्व में जब किसी जन-समूह का महत्त्व किसी भी कारण से बढ़ जाता है तो उसकी बोलचाल की बोली 'भाषा' कही जाने लगती है, अन्यथा वह 'बोली' ही रहती है।स्पष्ट है कि 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं क्योंकि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारस्परिक सम्पर्क होता है, तब बालेचाल की भाषा का प्रसार होता है।आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुई आपसी व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

मानक भाषा

भाषा के स्थिर तथा सुनिश्चित रूप को मानक या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं।भाषाविज्ञान कोश के अनुसार 'किसी भाषा की उस विभाषा को परिनिष्ठित भाषा कहते हैंजो अन्य विभाषाओं पर अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित कर लेती है तथा उन विभाषाओं को बोलने वाले भी उसे सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं।मानक भाषा शिक्षित वर्ग की शिक्षा, पत्रचार एवं व्यवहार की भाषा होती है। इसके व्याकरण तथा उच्चारण की प्रक्रिया लगभग निश्चित होती है। मानक भाषा को टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसी भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता है। हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत तथा ग्रीक इत्यादि मानक भाषाएँ हैं। किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है।मानकता अनेकता में एकता की खोज है, अर्थात यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प न हो तब तो वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हो तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है। जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है। उस भाषा के लगभग समूचे क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग होता है। मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलतः उसी वर्ग की भाषा होती है।

सम्पर्क भाषा

अनेक भाषाओं के अस्तित्त्व के बावजूद जिस विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है उसे सम्पर्क भाषा कहते हैं। एक ही भाषा परिपूरक भाषा और सम्पर्क भाषा दोनों ही हो सकती है। आज भारत में सम्पर्क भाषा के तौर पर हिन्दी

प्रतिष्ठित होती जा रही है, जबकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है।सम्पर्क भाषा के रूप में जब भी किसी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा के पद पर आसीन किया जाता है तब उस भाषा से कुछ अपेक्षाएँ भी रखी जाती हैं।जब कोई भाषा के रूप में उभरती है तब राष्ट्रीयता या राष्ट्रता से प्रेरित होकर वह प्रभुतासम्पन्न भाषा बन जाती है। यह तो जरूरी नहीं कि मातृभाषा के रूप में इसके बोलने वालों की संख्या अधिक हो पर द्वितीय भाषा के रूप में इसके बोलने वाले बहुसंख्यक होते हैं।

राजभाषा

जिस भाषा में सरकार के कार्यों का निष्पादन होता है उसे राजभाषा कहते हैं। कुछ लोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अन्तर नहीं करते और दोनों को समानार्थी मानते हैं। लेकिन दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। राष्ट्रभाषा सारे राष्ट्र के लोगों की सम्पर्क भाषा होती है, जबकि राजभाषा केवल सरकार के कामकाज की भाषा है।भारत के संविधान के अनुसार हिन्दी संघ सरकार की राजभाषा है। राज्य सरकार की अपनी-अपनी राज्य भाषाएँ हैं। राजभाषा जनता और सरकार के बीच एक सेतु का कार्य करती है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की उसकी अपनी स्थानीय राजभाषा उसके लिए राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान का प्रतीक होती है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अपनी स्थानीय भाषाएँ राजभाषा हैं। आज हिन्दी हमारी राजभाषा है।

राष्ट्रभाषा

देश के विभिन्न भाषा-भाषियों में पारस्परिक विचार-विनिमय की भाषा को राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा को देश के अधिकतर नागरिक समझते हैं, पढ़ते हैं या बोलते हैं। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश के नागरिकों के लिए गौरव, एकता, अखंडता और अस्मिता का प्रतीक होती है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की आत्मा की संज्ञा दी है। एक भाषा कई देशों की राष्ट्रभाषा भी हो सकती है, जैसे अंग्रेजी आज अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा कनाडाघ इत्यादि कई देशों की राष्ट्रभाषा है। संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो नहीं दिया गया है। लेकिन इसकी व्यापकता को देखते हुए इसे राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में राजभाषा के रूप में हिन्दी, अंग्रेजी की तरह न केवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा है, बल्कि उसकी भूमिका राष्ट्रभाषा के रूप में भी है।। वह

हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा है। महात्मा गांधी जी के अनुसार किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो, जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप में उपलब्ध हो। उनके अनुसार भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के निर्धारित अभिलक्षणों से युक्त है। उपर्युक्त सभी भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इसलिए यह प्रश्न निरर्थक है कि राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा आदि में से कौन सर्वाधिक महत्त्व का है, जरूरत है हिन्दी को अधिक व्यवहार में लाने की।

हिन्दी की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

हिंदी भारतीय गणराज की राजकीय और मध्य भारतीय- आर्य भाषा है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार, लगभग 25.79 करोड़ भारतीय हिंदी का उपयोग मातृभाषा के रूप में करते हैं, जबकि लगभग 42.20 करोड़ लोग इसकी 50 से अधिक बोलियों में से एक इस्तेमाल करते हैं। सन 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था।

हिन्दी भाषी क्षेत्रधहिन्दी क्षेत्र/हिन्दी पट्टीकृ हिन्दी पश्चिम में अम्बाला (हरियाणा) से लेकर पूर्व में पूर्णिया (बिहार) तक तथा उत्तर में बद्रीनाथ-केदारनाथ (उत्तराखंड) से लेकर दक्षिण में खंडवा (मध्य प्रदेश) तक बोली जाती है। इसे हिन्दी भाषी क्षेत्र या हिन्दी क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र के अंतर्गत 9 राज्य–उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश–तथा 1 केन्द्र शासित प्रदेश (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)–दिल्ली आते हैं। इस क्षेत्र में भारत की कुल जनसंख्या के 43 प्रतिशत लोग रहते हैं।

बोली, विभाषा एवं भाषा

विभिन्न बोलियाँ राजनीतिक-सांस्कृतिक आधार पर अपना क्षेत्र बढ़ा सकती हैं और साहित्य रचना के आधार पर वे अपना स्थान 'बोली' से उच्च करते हुए 'विभाषा' तक पहुँच सकती है।

विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा अधिक विस्तृत होती है। यह एक प्रान्त या उपप्रान्त में प्रचलित होती है। इसमें साहित्यिक रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं।

जैसे–हिन्दी की विभाषाएँ हैं–ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी व मैथिली।

विभाषा स्तर पर प्रचलित होने पर ही राजनीतिक, साहित्यिक या सांस्कृतिक गौरव के कारण भाषा का स्थान प्राप्त कर लेती है। जैसे–खड़ी बोली मेरठ, बिजनौर आदि की विभाषा होते हुए भी राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत होने के कारण राष्ट्रभाषा के पद पर अधिष्ठित हुई है।

इस प्रकार दो बातें स्पष्ट होती हैं–

बोली का विकास विभाषा में और विभाषा का विकास भाषा में होता है। बोली–विभाषा–भाषा

उदाहरण

भाषा–खड़ी बोली हिन्दी

विभाषा–हिन्दी क्षेत्र की प्रमुख बोलियाँ-ब्रजभाषा, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी व मैथिली

बोली–हिन्दी क्षेत्र की शेष बोलियाँ

मातृभाषा हिन्दी

भाषा के द्वारा मनुष्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। जन्म लेने के बाद मानव् जो प्रथम भाषा सीखता है उसे मातृभाषा कहते हैं। मातृभाषा, किसी भी व्यक्ति की सामाजिक एवं भाषाई पहचान होती है। मातृभाषा सीखने, समझने एवं ज्ञान की प्राप्ति में सरल है। मेरी मातृभाषा हिंदी मात्र एक संपर्क साध्य नहीं, वरन मातृतुल्य है। यह अभिव्यक्ति है उस पहले शब्द की जिससे मैंने अपनी जन्मदात्री को सम्बोधित किया था। पिता से पहली बार कुछ कहने का प्रयास और दादी के प्यार भरे शब्दों की मिठास है इसमें। प्यार है उन कहानियों का जो माँ ने अपनी गोदी मैं सुलाकर सुनाई थी। वो मिठास है, जो मिठाइयों के नाम सुनते ही अंत:करण मैं घुल जाती थी। साईकिल सीखते समय गिरने, उठ जाने, रोने और सीख जाने के मध्य जो संवाद हुए वो सब दर्ज हैं इसमें। स्कूल जाते समय का डर और असेंबली में पहली पहली बार खड़े होकर सुने गए वो अजीब से शब्द जिनमें से शायद ही कुछ समझ आया हो। कक्षा की वो डाँट, दोस्त बनने की प्रक्रिया, वह पहली पहली लड़ाई, शरारतें, गुस्सा, नाराजगी सब का माध्यम माध्यम का माध्यम माध्यम हिंदी तो थी। शिक्षा तो मात्र बहाना था था। पहली बार लिखे गए शब्द, रास्ते की दुकानों के बोर्डो पर लिखे नाम पढ़ने की खुशी, पहली कविता का पाठ, वह शेर और

खरगोश की कहानी सब हिंदी में ही तो थी। लड़ाई हो या प्यार हो सब हिंदी में प्यार हो सब हिंदी में हिंदी में ही तो हुआ। जी हां! अपनी पहली प्रेम कविता भी हिंदी में ही लिखी और पहली गाली भी हिंदी में ही सुनी। भाषण प्रतियोगिता का पुरस्कार, माइक पकड़ने का रोमांच, साहित्य के प्रति दीवानगी सभी हिंदी की ही तो देन है। शिक्षा का माध्यम भले ही अंग्रेजी हो गया पर दिल की भाषा तो आज भी हिंदी ही थी। हर वह प्रेम कविता, हर वह वाक्य जो अपनी प्रेयसी के लिए कहा हिंदी में ही तो था। वह प्यार, इजहार, तकरार सभी का माध्यम मेरी मातृभाषा ही तो थी। हिंदी मेरे लिए मात्र एक भाषा नहीं रही। यह मेरे जीवन की यात्र को परिभाषित करते हुए कुछ शब्दों, कुछ व्याख्याओं और कुछ वृतांतों का सम्मिश्रण है। हर बार नया शब्द सीखने की खुशी है। इसमें कितना अजीब है ना! जो सब शब्द सबसे खूबसूरत होते हैं एवं सबसे पहली बार कहे जाते हैं अक्सर वही विस्मृत हो जाते हैं। रह जाता है तो केवल वह भाव जिसका तारतम्य स्मृति के साथ सदा के लिए स्थापित हो जाता है। वस्तुत: मेरा हिंदी शब्दकोश, मेरी कविताएँ, मेरे लेख और मेरी विचार शृंखला, सभी का उद्भव और विकास हिंदी के साथ ही हुआ। एक प्रकार से मेरा हिंदी शब्दकोश, हिंदी साहित्य में अभिरुचि एवं अभिव्यक्ति का विकास मेरी जीवन यात्र, मेरे वृतांत और मेरे ज्ञान का भी उद्भव एवं विकास परिभाषित करता हुआ प्रतीत होता है। हिंदी जीवन-रेखा है। मैं तथा मेरे जैसे करोड़ों हिंदीभाषी सदैव इसके ऋणी रहेंगे तथा इसके प्रचार- प्रसार का प्रयास करते रहेंगे। हेमंत तिवारी बी.ए. (ऑनर्स।) द्वितीय वर्ष के छात्र हैं। वह हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में कविताएँ और लेख लिखते हैं और नियमित रूप से इस ब्लॉग के लिये अपनी रचनाएँ भेजते है।

आठवीं अनुसूची

आठवीं अनुसूची में संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त 22 प्रादेशिक भाषाओं का उल्लेख है। इस अनुसूची में आरम्भ में 14 भाषाएँ (असमिया, बांग्ला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु, उर्दू) थी। बाद में सिंधी को तत्पश्चात् कोंकणी, मणिपुरी , नेपाली को शामिल किया गया , जिससे इसकी संख्या 18 हो गई। तदुपरान्त बोडो, डोगरी, मैथिली, संथाली को शामिल किया गया और इस प्रकार इस अनुसूची में 22 भाषाएँ हो गईं।

संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त 22 प्रादेशिक भाषाएँ

असमिया	बांग्ला	गुजराती	हिन्दी	कन्नड़	कश्मीरी
मराठी	मलयालम	उड़िया	पंजाबी	संस्कृत	तमिल
तेलुगु	उर्दू	सिंधी	कोंकणी	मणिपुरी	नेपाली
बोडो	डोगरी	मैथिली	संथाली		

संघ की भाषा की समीक्षा

अनुच्छेद 343 के सन्दर्भ में- संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार संघ की राजभाषा, देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी घोषित की गई है। इससे देश के बहुमत की इच्छा ही प्रतिध्वनित होती है।

अनुच्छेद 343 (2) के अनुसार इसे भारतीय संविधान लागू होने की तारीखघ् अर्थात् 26 जनवरी, 1950 ई. से लागू नहीं किया जा सकता था, अनुच्छेद 343 (3) के द्वारा सरकार ने यह शक्ति प्राप्त कर ली कि वह इस 15 वर्ष की अवधि के बाद भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी रख सकती है। रही-सही कसर, बाद में राजभाषा अधिनियम, 1963 ने पूरी कर दी, क्योंकि इस अधिनियम ने सरकार के इस उद्देश्य को साफ कर दिया कि अंग्रेजी की हुकघ्मत देश पर अनन्त काल तक बनी रहेगी। इस प्रकार, संविधान में की गई व्यवस्था 343 (1) हिन्दी के लिए वरदान थी। परन्तु 343 (2) एवं 343 (3) की व्यवस्थाओं ने इस वरदान को अभिशाप में बदल दिया। वस्तुतः संविधान निर्माणकाल में संविधान निर्माताओं में जन साधारण की भावना के प्रतिकूल व्यवस्था करने का साहस नहीं था, इसलिय 343 (1) की व्यवस्था की गई। परन्तु अंग्रेजीयत का वर्चस्व बनाये रखने के लिए 343 (2) एवं 343 (3) से उसे प्रभावहीन कर देश पर मानसिक गुलामी लाद दी गई।

अनुच्छेद 344 के सन्दर्भ में- अनुच्छेद 344 के अधीन प्रथम राजभाषा आयोगध्बी. जी. खेर आयोग का 1955 में तथा संसदीय राजभाषा समिति/जी. बी. पंत समिति का 1957 में गठन हुआ। जहाँ खेर आयोग ने हिन्दी को एकान्तिक व सर्वश्रेष्ठ स्थिति में पहुँचाने पर जोद दिया, वहीं पर पंत समिति ने हिन्दी को प्रधान राजभाषा बनाने पर जोर तो दिया, लेकिन अंग्रेजी को हटाने के बजाये उसे सहायक राजभाषा बनाये रखने की वकघलत की। हिन्दी के दुर्भाग्य से सरकार ने खेर आयोग को महज औपचारिक माना और हिन्दी के विकास के लिए कोई

ठोस कदम नहीं उठाए, जबकि सरकार ने पंत समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया, जो आगे चलकर राजभाषा अधिनियम 196367 का आधार बनी, जिसने हिन्दी का सत्यानाश कर दिया।

समग्रता से देखें तो स्वतंत्रता-संग्राम काल में हिन्दी देश में राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक थी, अतएव राष्ट्रभाषा बनी, और राजभाषा अधिनियम 1963 के बाद यह केवल सम्पर्क भाषा होकर ही रह गयी।

प्रादेशिक भाषाएँ एवं 8वीं अनुसूची की समीक्षा

अनुच्छेद 345, 346 से स्पष्ट है कि भाषा के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को पूरी छूट दी गई। संविधान की इन्हीं अनुच्छेदों के अधीन हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी राजभाषा बनी। हिन्दी इस समय नौं राज्यों-उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, राजस्थान, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश तथा एक केन्द्र शासित प्रदेश दिल्ली' की राजभाषा है। उक्त प्रदेशों में आपसी पत्र व्यवहार की भाषा हिन्दी है। दिनोंदिन हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी का प्रयोग सभी सरकारी परियोजनाओं के लिए बढ़ता जा रहा है। इनके अतिरिक्त, अहिन्दी भाषी राज्यों में महाराष्ट्र, गुजरात व पंजाब की एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में चंडीगढ़ व अंडमान निकोबार की सरकारों ने हिन्दी को द्वितीय राजभाषा घोषित कर रखा है तथा हिन्दी भाषी राज्यों से पत्र-व्यवहार के लिए हिन्दी को स्वीकार कर लिया है। अनुच्छेद 347 के अनुसार यदि किसी राज्य का पर्याप्त अनुपात चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली कोई भाषा राज्य द्वारा अभिज्ञात की जाय तो राष्ट्रपति उस भाषा को अभिज्ञा दे सकता है। समय-समय पर राष्ट्रपति ऐसी अभिज्ञा देते रहे हैं, जो कि आठवीं अनुसूची में स्थान पाते रहे हैं। जैसे-1967 में सिंधी, 1992 में कोंकणी, मणिपुरी व नेपाली एवं 2003 में बोडो, डोगरी, मैथिली व संथाली। यही कारण है कि संविधान लागू होने के समय जहाँ 14 प्रादेशिक भाषाओं को मान्यता प्राप्त थी, वहीं अब यह संख्या बढ़कर 22 हो गई है।

सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय आदि की भाषा की समीक्षा

अनुच्छेद 348, 349 से स्पष्ट हो जाता है कि न्याय व कघनून की भाषा, उन राज्यों में भी जहाँ हिन्दी को राजभाषा मान लिया गया है, अंग्रेजी ही है। नियम, अधिनियम, विनियम तथा विधि का प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी में होने के कारण सारे नियम अंग्रेजी में ही बनाए जाते हैं। बाद में उनका अनुवाद मात्र कर

दिया जाता है। इस प्रकार, न्याय व कानून के क्षेत्र में हिन्दी का समुचित प्रयोग हिन्दी राज्यों में भी अभी तक नहीं हो सका है।

अनुच्छेद 350-

भले ही संवैधानिक स्थिति के अनुसार व्यक्ति को अपनी व्यथा के निवारण हेतु किसी भी भाषा में अभ्यावेदन करने का हकदार माना गया है, लेकिन व्यावहारिक स्थिति यही है कि आज भी अंग्रेजी में अभ्यावेदन करने पर ही अधिकारी तवज्जोंध्ध्यान देना गवारा करते हैं।

अनुच्छेद 351– (हिन्दी के विकास के लिए निदेश)

अनुच्छेद 351 राजभाषा विषयक उपबंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें हिन्दी के भावी स्वरूप के विकास की परिकल्पना सन्निहित है। हिन्दी को विकसित करने की दिशाओं का इसमें संकेत है। इस अनुच्छेद के अनुसार संघ सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह हिन्दी भाषा के विकास और प्रसार के लिए समुचित प्रयास करे ताकि भारत में राजभाषा हिन्दी के ऐसे स्वरूप का विकास हो, जो कि समूचे देश में प्रयुक्त हा सके और जो भारत को मिली-जुली संस्कृति की अभिव्यक्ति की वाहिका बन सके। इसके लिए संविधान में इस बात का भी निर्दश दिया गया है, कि हिन्दी में हिन्दुस्तानी और मान्यता प्राप्त अन्य भारतीय भाषाओं की शब्दावली और शैली को भी अपनाया जाए और मुख्यत: संस्कृत तथा गौणत: अन्य भाषाओं (विश्व की किसी भी भाषा) से शब्द ग्रहण कर उसके शब्द-भंडार को समृद्ध किया जाए। संविधान के निर्मताओं की यह प्रबल इच्छा थी कि हिन्दी भारत में ऐसी सर्वमान्य भाषा के स्वरूप को ग्रहण करे, जो कि सब प्रान्तों के निवासियों को स्वीकार्य हो। संविधान के निर्मताओं को यह आशा थी कि हिन्दी अपने स्वाभाविक विकास में भारत की अन्य भाषाओं से वरिष्ठ सम्पर्क स्थापित करेगी और हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच में साहित्य का आदान-प्रदान भी होगा। संविधान के निर्माताओं ने उचित ढंग से यह आशा की थी कि राजभाषा हिन्दी अपने भावी रूप का विकास करने में अन्य भारतीय भाषाओं का सहारा लेगी।

राष्ट्रपति का आदेश,(1960)– शिक्षा मंत्रालय, विधि मंत्रलय, वैज्ञानिक अनुसंधान व सांस्कृतिक कार्य मंत्रलय तथा गृह मंत्रलय को हिन्दी को राजभाषा के रूप में विकसित करने हेतु विभिन्न निर्देश।

राजभाषा अधिनियम, 1963(1967 में संशोधित)– संविधान के अनुसार 15 वर्ष के बाद अर्थात् 1965 ई. से सारा काम-काज हिन्दी में शुरू होना था, परन्तु सरकार की ढुल-मुल नीति के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। अहिन्दी क्षेत्रों में, विशेषत: बंगाल और तमिलनाडु में हिन्दी का घोर विरोध हुआ। इसकी प्रतिक्रिया हिन्दी क्षेत्र में हुई। जनसंघ एवं प्रजा सोशलिस्ट पार्टी/पी. एस. पी. द्वारा हिन्दी का घोर समर्थन किया गया। हिन्दी के घोर कट्टरपंथी समर्थकों ने भाषायी उन्मादों को उभारा, जिसके कारण हिन्दी की प्रगति के बदले हिन्दी को हानि पहुँची। इस भाषायी कोलाहल के बीच प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने आश्वासन दिया कि हिन्दी को एकमात्र राजभाषा स्वीकार करने से पहले अहिन्दी क्षेत्रों की सम्मति प्राप्त की जाएगी और तब तक अंग्रेजी को नहीं हटाया जाएगा। राजभाषा विधेयक को गृहमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने प्रस्तुत किया। राजभाषा विधेयक का उद्देश्य–जहाँ राजकीय प्रयोजनों के लिए 15 वर्ष के बाद यानी 1965 से हिन्दी का प्रयोग आरम्भ होना चाहिए था, वहाँ व्यवस्था को पूर्ण रूप से लागू न करके उस अवधि के बाद भी संघ के सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग बनाये रखना।

राजभाषा अधिनियम के प्रावधान

राजभाषा अधिनियम, 1963 में कुल 9 धाराएँ हैं, जिनमें सर्वप्रथम है–26 जून, 1965 से हिन्दी संघ की राजभाषा तो रहेगी ही पर उस समय से हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भी संघ के उन सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए बराबर प्रयुक्त होती रहेगी, जिनके लिए वह उस तिथि के तुरन्त पहले प्रयुक्त की जा रही थी। इस प्रकार 26 जून, 1965 से राजभाषा अधिनियम, 1963 के तहत द्विभाषित स्थिति प्रारम्भ हुई, जिसमें संघ के सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाएँ प्रयुक्त की जा सकती थी।

राजभाषा अधिनियम

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 के अनुसार समय-समय पर संसद के भीतर और बाहर जवाहर लाल नेहरू द्वारा दिए गए आश्वासनों और लाल बहादुर शास्त्री द्वारा राजभाषा विधेयक, 1963 को प्रस्तुत करते समय अहिन्दी भाषियों को दिलाए गए विश्वास को मूर्त रूप प्रदान करने के उद्देश्य से इंदिरा गाँधी, जो अपने पिता की भाँति अहिन्दी भाषियों से सहानुभूति रखती थी, के शासनकाल में राजभाषा (संशोधन) विधेयक, 1967 पारित किया गया।

राजभाषा अधिनियम के प्रावधान

राजभाषा (संशोधन) अधिनियम, 1967 के प्रावधान के अनुसार इस अधिनियम के तहत राजभाषा अधिनियम, 1963 की धारा के स्थान पर नये उपबंध लागू हुए। इसके अनुसार, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधानमंडलों के द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित करना होगा और विधानमंडलों के संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् उसकी समाप्ति के लिए संसद के हर सदन द्वारा संकल्प पारित करना होगा। ऐसा नहीं होने पर अंग्रेजी अपनी पूर्व स्थिति में बनी रहेगी। इस अधिनियम के द्वारा इस बात की व्यवस्था की गई कि अंग्रेजी सरकार के काम-काज में सहभाषा के रूप में तब तक बनी रहेगी, जब तक अहिन्दी भाषी राज्य हिन्दी को एकमात्र राजभाषा बनाने के लिए सहमत न हो जाएँ। इसका मतलब यह हुआ कि भारत का एक भी राज्य चाहेगा कि अंग्रेजी बनी रहे तो वह सारे देश की सहायक राजभाषा बनी रहेगी।

संसद द्वारा पारित संकल्प(1968)

राजभाषा हिन्दी एवं प्रादेशिक भाषाओं की प्रगति को सुनिश्चित करना।

त्रिभाषा सूत्र को लागू करना– एक की भावना के संवर्द्धन हेतु भारत सरकार राज्यों के सहयोग से त्रिभाषा सूत्र को लागू करेगी। त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत यह प्रस्तावित किया गया कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी व अंग्रेजी के अतिरिक्त दक्षिणी भारतीय भाषाओं में से किसी एक को तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषा व अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी को पढ़ाने की व्यवस्था की जाए।

त्रिभाषा सूत्र का प्रयोग सफल नहीं हुआ। न तो हिन्दी क्षेत्र के लोगों ने किसी दक्षिण भारतीय भाषा का अध्ययन किया और न ही गैर-हिन्दी क्षेत्र के लोगों ने हिन्दी का।

राजभाषा नियम (1976)

इन नियमों की संख्या 12 है। जिनमें हिन्दी के प्रयोग के सन्दर्भ में भारत के क्षेत्रों का 3 वर्गीय विभाजन किया गया है और प्रधान राजभाषा हिन्दी और सह राजभाषा अंग्रेजी एवं प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग हेतु नियम दिए गए हैं। आज भी इन्हीं नियमों के अनुसार सरकार की द्विभाषिक नीति का अनुपालन हो रहा है।

3

लिपि संरचना

मानव के महान् आविष्कारों में लिपि का स्थान सर्वोपरि है। मानव समाज जब ताम्रयुग में पहुँचता है, प्राचीन जगत की नदीघाटी सभ्यताओं में जब नगरों की स्थापना होने लगती है, तब हम पहली बार लिपियों को जन्म लेते देखते हैं। मिस्र, मेसोपोटामिया और चीन की आरंभिक लिपियां मुख्यत: भाव-चित्रत्मक थीं। सिंधु सभ्यता की लिपि किस स्वरूप की है, यह अभी तक जाना नहीं गया है। ईसा पूर्व दसवीं सदी के आसपास पहली बार वर्णमालात्मक लिपियां जन्म लेती हैं। तब से आज तक लिपियों का विशेष विकास नहीं हुआ। बहुत-सी पुरालिपियां मर गई हैं, उनका ज्ञान लुप्त हो गया था। पिछले करीब दो सौ वर्षों में संसार के अनेक पुरालिपिविदों ने पुन: उन पुरालिपियों का उद्घाटन किया है। परिणाम स्वरूप हमें प्राचीन सभ्यताओं के बारे में नई-नई जानकारी मिली है।

लिपि का आविष्कार

सभ्य मानव का सबसे बड़ा आविष्कार है लेखन-कला। आज हम अपने चहुंओर इतनी अधिक लिखित सामग्री देखते हैं कि यह सोचना भूल ही जाते हैं कि पहले-पहल आदमी ने लिखना कैसे आरंभ किया होगा और लेखन का विकास कैसे हुआ होगा। मानव के विकास में, अर्थात मानव-सभ्यता के विकास में, वाणी के बाद लेखन का ही सबसे अधिक महत्त्व है। अन्य पशुओं से आदमी को इसीलिए श्रेष्ठ माना जाता है कि वह वाणी द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त

कर सकता है। किंतु मानव का बहुमुखी विकास इस वाणी को लिपिबद्ध करने की कला के कारण ही हुआ। मुंह से बोले गए शब्द या हाव-भावों से व्यक्त किए गए विचार चिरस्थायी नहीं रहते। दो या अधिक व्यक्तियों के बीच में हुई बातचीत केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहती है। भाषा का आधार ध्वनि है। भाषा श्रव्य या कर्णगोचर होती है। अभी उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तक बोली गई भाषा को स्थायी रूप देने के लिए उसे लिपिबद्ध करने के अलावा कोई दूसरा तरीका नहीं था।

प्राचीन काल के मानव को अपने विचारों को सुरक्षित रखने के लिए लिपि का आविष्कार करना पड़ा था। इसलिए हम कह सकते हैं कि लिपि ऐसे प्रतीक-चिह्नों का संयोजन है, जिनके द्वारा श्रव्य भाषा को दृष्टिगोचर बनाया जाता है। सुनी या कही हुई बात केवल उसी समय और उसी स्थान पर उपयोगी होती है। किंतु लिपिबद्ध कथन या विचार दिक् और काल की सीमाओं को लांघ सकते हैं। लिपि के बारे में यही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। संसार की बहुत-सी लुप्तप्राय सभ्यताओं के बारे में आज हम इसीलिए बहुत कुछ जानते हैं कि वे अपने बारे में बहुत-कुछ लिखा हुआ छोड़ गई हैं।

आज संसार में लगभग 400 विभिन्न लिपियों का प्रयोग होता है। इनमें से बहुतों का आरंभ एवं विकास प्राचीन काल की कुछ प्रमुख लिपियों से हुआ है। जैसे, एशिया के पश्चिमी तट पर ई. पू. दूसरी सहस्त्राब्दी में सेमेटिक (सामी) भाषा-परिवार के लिए एक अक्षर मालात्मक लिपि अस्तित्त्व में आई। 1000 ई. पू. के आसपास इस लिपि ने व्यंजनात्मक या वर्णमालात्मक रूप धारण किया। उस समय की इस लिपि को 'उत्तरी सेमेटिक', कनानी' या 'फिनीशियन' जैसे नाम दिए गए हैं। यूनानी लिपि स्पष्टत: फिनीशियन लिपि के आधार पर ही बनी थी। और, आज यूरोप, अमेरिका और संसार के कई अन्य देशों में जिन लिपियों का चलन है वे सब इस यूनानी लिपि और इससे निर्मित लैटिन या रोमन लिपि से ही विकसित हुई हैं। दूसरी ओर यूनानी पूर्व की ओर इस उत्तरी सेमेटिक लिपि ने आरमेई, खरोष्ठी, पहलवी और अरबी जैसी लिपियों को जन्म दिया।

भारत में लिपि का इतिहास

ठसवबुनवजम-वचमद.हर्पा लिपि ऐसे प्रतीक-चिह्नों का संयोजन है, जिनके द्वारा श्रव्य भाषा को दृष्टिगोचर बनाया जाता है। सुनी या कही हुई बात

केवल उसी समय और उसी स्थान पर उपयोगी होती है। किंतु लिपिबद्ध कथन या विचार दिक् और काल की सीमाओं को लांघ सकते हैं।

भारत में लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में अस्तित्त्व में आई ब्राह्मी लिपि ने भी बहुत-सी लिपियों को जन्म दिया है। भारत की सारी वर्तमान लिपियां (अरबी-फारसी लिपि को छोड़कर) ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। इतना ही नहीं तिब्बती, सिंहली तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की बहुत-सी लिपियां ब्राह्मी से ही जन्मी हैं। तात्पर्य यही कि धर्म की तरह लिपियाँ भी देशों और जातियों की सीमाओं को लांघती चली गई। भाषाओं की सीमाएं लांघना तो लिपियों के लिए बहुत ही सरल काम रहा है। जो लिपि आरंभ में एक सेमेटिक भाषा के लिए अस्तित्त्व में आई थी, उसे बाद में 'भारोपीय भाषा परिवार' की अनेक भाषाओं के लिए अपना लिया गया।

प्राचीन काल से ही लेखन-कला को पवित्र माना जाता रहा है। प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी लिपियों के आविष्कर्त्ता के रूप में किसी न किसी देवता की कल्पना की है। भारत में यह मान्यता थी कि लिपि के निर्माता ब्रह्मा हैं, और शायद इसीलिए हमारे देश की प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा। प्राचीन मिस्र के थोत को लेखन का देवता माना जाता था। बेबीलोन में लेखन का देवता नेबो था। प्राचीन यहूदी परंपरा के अनुसार लिपि के जनक पैगंबर मूसा थे। इस्लाम की मान्यता है कि अल्लाह ने ही अक्षर बनाए और आदम को सौंपे। कुछ यूनानी अनुश्रुतियों में हेर्मेस को यूनानी लिपि का जनक बताया गया है। परंतु ई.पू. छठी शताब्दी का प्रसिद्ध इतिहासकार हिरोदोतस स्पष्ट शब्दों में लिखता है कि यूनानी लिपि का निर्माण फिनीशियन लिपि के आधार पर हुआ।

आज हम जानते हैं कि लिपियाँ मानव की ही कृतियां है, उन्हें ईश्वर या देवता ने नहीं बनाया। प्राचीन काल में किसी पुरातन और कुछ जटिल वस्तु को रहस्यमय बनाए रखने के लिए उस पर ईश्वर या किसी देवता की मुहर लगा दी जाती थीय किंतु आज हम जानते हैं कि लेखन-कला किसी 'ऊपर वाले' की देन नहीं है, बल्कि वह मानव की ही बौद्धिक कृति है।

देवनागरी लिपि

'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहत' ऐसा अर्थ करके पीछा छुड़ाते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्रह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात

के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खंड़ का प्रमाण देते हैं। नागर खंड़ में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'।

गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) को ही 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अत: नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं, जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी अक्षर भी हैं, मुर्जरवंशी राजा जयभट (तीसरे) का कलचुरि (चेदि) संवत् 456 (ई0 स0 706) का ताम्रपत्र हैं। यह ताम्रशासन अधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्ती मम श्री जयभटस्य) उतरीय भारत की लिपि में हैं, जो नागरी से मिलती जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात में जितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुंड्रवर्धन आदि से लिए हुए ब्राह्मणों को ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट (राठौड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उतरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा वत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह 'ब्राह्मी' ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय तो आधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललितविस्तर' में जो उन 64 लिपियों के नाम गिनाए गए हैं, जो बुद्ध को सिखाई गई, उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मी लिपि' नाम हैं। 'ललितविस्तर' का चीनी भाषा में अनुवाद ई. स. 308 में हुआ था। जैनों के 'पन्नवणा' सूत्र और 'समवायांग सूत्र' में 18 लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगव्रतीसूत्र का आरंभ 'नमो बंभीए लिबिए' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से

होता है। नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है, जो जैन विद्वानों के अनुसार 453 ई. के पहले का बना है। 'नित्यासोडशिकार्णव' के भाष्य में भास्करानंद 'नागर लिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि' में 'ए' का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयवदुद्भवी लेखो वस्य तत। नागर लिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयैब लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि अशोकलिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है, जिसमें फेरफार होते होते आजकल की नागरी का 'ए' बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने, जिन्हें साढे सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है, जो सिन्ध नदी के पार के प्रदेशों (गाँधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक तो नैपाल की तराई में 'पिप्रवा' नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अतंर इतना ही है कि इनमें दीर्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर बड़ली नामक ग्राम में मिला हैं महावीर संवत् 84 (= ई. स. पूर्व 443) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें 'वीराब' में जो दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिल्कुल निराली और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यो या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के 'प्रज्ञापनासूत्र' में लिखा है कि 'अर्धमागधी' भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। अर्धमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है, जिससे हिंदी निकली है। अत: ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमश: उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में लगती है। किस प्रकार आशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमश: रूपांतरित

होते होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नक्शे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है।

मि. शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जाने वाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा'।

देवनागरी लिपि को आरंभिक समय में ब्राह्मी लिपि के रूप में जाना जाता था। देवनागरी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 453 ई. में जैन ग्रंथों में उल्लेखित है, देवनागरी लिपि का विकास उत्तर भारतीय ऐतिहासिक गुप्त लिपि से माना गया है। परन्तु इसकी व्युत्पत्ति का स्रोत ब्राह्मी वर्णाक्षर है, जिसने सभी आधुनिक भारतीय लिपियों तथा भाषाओं के विकास में सहयोग किया है। देवनागरी लिपि को सर्वाधिक पूर्णतर कहा जा सका है। भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण एवं शब्दावली के अनुसार इसे अक्षरात्मक कहा जाता है। इसकी पूर्णता इससे ज्ञात होती है कि यह लिखित एवं उच्चारित दोनों रूपों में एक समान है, इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए उपयुक्त संकेतों की व्यवस्था है।

देवनागरी एक लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ तथा कुछ विदेशी भाषाएँ लिखी जाती हैं। संस्कृत, पालि, हिन्दी, मराठी, कोंकणी, सिन्धी, कश्मीरी, नेपाली, गढ़वाली, बोडो, अंगिका, मगही, भोजपुरी, मैथिली, संथाली आदि भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं। इसे नागरी लिपि भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, विष्णुपुरिया मणिपुरी, रोमन और उर्दू भाषाएँ भी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

इसमें कुल 52 अक्षर हैं, जिसमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। अक्षरों की क्रम व्यवस्था, विन्यास भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक्य-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं। एक मत के अनुसार देवनगर काशी में प्रचलन के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा।

भारत तथा एशिया की अनेक लिपियों के संकेत देवनागरी से अलग हैं, पर उच्चारण व वर्ण-क्रम आदि देवनागरी के ही समान हैं, क्योंकि वे सभी ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं। इसलिए इन लिपियों को परस्पर आसानी से लिप्यन्तरित

किया जा सकता है। देवनागरी लेखन की दृष्टि से सरल, सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर और वाचन की दृष्टि से सुपाठ्य है।

स्वर			व्यंजन				
अ		a	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
आ	(ा)	A	k	kh	g	gh	n
इ	(ि)	i	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
ई	(ी)	I	c	ch	j	jh	n
उ	(ु)	u	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ऊ	(ू)	U	T	Th	D	Dh	N
ऋ	(ृ)	R	त्	थ्	द्	ध्	न्
ॠ	(ॄ)	RR	t	th	d	dh	n
ऌ	(ॢ)	lr.	प्	फ्	ब्	भ्	म्
ए	(े)	e	p	ph	b	bh	m
ऐ	(ै)	ai	य्	र्	ल्	व्	
ओ	(ो)	o	y	r	l	v/w	
औ	(ौ)	au	श्	ष्	स्	ह्	क्ष्
अं	(ं)	m.	S	sh	s	h	jn
अः	(ः)	:					

देवनागरी लिपि

देवनागरी लिपि की उत्पत्ति

संसार की सभी भाषाओं को लिखने के लिए किसी न किसी लिपि का प्रयोग किया जाता है। उसी प्रकार देवनागरी भी एक लिपि है। जिसका प्रयोग मूलत: हिंदी भाषा को लिखने के लिए किया जाता है। देवनागरी लिपि की उत्पत्ति मूलत: ब्राह्मी लिपि से हुई है।

प्राचीन समय में आर्यों के द्वारा प्रयुक्त की गई ब्राह्मी लिपि, संभवत: दुनिया की सर्वाधिक परिपूर्ण प्राचीन लिपि है। समस्त भारतीय लिपियों का जन्म (उर्दू और सिंधी के अतिरिक्त) ब्राह्मी लिपि से हुआ है। तीसरी-चौथी शताब्दी से ही भारतवर्ष में ब्राह्मी लिपि का प्रचलन था।

इसी ब्राह्मी लिपि से देवनागरी लिपि विकसित हुई और सातवीं शताब्दी के आस-पास से व्यवहृत होने लगी। कुछ विद्वान इसे ब्राह्मी लिपि ही मानते हैं जिसमें किंचित् परिवर्तन के साथ उसका नाम देवनागरी हो गया। अर्थात् देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है।

फिर भी, यहाँ एक बात ध्यान रखनी आवश्यक है कि देवनागरी लिपि भले ही ब्राह्मी से उद्‌भूत हो, किन्तु अपने विकासक्रम में उसने फारसी, गुजराती, रोमन आदिक लिपियों से भी तत्त्वों को ग्रहण किया और एक परिपूर्ण लिपि के रूप में विकसित हुई। यथा- विराम चिह्नों का अधिकाधिक प्रयोग देवनागरी में, रोमन लिपि के प्रभाव से है।

इसका कारण यह है कि संस्कृत भाषा कारक-विभक्ति आदि के व्याकरणिक नियमों से इस प्रकार कसी हुई है कि उसके लिए विराम-चिह्नों की अधिक आवश्यकता ही नहीं थी। हाँ! जब उसका प्रयोग हिंदी जैसी नवीन भाषाओं के लिए शुरू हुआ तो स्पष्टता के लिए विराम-चिह्नों का प्रयोग आवश्यक हो गया। हिंदी भाषा की अनेक विशेषताएँ देवनागरी लिपि के प्रयोग के कारण हैं।

देवनागरी लिपि का नामकरण

देवनागरी लिपि के नामकरण के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। देवनागरी के नामकरण से संबंधित निम्नलिखित विचारधाराएँ हैं जिनके आधार पर इस लिपि के नामकरण का निर्णय किया जा सकता है-

देवनागरी लिपि के नामकरण के संबंध में पहला और प्रमुख सिद्धान्त यह है कि 'देवनगर' में प्रयोग के कारण इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ा।

प्राचीन काल में देवी-देवताओं की पूजा कुछ विशेष संकेतों और चिह्नों के द्वारा होती थी जो विभिन्न प्रकार की आकृतियों यथा- त्रिकोण, चतुर्भुज आदि के मध्य लिखे जाते थे। इन आकृतियों को 'देवनगर' कहा जाता था। देवनगर के मध्य लिखे जाने के कारण इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ा।

गुजरात के देवनगर नामक स्थान से संबंधित होने के कारण इस लिपि का नामकरण देवनागरी के रूप में हुआ, यह सिद्धान्त भी भाषाविदों के मध्य प्रचलित है। देवनागरी लिपि का सर्वाधिक प्राचीन प्रामाणिक लेख गुजरात में ही (706 ई.) प्राप्त हुआ जो इस सिद्धान्त कि पुष्टि करता है।

अपने प्रादुर्भाव के तुरंत बाद इस लिपि ने संस्कृत भाषा को सुशोभित किया। चूँकि संस्कृत को देवभाषा कहा जाता है, इसलिए इसका नाम देवनागरी लिपि हो गया।

गुजरात के नागर विद्वानों के द्वारा प्रयोग किए जाने के कारण भी कुछ विद्वान इसका नाम देवनागरी होना मानते हैं।

नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा, कुछ विद्वान ऐसा भी मानते हैं।

देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

1. देवनागरी लिपि ध्वन्यात्मक है। ध्वन्यात्मकता देवनागरी लिपि की सर्वप्रमुख विशेषता है। ध्वन्यात्मकता को सरल भाषा में समझें तो इसका अर्थ है–जैसा बोला जाए वैसा लिखा जाए और जैसा लिखा जाए वैसा ही बोला जाए।
2. देवनागरी में प्रत्येक लिपि चिह्न का एक निश्चित ध्वन्यात्मक मूल्य है। इसके द्वारा उच्चरित ध्वनियों को व्यक्त करना बहुत सरल है।
3. देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक लिपि है। इस लिपि में वर्णों का संयोजन बहुत ही व्यवस्थित, सुसंगठित व क्रमबद्ध ढंग से किया गया है।
4. प्रत्येक वर्ण को उसकी विशेषता और प्रकार्य के आधार पर स्थान प्रदान किया गया है। स्वरों तथा व्यंजनो की सुनियोजित एवं क्रमबद्ध व्यवस्था है।
5. देवनागरी लिपि में हरेक ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न निश्चित है। जैसे– 'कला' शब्द में 'क' की ध्वनि के लिए एक लिपि चिह्न 'क' नियत है। इस ध्वनि के 'ज्ञ' 'ब' अथवा 'फ' आदि अनेक चिह्नों का भ्रामक प्रयोग नहीं होता।
7. लिपि चिह्नों की अधिकता देवनागरी की एक प्रमुख विशेषता है। देवनागरी लिपि में 52 से अधिक लिपि चिह्नों और कुछ अन्य आगत वर्णों (ऑ, फ) का प्रयोग होता है, जो प्राय: हर प्रकार की ध्वनि को लिपिबद्ध करने में सक्षम हैं।
8. देवनागरी की वर्णमाला सर्वाधिक व्यवस्थित वर्णमाला है। इस वर्णमाला में सभी वर्णों को उनकी उच्चारणादि विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

उदाहरणत: कंठ से उच्चरित वर्णों को एक वर्ग 'क वर्ग' में रखा गया है। इसी प्रकार अल्पप्राण–महाप्राण वर्णों को भी एक निश्चित क्रम में रखा गया है। निश्चित ही देवनागरी लिपि में वर्णों का सुनिश्चित वर्गीकरण किया गया है।

1. व्यंजन चिह्नों की आक्षरिकता–देवनागरी लिपि में प्रत्येक व्यंजन के साथ 'अ' वर्ण का संयोग रहता है। जैसे- क+अ = क । लिपि का यह गुण आक्षरिकता कहलाता है। इससे लेखन में समय और स्थान की बचत होती है।

इसके अतिरिक्त देवनागरी की कुछ अन्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

1. देवनागरी लिपि न तो शुद्ध रूप से अक्षरात्मक लिपि है न ही वर्णात्मक।
2. यह लिपि बायीं से दायीं ओर लिखी जाती है।
3. इसमें जो ध्वनि का नाम है वही वर्ण का नाम है।
4. इस लिपि में संयुक्त वर्णो का प्रयोग किया जाता है, यह भी इसकी एक विशेषता है।
5. इसके लेखन और उच्चारण में पर्याप्त एकरूपता और स्पष्टता है।

हिन्दी भाषा की लिपि के रूप में विकास

देवनागरी पर महापुरुषों के विचार

हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि दे सकती है।

आचार्य विनोबा भावे

हमारी नागरी दुनिया की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है।

राहुल सांकृत्यायन

हिंदुस्तान के लिये देवनागरी लिपि का ही व्यवहार होना चाहिए, रोमन लिपि का व्यवहार यहाँ हो ही नहीं सकता।

महात्मा गाँधी

उर्दू लिखने के लिये देवनागरी लिपि अपनाने से उर्दू उत्कर्ष को प्राप्त होगी।

खुशवन्त सिंह

समस्त भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक हो तो वह देवनागरी ही हो सकती है।

कृष्णस्वामी अय्यर न्यायाधीश

बँगला वर्णमाला की जाँच से मालूम होता है कि देवनागरी लिपि से निकली है और इसी का सीधा सादा रूप है।

रमेशचंद्र दत्त

देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

रविशंकर शुक्ल

देवनागरी लिपि को हिन्दी भाषा की अधिकृत लिपि बनने में बड़ी कठिनाठयों का सामना करना पड़ा है। अंग्रेजों की भाषा नीति फारसी की ओर अधिक झुकी हुई थी। इसीलिए हिन्दी को भी फारसी लिपि में लिखने का षड़यंत्र किया गया।

जॉन गिलक्राइस्ट–हिन्दी भाषा और फारसी लिपि का घालमेल फोर्ट विलियम कॉलेज (1800-54) की देन थी। फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के सर्वप्रथम अध्यक्ष जॉन गिलक्राइस्ट थे। उनके अनुसार हिन्दुस्तानी की तीन शैलियाँ थी–दरबारी या फारसी शैली, हिन्दुस्तानी शैली व हिन्दवी शैली। वे फारसी शैली को दुरूह तथा हिन्दवी शैली को गँवारू मानते थे। इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तानी शैली को प्राथमिकता दी। उन्होंने हिन्दुस्तानी के जिस रूप को बढ़ावा दिया, उसका मूलाधार तो हिन्दी ही था, किन्तु उसमें अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता थी और वह फारसी लिपि में लिखी जाती थी। गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी के नाम पर असल में उर्दू का ही प्रचार किया।

विलियम प्राइस–1823 ई. में हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के रूप में विलियम प्राइस की नियुक्ति हुई। उन्होंने हिन्दुस्तानी के नाम पर हिन्दी पर बल दिया। प्राइस ने गिलक्राइस्ट द्वारा जनित भाषा-सम्बन्धी भ्रांन्ति को दूर करने का प्रयास किया। लेकिन प्राइस के बाद कॉलेज की गतिविधियों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई।

अदालत सम्बन्धी विज्ञप्ति (1837 ई.)–वर्ष 1830 ई. में अंग्रेज कम्पनी के द्वारा अदालतों में फारसी के साथ-साथ देशी भाषाओं को भी स्थान दिया गया। वास्तव में, इस विज्ञप्ति का पालन 1837 ई. में ही शुरू हो सका। इसके बाद बंगाल में बांग्ला भाषा और बांग्ला लिपि प्रचलित हुई। संयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश, बिहार व मध्य प्रान्त मध्य प्रदेश में भाषा के रूप में तो हिन्दी का प्रचलन हुआ, लेकिन लिपि के मामले में नागरी लिपि के स्थान पर उर्दू लिपि का प्रचार किया जाने लगा। इसका मुख्य कारण अदालती अमलों की कृपा तो थी ही, साथ ही मुसलमानों ने भी धार्मिक आधार पर जी-जान से उर्दू का समर्थन

किया और हिन्दी को कचहरी से ही नहीं शिक्षा से भी निकाल बाहर करने का आंदोलन चालू किया।

1857 के विद्रोह के बाद हिन्दू–मुसलमानों के पारस्परिक विरोध में ही सरकार अपनी सुरक्षा समझने लगी। अत: भाषा के क्षेत्र में उनकी नीति भेदभावपूर्ण हो गई। अंग्रेज विद्वानों के दो दल हो गए। दोनों ओर से पक्ष-विपक्ष में अनेक तर्क-वितर्क प्रस्तुत किए गए। बीम्स साहब उर्दू का और ग्राउस साहब हिन्दी का समर्थन करने वालों में प्रमुख थे।

नागरी लिपि और हिन्दी तथा फारसी लिपि और उर्दू का अभिन्न सम्बन्ध हो गया। अत: दोनों के पक्ष-विपक्ष में काफी विवाद हुआ।

राजा शिव प्रसाद 'सितारे-हिन्द' का लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन (1868 ई.)–फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के लिए पहला प्रयास राजा शिवप्रसाद का 1868 ई. में उनके लिपि सम्बन्धी प्रतिवेदन 'मेमोरण्डम कोर्ट कैरेक्टर इन द अपर प्रोविन्स ऑफ इंडिया' से आरम्भ हुआ।

जॉन शोर–एक अंग्रेज अधिकारी फ्रेडरिक जॉन शोर ने फारसी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं के प्रयोग पर आपत्ति व्यक्त की थी और न्यायालय में हिन्दुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपि का समर्थन किया था।

बंगाल के गवर्नर ऐशले के आदेश (1870 ई. व 1873 ई.)–वर्ष 1870 ई. में गवर्नर ऐशले ने देवनागरी के पक्ष में एक आदेश जारी किया, जिसमें कहा गया कि फारसी-पूरित उर्दू नहीं लिखी जाए। बल्कि ऐसी भाषा लिखी जाए जो एक कुलीन हिन्दुस्तानी फारसी से पूर्णतया अनभिज्ञ रहने पर भी बोलता है। वर्ष 1873 ई. में बंगाल सरकार ने यह आदेश जारी किया कि पटना, भागलपुर तथा छोटा नागपुर डिविजनों (संभागों) के न्यायालयों व कार्यालयों में सभी विज्ञप्तियाँ तथा घोषणाएँ हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि में ही की जाएँ।

वर्ष 1881 ई. तक आते-आते उत्तर प्रदेश के पड़ोसी प्रान्तों बिहार, मध्य प्रदेश में नागरी लिपि और हिन्दी प्रयोग की सरकारी आज्ञा जारी हो गई तो उत्तर प्रदेश में नागरी आंदोलन को बड़ा नैतिक प्रोत्साहन मिला।

प्रचार की दृष्टि से वर्ष 1874 ई. में मेरठ में 'नागरी प्रकाश' पत्रिका प्रकाशित हुई। वर्ष 1881 ई. में 'देवनागरी प्रचारक' तथा 1888 ई. में 'देवनागरी गजट' पत्र प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नागरी आंदोलन को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की और वे इसके प्रतीक और नेता माने जाने लगे। उन्होंने 1882 में शिक्षा आयोग के प्रश्न-पत्र का जवाब देते हुए कहा–"सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है, जहाँ न तो अदालती भाषा शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की।"

प्रताप नारायण मिश्र–पं. प्रताप नारायण मिश्र ने हिन्दी-हिन्दू-हिन्दूस्तान का नारा लगाना शुरू कर दिया।

1893 ई. में अंग्रेज सरकार ने भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने का प्रश्न खड़ा कर दिया। इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स्थापना-1893 ई.) व मदन मोहन मालवीय–नागरी प्रचारिणी सभी की स्थापना वर्ष 1893 में नागरी प्रचार एवं हिन्दी भाषा के संवर्धन के लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना की गई। सर्वप्रथम इस सभा ने कचहरी में नागरी लिपि का प्रवेश कराना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य निश्चित किया। सभा ने 'नागरी कैरेक्टर' नामक एक पुस्तक अंग्रेजी में तैयार की, जिसमें सभी भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की अनुपयुक्तता पर प्रकाश डाला गया था।

मालवीय के नेतृत्व में 17 सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल द्वारा लेफ्टिनेंट गवर्नर एण्टोनी मैकडानल को याचिका देना (1898 ई.)–मालवीय ने एक स्वतंत्र पुस्तिका 'कोर्ट कैरेक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्टर्न प्रोविन्सेज' (1897 ई.) लिखी, जिसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। वर्ष 1898 ई. में प्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गवर्नर के काशी आने पर नागरी प्रचारिणी सभा का एक प्रभावशाली प्रतिनिधि मंडल मालवीय के नेतृत्व में उनसे मिला और हजारों हस्ताक्षरों से युक्त एक मेमोरियल उन्हें दिया। यह मालवीय जी का ही अथक प्रयास था, जिसके परिणामस्वरूप अदालतों में नागरी को प्रवेश मिल सका। इसीलिए अदालतों में नागरी के प्रवेश का श्रेय मालवीय जी को दिया जाता है।

गौरी दत्त–व्यक्तिगत रूप से मेरठ के गौरीदत्त को नागरी प्रचार के लिए की गई सेवाएँ अविस्मरणीय हैं।

इन तमाम प्रयत्नों का शुभ परिणाम यह हुआ कि 18 अप्रैल, 1900 ई. को गवर्नर साहब ने फारसी के साथ नागरी को भी अदालतों/कचहरियों में

समान अधिकार दे दिया। सरकार का यह प्रस्ताव हिन्दी के स्वाभिमान के लिए संतोषप्रद नहीं था। इससे हिन्दी को अधिकारपूर्ण सम्मान नहीं दिया गया था। बल्कि हिन्दी के प्रति दया दिखलाई गई थी। केवल हिन्दी भाषी जनता के लिए सुविधा का प्रबन्ध किया गया था। फिर भी, इसे इतना श्रेय तो है ही कि कचहरियों में स्थान दिला सका और यह मजबूत आधार प्रदान किया, जिसके बल पर वह 20वीं सदी में राष्ट्रलिपि के रूप में उभरकर सामने आ सकी।

देवनागरी अंक

देवनागरी अंक निम्न रूप में लिखे जाते हैं–

देवनागरी अंक				
0	1	2	3	4
5	6	7	8	9
हिन्दी				
शून्य	एक	दो	तीन	चार
पाँच	छह	सात	आठ	नौ
अंग्रेजी अंक				
0	1	2	3	4
5	6	7	8	9

देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता

भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत की लिपि को 'देवनागरी लिपि' कहा जाता है । इस लिपि का प्रयोग वैदिक युग के पूर्व से ही होता आ रहा है ।

मनुष्य के मुख से जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं, उनको व्यक्त और व्यवस्थित रखने तथा स्थायित्व देने के लिए ध्वनि-संकेतों के आकार के रूप में लिपि का आविष्कार हुआ और इन संकेतों की रूपरेखा ध्वनि-विशेष के उच्चारण में श्वास के अनुसार बनाई गई, जिसे 'वर्णमाला' कहते हैं ।

देवनागरी लिपि का प्रारंभिक रूप पहले सीधा-सादा था। सभ्यता के विकास के साथ इसे भी आकर्षक तथा व्यवस्थित करके वर्तमान रूप में लाया गया । 'पाणिनि' के व्याकरण-ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' के अनुसार 11 स्वर और 33 व्यंजनों का समावेश हुआ ।

व्यंजन में 25 वर्ण स्पर्श, 4 वर्ण अंत:स्थ और 4 वर्ण हैं । यह देवनागरी लिपि का परिवार है । टंकण सुविधा की दृष्टि से वर्तमान में लिपि-संकेतों में आवश्यक परिवर्तन तथा संशोधन भी किया है । व्यंजनों में स्वराभाव दिखाने के लिए हलंत लगाना पड़ता है ।

साथ ही वर्णमाला में सभी संभव ध्वनियों के लिए विशेष संकेत भी नियत किए गए हैं । देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ध्वनिपरक है और संकेत, लेखन तथा उच्चारण में कोई भेद नहीं रखती है । पाठक को अपनी तरफ से किसी ध्वन्यांश को मिलाने या छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती है ।

इसकी वर्णमाला के वर्गीकरण में व्याकरण शास्त्र ने उच्चारण-स्थान उच्चारण में श्वास-गति और जिहवा की स्थितियों का बराबर ध्यान रखा है । इतनी वैज्ञानिकता विश्व की अन्य किसी भी भाषा में अप्राप्य है । अंग्रेजी में लिपियों का उच्चारण शब्दपरक है तथा उच्चारण और लेखन में कोई व्यवस्था नहीं है ।

बी यू टी का उच्चारण 'बट' है तो पी यू टी का 'पुट' होता है । एक ही स्वर 'यू' कहीं 'यू' है, 'उ' है तो कहीं 'अ' है । अरबी लिपि में तीन स्वरों से तेरह स्वरों का काम लिया जाता है । देवनागरी लिपि के उच्चारण में परिपूर्ण निर्विलपता के कारण लिखने, पढ़ने और समझने में कठिनाई नहीं होती है ।

कई कारणों से देवनागरी वर्णमाला के व्यंजनों के वर्गीकरण में उनके उच्चारण-स्थानों का क्रमिक सामीप्य श्रद्धेय है, साथ ही स्वरों के आधार-निर्धारण में उनके उच्चारण को भी हस्व, दीर्घनुत के रूप में सम्यक् विभाजन किया । देवनागरी लिपि की शिरोरेखा का ध्यान रखने से ही 'ख' और 'रव', 'घ', और 'ध', 'म' और 'भ' और 'स' और अंश 'श' का अंतर समझा जा सकता है।

इस प्रकार देवनागरी लिपि के प्रत्येक वर्ण प्राय: निर्दोष हैं। टंकण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए देवनागरी लिपि के स्वर, व्यंजन, संयुक्त अक्षर, पूर्ण विराम आदि के लेखन में जो बदलाव लाए गए हैं, इतना तो मानना ही होगा कि उससे लिपि के आकार-गठन का सौंदर्य कम हो गया है ।

साथ ही संयुक्त अक्षरों की उच्चारण-शुद्धि में भी विकार की संभावना बढ़ गई है। अत: इस दिशा में और भी अधिक सावधानी से संशोधन की गुंजाइश है । जो भी हो, नागरी लिपि अपने वर्तमान रूप में निर्दोष है ।

देवनागरी लिपि का स्वरूप

यह लिपि बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाती है। यह न तो शुद्ध रूप से अक्षरात्मक लिपि है और न ही वर्णात्मक लिपि।

देवनागरी लिपि के गुण

देवनागरी लिपि के प्रमुख गुण निम्नवत् हैं–

1. मूक वर्ण नहीं हैं।
2. जो बोला जाता है वही लिखा जाता है।
3. वर्णमाला ध्वनि वैज्ञानिक पद्धति के बिल्कुल अनुरूप है।
4. एक वर्ण में दूसरे वर्ण का भ्रम नहीं होता है।
5. उच्चारण के सूक्ष्मतम भेद को भी प्रकट करने की क्षमता है।
6. प्रयोग बहुत व्यापक (संस्कृत, हिन्दी, मराठी, नेपाली की एकमात्र लिपि)।
7. भारत की अनेक लिपियों के निकट।
8. जो ध्वनि का नाम है वही वर्ण का नाम भी है।
9. एक ध्वनि के लिए एक ही वर्ण संकेत का प्रयोग होता है।
10. एक वर्ण संकेत से अनिवार्यतः एक ही ध्वनि व्यक्त होती है।

देवनागरी लिपि के दोष

देवनागरी लिपि के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

1. द्विरूप वर्ण (अ, ज्ञ, क्ष, त, त्र, छ, झ, रा ण, श)
2. समरूप वर्ण (ख में र व का, घ में ध का, म में भ का भ्रम होना)।
3. अनुस्वार एवं अनुनासिकता के प्रयोग में एकरूपता का अभाव।
4. त्वरापूर्ण लेखन नहीं क्योंकि लेखन में हाथ बार-बार उठाना पड़ता है।
5. इ की मात्रा ि( ) का लेखन वर्ण के पहले पर उच्चारण वर्ण के बाद।
6. वर्णों के संयुक्तीकरण में र के प्रयोग को लेकर भ्रम की स्थिति।
7. वर्णों के संयुक्त करने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं।
8. कुल मिलाकर 403 टाइप होने के कारण टंकण, मुंद्रण में कठिनाई।
9. शिरोरेखा का प्रयोग अनावश्यक अलंकरण के लिए।
10. अनावश्यक वर्ण (ऋ, घ, लृ, घ, ङ्, ष)–आज इन्हें कोई शुद्ध उच्चारण के साथ उच्चारित नहीं कर पाता।

देवनागरी लिपि में किए गए सुधार

देवनागरी लिपि में किए गए सुधार निम्नलिखित हैं–

1. बाल गंगाधर का 'तिलक फांट' (1904-26)।
2. सावरकर बंधुओं का 'अ की बारहखड़ी'।
3. श्यामसुन्दर दास का पंचमाक्षर के बदले अनुस्वार के प्रयोग का सुझाव।
4. गोरख प्रसाद का मात्राओं को व्यंजन के बाद दाहिने तरफ अलग रखने का सुझाव।
5. श्रीनिवास का महाप्राण वर्ण के लिए अल्प्रमाण के नीचे ऽ चिऋ लगाने का सुझाव।
7. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का इन्दौर अधिवेशन और काका कालेलकर के संयोजकत्व में नागरी लिपि सुधार समिति का गठन (1935) और उसकी सिफारिशें।
8. काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अ की बारहखड़ी और श्रीनिवास के सुझाव को अस्वीकार करने का निर्णय (1945)।
9. उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा गठित आचार्य नरेन्द्र देव समिति का गठन (1947) और उसकी सिफारिशें।
10. शिक्षा मंत्रालय के देवनागरी लिपि सम्बन्धी प्रकाशन–'मानक देवनागरी वर्णमाला' (1966 ई.), 'हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण' (1967 ई.), 'देवनागरी लिपि तथा हिन्दी की वर्तनी का मानकीकरण' (1983 ई.) आदि।

लिपि के कुछ प्रमुख लेख

शिवराममूर्ति के अनुसार हर्षवर्धन के समकालीन गौड़देश (पश्चिम बंगाल) के राजा शशांक के ताम्रपत्रों में पूर्वी भारत की नागरी लिपि का स्वरूप पहले-पहल देखने को मिलता है। परंतु इन ताम्रपत्रों की लिपि को हम अभी नागरी नहीं कह सकते। अधिक से अधिक इसे हम 'प्राक-नागरी' का नाम दे सकते हैं, क्योंकि इस लिपि के अक्षर न्यूनकोणीय (तिरछे) और ठोस त्रिकोणी सिरोंवाले हैं। उत्तर भारत में नागरी लिपि का प्रयोग पहले-पहल कन्नौज के प्रतिहारवंशीय राजा महेन्द्रपाल (891-907 ई.) के दानपत्रों में देखने को मिलता है। इनमें 'आ' की मात्रा पहले की तरह अक्षर की दाईं ओर आड़ी न होकर, खड़ी और पूरी लंबी हो गई है। 'क' का नीचे का मुड़ा हुआ वक्र उसके दंड के साथ

मिल जाता है। इस लिपि में अक्षरों के नीचे के सिरे सरल है और सिरों पर, पहले की तरह ठोस त्रिकोण न होकर, अब आड़ी लकीरें हैं। इसके बाद तो उत्तर भारत से नागरी लिपि के ढेरों लेख मिलते हैं। इनमें गुहिलवंशी, चाहमान (चौहान) वंशी, राष्ट्रकूट, चालुक्य, परमार, चंदेलवंशी, हैहय (कलचुरि) आदि राजाओं के नागरी लिपि में लिखे हुए दानपत्र तथा शिलालेख प्रसिद्ध हैं। दक्षिण के पल्लव शासकों ने भी अपने लेखों के लिए नागरी लिपि का प्रयोग किया था। इसी लिपि से आगे चलकर 'ग्रंथ लिपि' का विकास हुआ। तमिल लिपि की अपूर्णता के कारण उसमें संस्कृत के ग्रन्थ लिखे नहीं जा सकते थे, इसलिए संस्कृत के ग्रंथ जिस नागरी लिपि में लिखे जाने लगे, उसी का बाद में 'ग्रन्थ लिपि' नाम पड़ गया। कांचीपुरम के कैलाशनाथ मंदिर में नागरी लिपि में लिखे हुए बहुत से विवरण मिलते हैं। इनमें सरल और कलात्मक दोनों ही प्रकार की लिपियों का प्रयोग देखने को मिलता है। यह लिपि हर्षवर्धन की लिपि से काफी मिलती-जुलती दिखाई देती है।

धार नगरी के परमार शासक भोज के बेतमा ताम्रपत्र द्ध1020 ई.ऋ का एक अंश

सुदूर दक्षिण में भी पांड्य शासकों ने 8वीं शताब्दी में नागरी का प्रयोग किया था। महाबलिपुरम के अतिरणचंड़ेश्वर नामक गुफामंदिर में जो लेख मिलता है, वह भी नागरी में है। सबसे नीचे दक्षिण में नागरी का जो लेख मिलता है, वह है पांडय-राजा वरगुण (9वीं शताब्दी) का पलियम दानपत्र। इस दानपत्र की लिपि में और अतिरणचंड़ेश्वर के गुफालेख की लिपि में काफी साम्य है। दक्षिण के उत्तम, राजराज और राजेन्द्र जैसे चोल राजाओं ने अपने सिक्कों के लेखों के लिए नागरी का प्रयोग किया है। श्रीलंका के पराक्रमबाहु, विजयबाहु जैसे राजाओं के सिक्कों पर भी नागरी का उपयोग हुआ है। 13वीं शताब्दी के केरल के शासकों के सिक्कों पर 'वीरकेरलस्य' जैसे शब्द नागरी में अंकित मिलते हैं। विजयनगर शासनकाल से तो नागरी (नंदिनागरी) का बहुतायत से उपयोग देखने को मिलता है। इस काल के अधिकांश ताम्रपत्रों पर नागरी लिपि में ही लेख अंकित हैं, हस्ताक्षर ही प्रायः तेलुगु-कन्नड़ लिपि में है। सिक्कों पर भी नागरी का प्रयोग देखने को मिलता है। दक्षिणी शैली की नागरी लिपि (नंदिनागरी लिपि) का प्राचीनतम नमूना हमें राष्ट्रकूट राजा दंतिदुर्ग के दानपत्रों में, जो 754 ई. के हैं, दिखाई देता है। बाद

में बादामी के चालुक्यों के उत्तराधिकारी राष्ट्रकूट शासकों ने तो इस नागरी लिपि का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया। राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज प्रथम के नागरी लिपि में लिखे हुए तलेगांव-दानपत्र प्रसिद्ध हैं। देवगिरि के यादववंशी राजाओं ने भी नागरी लिपि का ही उपयोग किया था। धार नगरी का परमार शासक भोज अपने विद्यानुराग के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। बांसवाड़ा तथा वेतमा से प्राप्त उसके ताम्रपत्र (1020 ई.) उसकी 'कोंकणविजय' के उपलक्ष्य में जारी किए गये थे। ये आरंभिक नागरी लिपि में है।

महत्त्व

भारतीय भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं की (उर्दू और सिंधी को छोड़कर) लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से ही उद्‌भव हैं। देवनागरी, ब्राह्मी लिपि की सबसे व्यापक, विकसित और वैज्ञानिक लिपि है, जो भारतीय भाषाओं की सहोदरा लिपि होने के नाते इन सबके बीच स्वाभाविक रूप से संपर्क लिपि का कार्य कर सकती है। यदि हम इन भाषाओं के साहित्य को उनकी अपनी-अपनी लिपियों के अलावा एक समान लिपि देवनागरी लिपि में भी उपलब्ध करा दें, तो इन भाषाओं का साहित्य अन्य भाषा-भाषियों के लिए भी सुलभ हो सकेगा। नागरी लिपि इन भाषाओं के बीच सेतु का कार्य कर सकेगी।

इसीलिए आधुनिक युग के हमारे अग्रणी नेताओं, प्रबुद्ध विचारकों और मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए देवनागरी के प्रयोग पर बल दिया था। निश्चय ही ये सभी विचारक हिंदी क्षेत्रों के नहीं थे, अपितु इतर हिंदी प्रदेशों के ही थे। उनका मानना था कि भावात्मक एकता की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का होना आवश्यक है और यह लिपि केवल देवनागरी ही हो सकती हैं। श्री केशववामन पेठे, राजा राममोहन राय, शारदाचरण मित्र (1848-1916) ने नागरी लिपि के महत्त्व को समझते हुए देश भर में इसके प्रयोग को बढ़ाने की आवाज उठायी थी।

शारदाचरण मित्र ने इसे 'राष्ट्र लिपि' बताया और अगस्त 1905 में एक 'लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की। उन्होने 1907 में 'देवनागर' नाम से एक पत्रिका भी निकाली, जिसमें कन्नड़, तेलुगु, बांग्ला आदि की रचनाएं नागरी लिपि में प्रकाशित की जाती थीं। लोकमान्य तिलक और गांधीजी ने देश की एकता के लिए एक लिपि की आवश्यकता पर बल दिया। गुजरात में जन्मे महर्षि दयानंद

सरस्वती, दक्षिण के कृष्णस्वामी अय्यर तथा अनन्तशयनम् अयंगर और मुहम्मद करीम छागला ने भी नागरी लिपि के महत्त्व पर बल दिया। महात्मा गांधी चाहते थे कि भारत में भाषायी एकता के लिए एक समान लिपि की आवश्यकता है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है लिपि विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव सा हो गया है। बांग्ला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवाय बंगालियों के और कौन पढ़ेगा पर यदि वह देवनागरी में लिखी जाये, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं। आज दक्खिनी हिंदी की भी यही स्थिति है, जिसका लगभग 400 वर्षों का अपार साहित्य फारसी लिपि में होने के कारण हिंदी शोधार्थियों की दृष्टि से ओझल है। यह सत्य है कि लिपिभेद के कारण हिंदी साहित्य के इतिहास की इस कड़ी को हम अभी तक जोड़ नहीं पाये हैं।

उर्दू और हिंदी भी लिपि भेद के कारण मूलरूप से एक होते हुए भी अलग अलग भाषाएँ बनी हुई हैं। यदि उर्दू भाषा की वैकल्पिक लिपि के रूप में नागरी को अपना लें, तो उर्दू को लोकप्रिय बनाने में बड़ी सहायता मिलेगी। महाराष्ट्र के भूतपूर्व राज्यपाल स्वर्गीय श्री अलीयावर जंग ने कहा था, "मेरा मत है कि उर्दू साहित्यकार को अपनी लिपि चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन देवनागरी लिपि को देश में जोड़ लिपि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।''

आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए यहां तक कहा था 'हिंदुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी देगी।' इसलिए मैं चाहता हूँ कि सभी भाषाएं सिर्फ देवनागरी में भी लिखी जाएँ। सभी लिपियां चलें लेकिन साथ साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाये। विनोबा जी 'नागरी ही' नहीं 'नागरी भी' चाहते थे। उन्हीं की सद्प्रेरणा से 1975 में नागरी लिपि परिषद की स्थापना हुई। जो भारत की एकमात्र ऐसी संस्था है, जो नागरी लिपि के प्रचार प्रसार में लगी है। 1961 में पं जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में सम्पन्न मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भी यह सिफारश की गयी कि, भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि अपनाना वांछनीय हैं। इतना ही नहीं, यह सब भाषाओं को जोड़ने वाली एक मजबूत कड़ी का काम करेगी और देश के एकीकरण में सहायक होगी। भारत की भाषायी स्थिति में यह स्थान केवल देवनागरी ले सकती है। 16-17 जनवरी, 1960 को बंगलुरु में आयोजित 'ऑल इण्डिया देवनागरी कांग्रेस' में श्री अनंतशयनम् आयंगर ने भारतीय भाषाओं के लिए देवनागरी को अपनाएं जाने का समर्थन किया था।

नि:संदेह देवनागरी लिपि में वे गुण हैं, वह सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ सकती है। यह संसार की सबसे अधिक वैज्ञानिक और ध्वन्यात्मक लिपि जो है।

राष्ट्रलिपि

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जिस प्रकार 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की घोषणा करके राष्ट्र को स्वतंत्रता का मंत्र दिया, उसी प्रकार उन्होंने राष्ट्र लिपि के रूप में नागरी तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की घोषणा काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सन् 1905 में की थी।

तिलकजी ने यह ऐतिहासिक घोषणा भारतीय कांग्रेस के सन् 1905 के बनारस अधिवेशन के अवसर पर की थी। इस घोषणा के महत्त्व को समझकर देश के नेताओं ने संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा के स्थान पर राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्र लिपि स्वीकार किया होता तो वह आज देश की एकता और अखंडता का सक्षम माध्यम होती।

लोकमान्य तिलकजी ने प्राचीन ताम्रपत्र एवं ग्रंथों में हस्तलिखित नागरी लिपि के प्रयोग का उल्लेख करते हुए भाषा शास्त्र की दृष्टि से उसका प्रतिपादन किया था और उन्होंने कहा था कि 'भारत में मापतोल की एक ही पद्धति चलती है। उसी प्रकार हिन्दुस्तान में सर्वत्र एक ही लिपि का प्रचार होना चाहिए।'

1910 में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री वी. कृष्ण स्वामी अय्यर ने विभिन्न लिपियों के व्यवहार से बढ़ने वाली अनेकता और भारतीय भाषाओं के बीच पनपती दूरी पर चिंता व्यक्त करते हुए सहलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया। श्री रामानन्द चटर्जी ने 'चतुर्भाषी नामक पत्र निकाला जिसमें बंगला, मराठी, गुजराती और हिंदी की रचनाएँ देवनागरी लिपि में छपती थीं। राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही नहीं, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय भी देवनागरी लिपि के प्रबल समर्थक थे। विद्यासागर जी चाहते थे कि भारतीय भाषाओं के लिए नागरी लिपि का व्यवहार अतिरिक्त लिपि के रूप में किया जाए, जबकि बंकिम बाबू का मत था कि भारत में केवल देवनागरी लिपि का व्यवहार किया जाना चाहिए।

बहादुरशाह जफर के भतीजे वेदार बख्त ने 'पयाम-ए-आजादी' पत्र को देवनागरी और फारसी दोनों लिपि में प्रकाशित किया। महर्षि दयानंद ने अपना सारा वांगमय देवनागरी में लिखा। उनके प्रभाव से देवनागरी का व्यापक प्रचार हुआ।

मेरठ में गौरीदत्त शर्मा ने 1870 के लगभग 'नागरीसभा' का गठन किया और स्वामीजी की प्रेरणा से अनेक लोग नागरी के प्रसार में जी-जान से जुट गये। आज मेरठ में देवनागरी कालेज उन्हीं की कृपा से सुफल है। श्री भूदेव मुखोपाध्याय ने बिहार की अदालतों में देवनागरी का प्रयोग आरंभ कराया जिसकी प्रशंसा संस्कृत के उपन्यासकार अंबिकादत्त व्यास ने अपने गीतों में की है। भारतेंदु हरिशचन्द्र, कालाकांकर नरेश, राजा रामपाल सिंह, अलीगढ़ के बाबू तोता राम, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास और पं. मदनमोहन मालवीय के सद्प्रयत्न रंग लाये और उत्तर प्रदेश के न्यायालयों में देवनागरी के वैकल्पिक प्रयोग का मार्ग खुला।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी अपनाने के कट्टर हिमायती थे। पं. जवाहर लाल नेहरू सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली मजबूत कड़ी के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने के समर्थक थे। डॉ. राजेंद्र प्रसाद चाहते थे कि भारत की प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य देवनागरी के माध्यम से हर भारतीय को आस्वादन के लिए उपलब्ध होना चाहिए। स्वतंत्रवीर सावरकर नागरी को 'राष्ट्रलिपि' के रूप में मान्यता देने के पक्ष में थे। लाला लाजपतराय राष्ट्रव्यापी मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे भारत में देवनागरी का प्रचार आवश्यकता मानते थे। 1924 में **शहीद भगत सिंह** ने लिखा था–"हमारे सामने इस समय मुख्य प्रश्न भारत का एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम नहीं हो सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम सभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम से कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए।, **रेवरेण्ड जॉन डिनी** लिखते हैं–"चूंकि लाखों भाषा-भाषी पहले से ही नागरी लिपि जानते हैं, इसलिए मैं महसूस करता हूँ कि बिल्कुल नहीं लिपि के प्रचलन की अपेक्षा किंचित संवर्धित नागरी लिपि को ही अपनाना अधिक वास्तविक होगा।ह

17 मार्च, 1967 को सेठ गोविंददास जी ने एक बहुत बड़े समुदाय के सामने प्रस्ताव रखा कि सारी प्रादेशिक भाषाएँ देवनागरी लिपि में ही लिखी जाए। इस देश की एकता को बनाए रखने के लिए और एक-दूसरे के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए और इस देश की हर भाषा के साहित्य को समझना है तो हमें एक लिपि की आवश्यकता है। वह लिपि देवनागरी लिपि ही हो सकती है।

सहलिपि के रूप में देवनागरी राष्ट्रलिपि का रूप ग्रहण कर सकती है। इससे श्रम, समय और धन की बचत तो होगी ही साथ ही राष्ट्रीय भावना और

पारस्परिक आत्मीयता की अभिवृद्धि भी होगी। इससे पृथक्तावाद के विषाणुओं का विनाश होगा और अखण्डता की भावना सबल होगी। भारतीय साहित्य के वास्तविक स्वरूप पर परिचय मिलेगा तथा सारी भाषाएं एक-दूसरे के निकट आकर स्नेह-सूत्र में गुम्फित हो जाएंगी। उनके बीच की विभेद की दीवार ढह जाएगी और आसेतु हिमालय सामाजिक समरता परिपुष्ट होगी। यही नहीं, सारी भारतीय भाषाओं को अखिल भारतीय बाजार मिलेगा, उनकी खपत बढ़ेगी और शोध को अखिल भारतीय स्तर प्राप्त होगा। न केवल शब्द-भंडार का साम्य, बल्कि भाव और प्रवृत्तियों का साम्य भी परिलक्षित होगा और एक भाषा बोलने वाला दूसरी भाषा और इसके साहित्य के सौष्ठव तथा वैशिष्ट्य का भरपूर आस्वादन कर सकेगा। इसीलिए खुशवंत सिंह ने उर्दू साहित्य को देवनागरी में लिखने का समर्थन किया है। देवनागरी में गालिब, मीर, नजीर आदि की पुस्तकें लगभग 1 करोड़ रुपये की बिक चुकी हैं।

आज जनजातियों की बेहद उपेक्षा हुई। उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग कर विदेशी मिशनरियों के भरोसे छोड़ दिया गया। उन्हें भारतीय होने का गौरव मध्य क्षेत्र में संथाल, मुण्डा, चकमा आदि तथा दक्षिण क्षेत्र में मिला। जहां चेंचू, कांटा, कुरुम्ब जनजातियाँ रहती हैं। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में ओगो, शोम्पेन आदि जनजातियां पाई जाती हैं। लिपि विहीन जनजातीय बोलियों के लिए देवनागरी सबसे उपयुक्त है। बोडो और जेभी भाषा के लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है। अरुणाचल में भी देवनागरी का व्यवहार जनजातीय बोलियों के लिए किया जा रहा है। जहां पर भी संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश का अनुशीलन होता रहा है, वहां देवनागरी लिपि सुपरिचित है। मराठी, नेपाली के बोलने वाले इस लिपि का पहले से ही व्यवहार करते हैं। दक्षिण भारत हो या भारत का कोई भी हिंदीतर क्षेत्र-देववाणी के कारण नागरी अक्षर सर्वत्र प्रचलित है।

भूमिका

देवनागरी लिपि का विकास प्राचीन लिपि ब्राह्मी से हुआ। ब्राह्मी लिपि के अभिलेख ईसा पूर्व चतुर्थ शती तक के मिलते हैं। इसके समकालीन एक और लिपि थी जिसको खरोष्ठी कहते हैं। खरोष्ठी दाहिनी ओर से बायीं ओर चलती है जबकि ब्राह्मी बायीं ओर से दायीं ओर। ये दोनों लिपियाँ भारत की अपनी लिपियां थीं और इनका विकास और उद्‌गम शुद्ध भारतीय था। कुछ यूरोपीय

विद्वानों का मत था कि इनका उद्‌गम अभारतीय प्रभाव पर आधारित है, किंतु इसका प्रतिवाद पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने कर दिया था और उनकी उक्ति का खंडन नहीं हो सका। अरबी उर्दू लिपि भी दाहिनी ओर से बायीं ओर चलती है, किंतु खरोष्ठी लिपि से इसका कोई संबंध नहीं था। ब्राह्मी और खरोष्ठी के अतिरिक्त सिंधु घाटी में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाए गये अभिलेख प्रायः ईसा पूर्व 2700 वर्ष पुराने हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अंकन पर्वतों की गुफाओं में पाए गए भारतीय आदिवासिओ के रचित चित्रों में भी मिलता है। ये चित्र 25000 वर्ष पुराने समझे जाते हैं। इस अंकन का भी कोई संबध उल्लिखित ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों से नहीं है।

ब्राह्मी के दो रूप उत्तरी और दक्खिनी विकसित हो गए थे। उत्तरी रूप में दूसरों के अतिरिक्त देवनागरी और कुटिल लिपि भी विकसित हुई। आज देवनागरी लिपि संस्कृत, हिन्दी, नेपाली, मराठी लिखने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसमें स्वर और व्यंजन स्पष्ट रूप से अंकित होते हैं। स्वरों का एक संक्षिप्त रूप भी होता है जिसको भाषा कहते हैं जब स्वर किसी व्यंजन के उपरांत आता है तो इसे मात्र रूप में अंकित करते हैं। उदाहणार्थ - हम लिखते हैं 'ऐसा' और 'कैसा' प्रथम शब्द में 'ऐ' स्वर अपने मूल रूप में है दूसरे में अपने मात्र रूप में। ये मात्रएं व्यंजन से पहले, बाद को, नीचे और ऊपर लिखी जाती हैं- उकार, ऊकार, ऋकार व्यंजन के नीचे और एकार, ऐकार, ओकार और औकार व्यंजन के ऊपर लगते हैं। आकार की मात्र व्यंजन के बाद रखी जाती है। अकार की मात्र व्यंजन के रूप में ही शामिल होती है और इसका प्रयोग अन्य स्वररहित व्यंजन रूप में सन्निहित रहता है: जैसे- कथा, रस आदि शब्दो में। वर्तमान देवनागरी लिपि में अंकित वर्णों में कुछ व्यंजन संयोग भी सिखाए जाते हैं और ये हैं क्ष (कृ. ष), त्र (त्. र), झ (ज. त्र), इसके अतिरिक्त र के कई रूप हैं, जो आज भी प्रचलित देवनागरी लिपि में मिलते हैं। ब्राह्मी में दो व्यंजनो के संयोग में प्रथम व्यंजन ऊपर तथा दूसरा उसके नीचे लिखा जाता था। यह प्रथा देवनागरी में भी पाई जाती है विशेषकर र के साथ किसी व्यंजन के संयोग में उदाहरणार्थ धर्म, गर्हा, में रेफ म और ह के ऊपर लिखा जाता है। र का प्राचीन रूप् था जो हमें प्रेम आदि में अंकित मिलता है। ट वर्ग व्यंजनों तथा हकार के रके साथ संयोग में र का प्रचलित रूप 'यह है और ट्र वर्ग और हकर अपने पूरे रूप में अंकित किए जाते हैं जिससे भ्रम होता है रकार स्वररहित रूप में अंकित है।

लिपि सुधार की आवश्यकता को देखकर कई समितियों ने समय समय पर विचार किया था। महात्मा गांधी के निर्देशन पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 1935 में अपने वार्षिक अधिवेशन में लिपि सुधर समिति नियुक्त की थी। फिर 1948 में आचार्य नरेंद्र देव समिति बनी। 1953 में डॉ. संपूर्णानन्द के निर्देश पर विद्वानों की एक समिति ने सुझाए गए सुधारों के प्रस्तावों पर विचार विमर्श किया था। इसके पूर्व 1948 में भारत सरकार ने हिन्दी आशुलिपि (शार्ट हैंड) और टंकण (टाइप) पर विचार विमर्श के लिए काका कालेलकर जी की अध्यक्षता में एक समिति बनाई थी। देवनागरी लिपि में प्रचलित लेखन प्रणाली इन सब समितियों के आधार पर विकसित हुई है। सिद्धांत यह है- लिपि में एक ध्वनि को अंकित करने के लिए एक ही वर्ण होना चाहिए। इस सिद्धांत पर देवनागरी लिपि ही भारतीय भाषाओं को अंकित करने में सवर्था समर्थ है और विभ्रम की कोई गुंजाइश प्रायः नहीं ही है। इसके विपरी रोमन में भी तथा अरबी (उर्दू) में यह योग्यता नहीं है।

उदाहरणार्थ रोमन लिपि का कभी ऐ ध्वनि का (कैन) और कभी अ (फादर) को व्यक्त करता है। न वर्ण कभी अ (बट) और कभी उ (पुट) का उच्चारण देन है। इसी प्रकार उर्दू के ते और तोय 'त' ध्वनि का द्योतन करते हैं, से, सीन और स्वाद 'स' ध्वनि का तथा जाल, जे और जोय 'ज' ध्वनि को जतलाते हैं। अरबी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू में स्वरों के अंकन का यथेष्ट और असंदिग्ध प्रबंध नहीं है। हमारी देवनागरी लिपि में ये कोई दोष नहीं है। इसमें जो लिखा जाता है वहीं पढ़ा जाता है। इसी दृष्टि से भारतीय भाषाओं को अंकित करने के लिए देवनागरी लिपि सर्वश्रेष्ठ सर्वथा योग्य है। कोई 15 वर्ष पूर्व भारत सरकार के शिक्षा विभाग ने सभी राज्य सरकारों को सिफारिश भेजी थी कि देवनागरी लिपि को सभी राज्य अपनी-अपनी प्रादेशिक लिपि के अतिरिक्त स्वीकार करें किंतु खेद है यह सिफारिश नहीं मानी गई। भाषाओं की विभिन्नता, लिपि भेद से अधिक उपस्थित होती है और लिपि की एकरूपता से भाषाओं की रूप विभिन्नता कम हो जाती है। बंगला गुजराती आदि संस्कृत से विकसित हुई हैं, हिन्दी मराठी ओर पंजाबी की तरह संस्कृत के बहुत से शब्द तत्सम तथा तत्सम रूप में इन सभी भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। यदि लिपि एक ही तो यह शब्द समानता इन सभी भाषाओं को समझने में सुविधा प्रदान करें। यूरोप की अंग्रेजी, फ्रेंच, पुर्तगाली आदि भाषाएँ एक ही रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। इसी कारण इन भाषाओं को बोलने वाले लोग इन सभी को आसानी से पढ़ ओर सीख लेते हैं।

प्रो. सुनीतिकुमार चटर्जी ने रोमन लिपि की इस प्रयोग की सुविधा को समझकर प्रस्ताव किया था कि एक इंडोरोमन लिपि हिन्दी के लिए स्वीकार की जाए और हिन्दी के वर्णों के लिए 26 वर्णों की रोमन लिपि को विशेष चिन्ह लगाकर उपस्थित किया जाए। उनका यह प्रस्ताव पुस्तक में ही रह गया और किसी ने इसे नहीं माना। लिपि के संबंध में एक मोह-सा जनता को होता है और उसके ऊपर उठना संभव नहीं होता। यदि देवनागरी लिपि जो उद्‌गम और विकास में सर्वथा भारतीय है और अन्य भारतीय लिपियों से अधिकतर मिलती जुलतीं हैं, भारतीय भाषाओं की लिपि स्वीकार कर ली जाए तो भारतीय जनता का बड़ा उपकार होगा। तभी देवनागरी लिपि वास्तविक राष्ट्रलिपि होगी।

नन्दिनागरी लिपि

यह लिपि है, जो नागरी लिपि और ब्राह्मी से व्युत्पन्न है। नन्दिनागरी, नागरी लिपि की पश्चिमी शैली है। नन्दिनागरी में लिखित शिलालेख और पाण्डुलिपियाँ दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों के पश्चिमी भागों में भी प्राप्त हुए हैं। (महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश आदि)। इस कारण नन्दिनागरी को नागरी की दक्षिणी शैली भी कहते हैं। मध्वाचार्य की कुछ पाण्डुलिपियाँ नन्दिनागरी में हैं।

नागरी लिपि एवं फारसी लिपि में पारस्परिक संबंध

दुनिया आपसी रिश्तों में बंधी हुई है। ये रिश्ते-नाते, घर-परिवार, खानदान इस समाज का एक हिस्सा हैं। गाँव, शहर, देश-विदेश में आपसी संबंध होते हैं। संसार में एक देश का दूसरे देश के साथ मिलना मिलाना रहा है, विज्ञान की प्रगति के बाद तो संसार वास्तव में बहुत ही निकट आ गया है। एक देश के साहित्य और भाषा का सम्बन्ध भी दूसरे देश के साहित्य और भाषा से रहा। भाषा को पढ़ने और लिखने के लिए अक्षरों का प्रयोग होता है। बोलने और सुनने के लिए ध्वनियों का। ध्वनियाँ सीखने के बाद ही अक्षर सीखे जाते हैं। इस तरह भाषा सीखना आसान हो जाता है।

भाषा को पढ़ने और लिखने के लिए लिपि की आवश्यकता पड़ी। संसार में अनेक भाषाएँ हैं और उन्हें विविध लिपियों में लिखा जाता है। कौन-सी लिपि अच्छी है, आसान है अपनानी चाहिए यह एक अलग बहस का मुद्दा है। मैं इस संबंध में बात न करके फारसी और देवनागरी लिपि के आपसी रिश्तों, संबंधों और परस्पर आदान-प्रदान की बात करूँगी।

हमारे देश की संपन्नता हमेशा से ही आकर्षण का केन्द्र रही। विदेशों से लोग यहाँ आते रहे और जाते रहे। कुछ लोगों को यह देश इतना अच्छा लगा कि उन्होंने यहाँ रहना शुरू कर दिया उनमें मुसलमान विशेष उल्लेखनीय हैं। मुसलमानों के साथ-साथ अरबी-फारसी भाषाएँ भी यहाँ आयी। अरबी, फारसी, खड़ी बोली और दूसरी बोलियों के मेल से भारत में एक नई भाषा बनी जो उर्दू कहलायी। यहाँ कई भाषाओं ने अरबी-फारसी लिपि को अपनाया। अक्षरों के हिसाब से अरबी फारसी में विशेष अंतर नहीं है। फारसी भाषा में तीन-चार अक्षर ज्यादा हैं यह अरबी भाषा में नहीं है। ये चे, जे, गाफ, जे अरबी लिपि में अट्ठाइस अक्षर हैं फारसी में बत्तीस अक्षर। दोनों भाषाएँ दायीं ओर से बायीं ओर लिखी जाती हैं। फारसी वर्णमाला की ध्वनियाँ अक्षरों में इस प्रकार हैं -

अलिफ बे, पे, ते, से, जीम चे हे खे। दाल जाल र जे। जे सीन शीन स्वाद जुवाद तोए जोए, ऐन गैन फे काफ गाफ लाम मीम नून वाव हमजा हे ये यी।

ये फारसी लिपि की मूल ध्वनियाँ हैं। जब उर्दू भाषा ने जन्म लिया तो हिन्दुस्तानी होने की वजह से उसका काम फारसी की इन 32 मूल ध्वनियों से नहीं चला। वहाँ फारसी लिपि में नागरी लिपि से बहुत सी ध्वनियाँ अपना ली गयी। यह अक्षर हैं - ख घ छ ड ड़ ट ढ ढ़ थ फ भ। इस तरह उर्दू भाषा में अपनायी गयी फारसी लिपि में यह चौदह ध्वनियाँ अक्षर और बढ़ गये हैं वहाँ यह ध्वनियाँ अब 46 हो जाती है। नागरी लिपि से कुछ अक्षर फारसी लिपि में जुड़े और फारसी लिपि के साथ नागरी लिपि का एक रिश्ता बना।

एक बात और ध्यान देने की है। ऊपर फारसी के जिन अक्षरों की चर्चा की गयी है उनकी आवाज भी नागरी लिपि को ध्वनियों से मिलती है। फारसी लिपि की प्रत्येक ध्वनि की पहली आवाज नागरी लिपि से मिलती है। अलिफ अ, बे ब, पे प, ते त, टे ट, से स, जीम ज, चे च, हे ह, दाल द, डाल ड, रे र, ढे ढ, सीन स, शीन श, स्वाद स, तोय त, ऐन ऐ, काफ क, गाफ ग, मीम म, नोन न, वाव व, हे ह, ये य आदि वर्ण लगभग समान ध्वनि के पर्याय हैं।

जिस तरह फारसी ने हिन्दी या नागरी लिपि से कुछ ध्वनियों और अक्षरों को अपनी वर्णमाला में ले लिया उसी तरह हिन्दी ने भी कुछ ध्वनियों और अक्षरों को अपनी वर्णमाला में अपनाया। नागरी लिपि के कुछ अक्षरों पर बिंदी लगाकर फारसी की यह ध्वनियाँ हिन्दी में अपना ली गयी - क ख ग ज फ।

नागरी लिपि में बारह स्वर हैं। फारसी लिपि में भी स्वर का प्रयोग होता है। नागरी लिपि में जो मात्रएँ कहलाती है बे फारसी में आराब। बारह स्वरों की

अभिव्यक्ति फारसी लिपि अलिफ, वाव ये के साथ जबर जेर पेश रूपी मात्रओं को लगाकर कर देती है। जैसे नागरी लिपि में ईख ई और ख को मिलाकर लिखा जाएगा तो फारसी लिपि में अलिफ ये और ख को मिला कर। उर्दू भाषा में जब फारसी लिपि का प्रयोग होता है तो बहुत सारी चीज ध्वनि अक्षर आदि समान होते हैं केवल लिपि का अंतर होता है। दोनों लिपियाँ जानने वाला ध्वनियों की इन समानताओं का आसानी से पहचान लेता है।

दोनों लिपियों का सबसे बड़ा रिश्ता यह है कि दोनों लिपियों में यह क्षमता है कि एक दूसरे की भाषाओं को अपनी-अपनी लिपि में लिख पढ़ सकती हैं। बोलते समय तो कोई अंतर रहता ही नहीं। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में लिखने वालों को फारसी लिपि के अक्षरों का ज्ञान था। तुलसीदास ने अपनी सतसई। चतुर्थ सर्ग के दोहा 71-72, पृ0 135 पर फारसी लिपि के एन गैन अक्षरों का प्रयोग करते हुए कहा है - नाम जगत सम जानु जग, वस्तुन करि चित बैन।धबिन्दु गये जिमि गैन ते रहत ऐन को ऐन/आपो 'ऐ' विचार विधि सिद्ध विमल मति मान।ध्आन बासना बिंदु सम, तुलसी परम प्रमान।

तुलसीदास को इस बात का भी ज्ञान था कि गैन पर नुक्ता (बिंदी) लगता है। उस बिंदी को हटाने से यह बिंदी रहित होने से वह अक्षर 'ऐन' रह जाता है। तुलसीदास ने फारसी लिपि में प्रयुक्त अरबी भाषा के अनेक शब्दों का प्रयोग किया और राम को गरीबनवाज कहा और स्वयं को गुलाम।

रीतिकालीन हिंदी कवियों की जानकारी भी फारसी अक्षरों से थी। आलम कवि कहते हैं - अलक मुबारक तिय बदन लहकि परि यों साफ।ध्खुसनसीब मुनसी मदन लिखयों कांच पर काफ।

'काफ' अक्षर का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि यह कवि फारसी लिपि में प्रयुक्त वर्णमाला से परिचित थे। मैं शब्दों की बात नहीं करूँगी। वह एक अलग लेख का विषय हो जाएगा। फारसी लिपि में लिखे गये असंख्य शब्दों का प्रयोग नागरी लिपि में हुआ है। संतों ने अपने काव्य में नागरी लिपि में कुर्आन शरीफ की आयतों को लिपिबद्ध किया है। फारसी लिपि में लिखी गयी उर्दू भाषा का आधार नागरी है। अमीर खुसरो के जमाने से यह प्रयोग मिलता है स्वयं अमीर खुसरो ने अनेक नागरी लिपि के अक्षरों एवं शब्दों का प्रयोग किया है।

बहुत सूक्ष्मता और उदारता से देखा जाये तो पता चलेगा कि दोनों भाषाओं की दोनों लिपियों में कुछ अक्षर एक दूसरे से मिलते हैं फारसी लिपि के द और

र को पलट दिया जाये तो वह नागरी लिपि के द और र बन जाते हैं। य की शिरोरेखा को तनिक परिवर्तन से हटा दें तो फारसी और हिंदी की य ध्वनि समान हो जाती है।

प्राचीन हिंदी कवियों की अधिकांश पाण्डुलिपियाँ फारसी लिपि में मिलती हैं। मध्यकाल में टोडरमल ने फारसी भाषा और लिपि को राजकाज के साथ जोड़ दिया था। उससे पहले भी फारसी लिपि का प्रयोग होने लगा था। पटना संग्रहालय के पूर्व अध्यक्ष डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त का मत है – अभी पचास वर्ष पूर्व तक अधिकांश कायस्थ परिवारों का नागरी लिपि के साथ नाम का भी संबंध न था। उनके घरों में रामायण ही नहीं, दुर्गापाठ और भगवद्गीता का भी पाठ उर्दू फारसी में लिखी कापियों से होता था और वे शुद्ध उच्चारण के साथ उनका पाठ किया करते थे। इंग्लैंड और फ्रांस के पुस्तकालयों में न केवल सूरसागर आदि धार्मिक ग्रंथों का ही वरन् हिंदू कवियों द्वारा रचित अनेक श्रृंगार काव्यों यथा केशवदास की रसिक प्रिया, बिहारी सतसई आदि भी फारसी लिपि में लिखी काफी प्राचीन प्रतियाँ सुरक्षित हैं। उन्हें देखते हुए यह कल्पना करना कि प्रेमाख्यान काव्यों के रचयिता मुसलमानों ने अपने काव्य को आदि प्रति नागरी अक्षरों में लिखी हो हास्यास्पद है। ये कवि न केवल स्वयं मुसलमान थे वरन् उनके गुरू भी मुसलमान थे और उनके शिष्य भी मुसलमान ही थे। एक भी ऐसी नागरी प्रति उपलब्ध नहीं है, जो सतरहवीं शताब्दी के पूर्व की हो 'भक्तिकाल और मुस्लिम संस्कृति, पृ0 194' लेखक असद अली द्वारा चंदायन पृ0 27-28 से उद्धृत, संपादक परमेश्वरी लाल गुप्त।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी में मैंने स्वयं फारसी लिपि में हिंदी के हस्तलेख देखे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय पुस्तकालय, हरदयाल पब्लिक लाइब्रेरी, दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी की विभिन्न शाखाओं में फारसी लिपि में प्रकाशित धार्मिक पुस्तकें बड़ी संख्या में हैं। यह रचनाएँ नागरी लिपि में भी हैं। इसी तरह फारसी लिपि में प्रकाशित मुसलमानों का धार्मिक साहित्य नागरी लिपि में भी मिलता है। कुर्आन शरीफ की अनेक प्रतियाँ नागरी लिपि में मिल जाती हैं।

यह फारसी लिपि और नागरी लिपि की बड़ी विशेषता है कि कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जिनका साहित्य दोनों लिपियों में मिलता है। दोनों लिपियों को उन पर गर्व है। इनमें सबसे पहला नाम अमीर खुसरो का है। उनकी हिंदी शायरी, फारसी शायरी के साथ-साथ मिलती है। एजाज खुसरवी में उनकी पहेलियाँ, कह मुकरियाँ अनमिल ढकोसले, गीत दो सुखने, कव्वाली आदि फारसी लिपि में

मिलते हैं। अमीर खुसरो की हिंदी कविता पुस्तक में उनकी हिंदी कविता नागरी लिपि में मिलती है। उन्होंने दोनों लिपियों के अक्षरों को मिलाकर गजल भी लिखी - जहाले मिस्कीं शकुन तगाकुल दुराय नैना बनाए बातयाँध्सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।

नजीर अकबराबादी भी ऐसा ही नाम है जिनकी कविता हमें दोनों लिपियों में मिलती हैं। दकिनी शायरी में भी दोनों लिपियों को अपनाया गया। नागरी लिपि में यह कविता दक्षिणी हिंदी काव्यधारा शीर्षक के अंतर्गत लिखी गयी। फारसी लिपि में दकिनी शायरी के नाम से प्रकाशित हुई। रानी केतकी की कहानी इंशाअल्ला खां ने लिखा है फारसी और नागरी दोनों लिपियों में मिलती हैं। आधुनिक काल में भी प्रेमचंद ने दोनों लिपियों को अपनाया। उपेन्द्रनाथ अश्क, देवेन्द्र सत्यार्थी और ऐसे अनेक नाम सामने आते हैं, जिनका दोनों लिपियों पर समान अधिकार है। दोनों लिपियाँ उनके लेखन पर गर्व करती हैं। अली सरदार जाफरी प्रगतिशील लेखक ने बहुत से कवियों को एक ही पुस्तक में जेसे एक पृष्ठ नागरी और एक फारसी लिपि में लिखकर प्रकाशित किया है।

भारतीय देवी-देवताओं की कहानियाँ महाभारत, रामायण, भगवतगीता, सावित्री सत्यवान की कथा, दुष्यन्त और शकुंतला की कहानी, मेघदूत माधव अनल कामकंदला, चंदायन, पद्मावत, मधुमालती आदि की कहानियाँ, बारहमासा आदि दोनों लिपियों का विषय बनीं। हिंदी लिपि से बहुत सी चीजें या कथाएँ खलीफाओं विशेष रूप से हारून रशीद और मामून रशीद के जमाने से फारसी में अनुदित होने लगी। फारसी लिपि में आयीं। इसी तरह फारसी लिपि से बहुत सी रचनाएँ हिंदी लिपि में ली गयी। हम्द मंकबत नात, अल्लाह की प्रशंसा नात में मुहम्मद साहब की तारीफ मुंकबत में चारों खलीफाओं के प्रति श्रद्धा और सूफी औलिया की गुणगान किया जाता है। यह फारसी लिपि से हिंदी लिपि में आया। इसी तरह अपने देश के तीज त्यौहार, मेले ठेले, ईद, बकराईद, होली, दिवाली, बसंत आदि फारसी लिपि में भी मनाया गया।

दोनों लिपियों में प्रयुक्त होने वाले काव्य रूप भी एक दूसरे से प्रभावित हुए। मसनवियाँ फारसी और हिंदी दोनों लिपियों में लिखी हुई मिलती हैं। मैं उनके विस्तार में नहीं जाऊँगी। गज़ल फारसी और नागरी लिपि की प्रिय विधा रही है। भारतेन्दु रसा नाम से गजलें लिखते थे। उनकी गजल का मतला है - उसको शहंशाही हर बार मुबारक होवे। 'कसरे-हिंद का दरबार मुबारक होवे।

दोनों लिपियों में समान छंद और बहरें प्रयोग की गयी है। कसीदा भी उर्दू-हिंदी अर्थात् फारसी और नागरी लिपि में लिखा गया। केशव दास और अकबरी दरबार के हिंदी कवियों के लिखे कसीदे नागरी लिपि में तो सौदा और जौक के लिखे कसीदे फारसी लिपि में मिलते हैं। अलिफनामा और ककहरा भी दोनों लिपियों में समान रूप से लिखा गया। दूसरी तरह गीत और दोहे भी दोनों लिपियों की शान बने। पाकिस्तान के प्रसिद्ध कवि जमीलउद्दीन आली कहते हैं- फारसी लिपि में सूर कबीर बिहारी रहीमन तुलसीदास/सबकी सेवा की पर आली गई न मन की प्यास।

मरसिया या शोक गीत भी दोनों लिपियों की संपत्ति है।

दोनों लिपियों में समान अलंकारों का प्रयोग भी मिलता है। उपमा, रूपक, श्लेष, यमक का प्रयोग किया गया। कहीं-कहीं समान उपमान भी मिलते हैं। दोनों लिपियों में आँखों की उपमा खंजन पक्षी से दी गयी है फारसी लिपि में इसका उदाहरण पेश है। फायाज़ कहते हैं - दो नैन थे उसके चंचल ज्यों खंजन। जिनके देखे मृग पकड़े जोग बन। नाक उसकी थी कली सूं खूबतर। साफ दरपन सूँ था वह मुख बेशतरध्नागिनी सी था लटाँ दो उसके सर।ध्होश उन देखे से जाता था बिसर। दिलफरेबी की अदा उसकी अनूप।ध्रूप में थी राधिका सूँ भी सरूप।

यहाँ प्रयुक्त सारे उपमान नागरी लिपि में प्रयुक्त उपमान हैं, जो फारसी लिपि में अपनाये गये हैं।

हमारे देश में दोनों लिपियाँ बहुत प्रचलित रही हैं। उनमें प्रचुर साहित्य लिखा गया है। अनेक भाषाओं को इन्होंने गले लगाया है। आज जरूरत इस बात की है लोग अधिक से अधिक लिपियों का ज्ञान प्राप्त करें ताकि एक भाषा की सामग्री से दूसरी भाषा के जानने वालों को परिचित करा सकें। यह काम हो भी रहा है। नागरी लिपि में प्रकाशित सामग्री विदेशों में दूसरी लिपियों में छप रही हैं। यहाँ की कहानियाँ, उपन्यास, कविता, लेख आदि पाकिस्तान में फारसी लिपि में छपते हैं वहाँ के लेखक यहाँ नागरी लिपि में।

नागरी लिपि यदि कुछ नए ध्वनि चिहन जिन्हें लखनऊ के नंदकुमार अवस्थी ने कुर्आन शरीफ को हिंदी लिपियांतरित करते समय अपने छापेखाने में ढाला था, का प्रयोग करे उन बहुत-सी ध्वनियों या अक्षरों को जो नागरी लिपि में नहीं है अपनी संपत्ति बना लेगी। उसके द्वारा सही उच्चारण और अर्थ के साथ लिख सकेगी।

फारसी लिपि और नागरी लिपि दोनों का संबंध सदियों पुराना है। जरूरत है इस रिश्ते को मजबूत करने की। दोनों लिपियों ने मिलकर राष्ट्रीय चेतना को जगाया है। आजादी की लड़ाई लड़ी है। इनको धर्म संप्रदाय की शृंखलाओं ने बांध कर स्वतंत्र रूप से फलने फूलने का, आगे बढ़ने का अवसर दिया जाये। दोनों लिपियों में प्रकाशित साहित्य अधिक अच्छे ढंग से छप कर सामने आये। अधिक से अधिक लोग उससे लाभान्वित हों।

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में देवनागरी लिपि

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर उसे अपने नित्य के कार्य करने पड़ते हैं और उनके लिए उसे अन्य व्यक्तियों के साथ विचार विनमय करना होता है। विचार विनमय के माध्यम अनेक हैं, जिनमें भाषा सबसे प्रमुख और सबसे सरल माध्यम है। विभिन्न संकेतों द्वारा भी भाव प्रकट किए जाते हैं। सिर को आगे हिलाना स्वीकृति का सूचक है, दाएं-बाएं हिलाना इनकार का द्योतक है। आंखे तरेर कर देखना अथवा मुट्ठी बांध कर तानना क्रोध का सूचक है। इन विभिन्न संकेतों से भाव प्रकट किए जाते हैं और दूसरे लोग उन्हें समझ भी लेते हैं।

प्रतीकों द्वारा भी संदेश भेजने की प्रथा तो अति प्राचीन काल से विभिन्न देशों में प्रचलित है। संकेतों द्वारा अथवा प्रतीकों द्वारा भाव या विचार प्रकट किए जाते हैं, फिर भी यह कहना ही होगा कि भाव और विचार प्रकट करने का सबसे सरल साधन भाषा है।

भाषा का जन्म कैसे हुआ, कब हुआ, कैसे भाषा विकसित हुई इस सबकी कहानी कम रोचक नहीं है, किंतु यहां उसकी चर्चा करना विषयांतर हो जाएगा। निश्चित प्रयत्नों के फलस्वरूप मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि समष्टि भाषा से बहुत दिनों तक काम चलता रहा होगा। लिपि का जन्म भाषा के जन्म के बहुत समय बाद हुआ होगा। आज भी ऐसे अनेक जन समाज हैं, जिनके पास उनकी अपनी भाषाएँ हैं, किंतु लिपि नहीं है।

भाषा से अपना काम चलाते रहने के बाद आगे चलकर ऐसी आवश्यकता अनुभव हुई होगी कि कोई ऐसा माध्यम मिले, जिसके द्वारा मनुष्य मुख से निकली वाणी, स्थान और कालगत दूरी को पार कर सके।

मनुष्य की वाणी एक निश्चित दूरी तक ही सुनी जा सकती है। आधुनिक युग में और वह भी अभी अभी वैज्ञानिक अन्वेषकों ने लाउडस्पीकर का आविष्कार कर ध्वनि को कुछ अधिक दूर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। ईथर

की लहरों का सहारा लेकर रेडियो काफी दूर की ध्वनियों को खींच लाता है। इस तरह ध्वनि के लिए स्थानगत दूरी सिमट रही है। कालगत दूरी की समस्या अब भी बनी हुई।

प्राचीन काल में इस स्थानगत और कालगत दूरी को समाप्त करने के लिए, दूरस्थ व्यक्ति तक अपनी बात पहुंचाने के लिए तथा अपनी अगली पीढ़ियों के लिए अपने अनुभव, अपनी मान राशि स्थिर करने के लिए एक माध्यम की खोज शुरू हुई होगी। इस दिशा में जो प्रयत्न हुए, जो सफलता मिली उसी से लिपि के जन्म और उसके विकास की कहानी शुरू होती है। आज हम बाल्मीकि के कथन को पढ़ सकते है, तुलसी की रामकथा का रसास्वाद ले सकते हैं, शेक्सपियर के नाटकों से परिचित हो सकते हैं। यह सब लिपि का ही प्रसाद है।

लिपि की उत्पत्ति के विषय में सबका मत एक सा नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि लिपि भी भगवान की ही कृति है। यह मान्यता केवल भारत में ही नहीं, वरन विदेशों में भी पाई जाती है, किंतु मानना होगा कि इस मत में सार नहीं है। तथ्य यह है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए लिपि को जन्म दिया है।

लिपि के जन्म की खोज करते करते हम वहां पहुंचते हैं, जहाँ मनुष्य जादू टोने के लिए अथवा किसी देवता का प्रतीक बनाने के लिए, अथवा स्मरण रखने के लिए कुछ चिन्हों का प्रयोग किया करता था। आज भी अनपढ़ धोबी भिन्न भिन्न घरों के कपड़ों पर भिन्न प्रकार के चिन्ह बना देते हैं, ताकि उन्हें आसानी से खोजा जा सके।

लिपि का आदि रूप चिन्ह या चित्रलिपि ही है। चित्रलिपि में किसी वस्तु का बोध कराने के लिए उसका चित्र बनाया जाता है। चित्रलिपि का अपना महत्व है। उसके द्वारा ध्वनि बोध भले न हो, अर्थ बोध हो जाता है। किसी भी देश के समाचार पत्र में छपे कार्टून चित्र के अर्थ को उस देश की भाषा न जानने पर भी सहज ही समझा जा सकता है। इस अर्थ में लिपि को 'अंतर्राष्ट्रीय लिपि' कह सकते हैं। चित्रलिपि का प्रयोग प्रायः प्रत्येक देश में पाया जाता हैं।

चित्रलिपि अपने में सरल लिपि नहीं है। भावों और विचारों को प्रकट करने के लिए सरल माध्यम की खोज होती रही। फलस्वरूप ध्वन्यात्मक लिपि सामने आई। इस लिपि में चिन्ह का संबंध ध्वनि से जुड़ा रहता हैं ध्वन्यात्मक लिपि में चिन्ह कोई चित्र नहीं बनाते, वे मात्र ध्वनियों को प्रकट करते हैं। परिणाम यह होता है कि एक व्यक्ति जिन शब्दों को कहना चाहता है, उन्हें वह उस लिपि

में लिख देता है, इसलिए पढ़ने वाला पढ़ते समय उन्हीं ध्वनियों को करता है। 'राम' लिखा जाता है, 'राम' ही पढ़ा जाता है। ध्वन्यात्मक लिपि में अक्षरों का संबंध ध्वनि से होता है, इसलिए किसी भी भाषा को उसमें लिखा जा सकता है।

भारतीय लिपियों का इतिहास काफी पुराना है। ऐसा माना जाता है कि भारत में लेखन पद्धति का प्रचार चौथी शताब्दी के पहले भी मौजूद था। प्राचीन काल में भारतवासी अपने विचारों को किसी न किसी लिपि में शिलाओं पर, धातुपत्रों पर, ताड़पत्रों पर, भोजपत्रों पर प्रकट किया करते थे। प्राचीन सूत्रग्रंथों में लेखन कला का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी और सिंधु घाटी की लिपियां प्रचलित थी। पहली दो लिपियों की जानकारी तो विद्वानों को पहले से ही थी, किंतु मोहन जोदड़ो की खुदाई में प्राप्त मुद्राओं से तीसरी लिपि का भी पता चला है।

ब्राह्मी ओर खरोष्ठी लिपियों की जन्म भूमि भारत ही है अथवा कोई अन्य देश, इस संबंध में विद्वान एक मत नहीं हैं। भारत के प्रसिद्ध विद्धान श्री गौरीशंकर हीरानंद ओझा का स्पष्ट कथन है कि 'ब्राह्मी लिपि आर्यों की अपनी खोज से उत्पन्न किया हुआ मौलिक आविष्कार है। इसकी प्राचीनता और सर्वांग सुंदरता से इसका कर्ता ब्रह्मा देवता मानकर इसका नाम ब्राह्मी पड़ा। चाहे साक्षर ब्राह्मणों की लिपि होने से यह ब्राह्मी कहलाई हो, पर इसमें संदेह नहीं है कि इसका जन्म भारत में ही हुआ था' सर्वश्र टामस, डासन और कनिंघम आदि विद्वान श्री ओझा जी के विचारों से सहमत हैं।

खरोष्ठी लिपि के जो प्राचीनतम लेख मिले हैं, उनसे पता चलता है कि इसका प्रयोग भारत के कुछ हिस्सों में चौथी सदी (ई. पू.) से लेकर होता रहा है। खरोष्ठी लिपि निर्दोष नहीं है इसमें स्वरों की अव्यवस्था है और दीर्घ स्वरों का अभाव है। सदोष होने के कारण खरोष्ठी लिपि भारत में व्यापक न बन सकी और न स्थायी बन सकी। उसका शीघ्र लोप हो गया खरोष्ठी की अपेक्षा ब्राह्मी अधिक व्यापक हुई और विकास करती हुई आगे बढ़ी। खरोष्ठी की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि अधिक सुंदर और अधिक गठी हुई थी इसलिए वह लोकप्रिय होती गई। ब्राह्मी में गोलाई का और छोटी लकीरों का प्रयोग होता है जिससे यह लिपि सुंदर लगती है।

ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम नमूने 5वीं सदी (ई. पू.) के मिले हैं। यह लिपि अपने गुणों के कारण फैलती हुई विकसित होती गई और लोकप्रिय होती गई। उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक इस लिपि का प्रयोग होता था। आगे चलकर उत्तर भारत और दक्षिण भारत की ब्राह्मी में भिन्नता आ गई और यह भिन्नता इतनी बड़ी हो गई कि दोनों की समानता में भी संदेह होने लगा। ब्राह्मी लिपि प्रदेशों में पहुंचकर कुछ कुछ भिन्न रूप धारण करने लगी और भिन्न नामों से जानी जाने लगी।

उत्तर भारतीय ब्राह्मी लिपि का विकास होता गया। गुप्तलिपि, कुटिल लिपि का रूप धारण कर अंत में वह नागरी लिपि कहलाई। संपूर्ण उत्तर भारत में इसका प्रचार था, महाराष्ट्र में भी इसी का व्यवहार होता था। इतने बड़े भू-भाग की लिपि होने के कारण भारत की लिपियों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसमें लिखित जो प्राचीनतम लेख प्राप्त हुआ है, वह सातवीं सदी का है।

भारत के पूर्वांचल में चलने वाली लिपियां बंगला, असमिया, मणिपुरी, उड़िया देवनागरी से बहुत ही अधिक मिलती है। उड़िया लिपि के अनेक अक्षर तो देवनागरी लिपि जैसे ही हैं। भेद केवल शिरोरेखा का है। जब कागज उपलब्ध नहीं होता था, तब उत्कल प्रदेश में ताड़पत्रों का उपयोग किया जाता था। ताड़पत्र पर लिखते समय यदि शिरोरेखा सीधी खींची जाए तो ताड़पत्र फटने का डर रहता है इसीलिए वहां शिरोरेखा गोलाकार लगाई गई।

दो तीन अक्षरों को छोड़कर गुजराती की संपूर्ण लिपि शिरोरेखा विहीन देवनागरी ही है। सिंधी भाषा की लिपि पहले देवनागरी ही थी। मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण उसने सुधरी हुई फारसी लिपि अपना ली थी। देश विभाजन के पश्चात उसने फिर देवनागरी को अपना लिया है। लगभग 500 सिंधी के साहित्यिक ग्रंथ देवनागरी लिपि में लाए जा चुके है। अजमेर की सिंधी देवनागरी प्रचारिणी सभा तथा बंबई की एक सिंधी संस्था ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। पाठ्य पुस्तकें देवनागरी में छापी गई है, कई पत्र देवनागरी लिपि में निकल रहे है।

इतिहास बताता है कि गुप्त साम्राज्य बंगाल से लेकर दक्षिण तक फैला था, अतः गुप्त लिपि, जो कि ब्राह्मी लिपि का ही विकसित रूप था, दक्षिण में भी व्यवहार में आती थी। दक्षिण में पल्लव राजाओं के शिलालेखों में ग्रंथ लिपि और तमिल लिपियों के अतिरिक्त नागरी लिपि का भी प्रयोग होता था। पल्लवों के परवर्ती चोल राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर नागरी लिपि का प्रयोग किया था।

दक्षिण में इस लिपि का इतना प्रभाव था कि चोल राज्य से आगे उन द्वीपों में भी यह लिपि चलाई गई, जिन्हें चोल राजाओं ने जीता था।

पश्चिमी चालुओं ने भी अपने शिलालेखों में कन्नड़ लिपि के साथ-साथ देवनागरी लिपि का प्रयोग किया था। दक्षिण के राष्ट्रकूट के अधिकांश शिलालेख नागरी में ही मिलते हैं।

दक्षिण के विजयनगर राज्य में भी देवनागरी का प्रयोग होता था। 15वीं शताब्दी के बाद तो उस प्रदेश की प्रधान लिपि देवनागरी ही थी। 18वीं सदी में तंजाउकर के पहले राजा शिवजी के सौतेले भाई व्यंकोजी ने प्रजा के साथ समरस होने के लिए अपनी मातृभाषा मराठी के साथ स्थानीय भाषाओं को सीखा था और अपनी मातृभाषा मराठी के साथ स्थानीय भाषाओं को सीखा था और उनमें साहित्य की रचना की थी। ये संपूर्ण ग्रंथ देवनागरी में प्रकाशित किए गए। जो तंजाउर के सरस्वती महल ग्रंथ संग्रहालय में देखे जा सकते हैं। 'पंचभाषा विलास' नामक नाटक में तो तेलुगु, तमिल, मराठी, हिन्दी तथा संस्कृत, पाँच भाषाओं का प्रयोग किया गया है। सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के दक्षिण प्रदेशों में भी देवनागरी लिपि का प्रचलन था और वहां की प्रबुद्ध जनता देवनागरी से परिचित थी। दक्षिण की पढ़ी लिखी जनता एक दूसरे माध्यम से भी देवनागरी लिपि से परिचित है। संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी है। दक्षिण में देवनागरी जानने वाले और उसके विद्वानों की संख्या उत्तर भारत की अपेक्षा कहीं अधिक है। दक्षिण में संस्कृत का इतना प्रचार है कि वहां 'सुधर्मा' नाम की एक दैनिक पत्रिका तक निकलती है। अत: दक्षिण में देवनागरी लिपि जानने वालों की संख्या कम नहीं है।

भारतीय भाषाओं के लिए जब एक लिपि का समर्थन किया जाता है तब उसमें एक और बात पूर्ण रूप से सहायक होने वाली है। भारत में भाषाओं की लिपि भिन्नता होने पर भी सर्वत्र वर्णमाला की एकता विद्यमान है। भारतीय वर्णमाला के सभी स्वर और व्यंजन बड़े वैज्ञानिक ढंग से उच्चारण स्थान के अनुसार रखे गए हैं। भारतीय वर्णमाला को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। भारत की सभी भाषाओं की वर्णमाला में ध्वनियों को व्यक्त करने वाले स्वरों और व्यंजनों की संख्या और उसका क्रम भी एक सा ही है, अत: यह साम्य देवनागरी लिपि के सीखने में सहायक होता है।

भारतीय वर्णमाला तो देश के बाहर भी कहीं कहीं पर कुछ अंश में प्रचलित है। 'आकार' से लेकर 'हकार' तक चलने वाली भारतीय वर्णमाला नेपाल, भूटान, तिब्बत, बर्मा, श्याम, लंका आदि देशों में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। मध्य एशिया, कोचीन, मलाया,, यवद्वीप, बलद्वीप, सुमात्र, फिलीपीन्स, महाचीन आदि देशों में भारतीय वर्णमाला का आंशिक रूप में प्रचार है। अत: यह वर्णमाला विदेशों में भी देवनागरी के प्रचार में सहायक हो सकती है।

आज भारत राष्ट्र का सबसे बड़ी आवश्यकता यदि किसी वस्तु की है, तो यह वह है राष्ट्रीय एकता की। विकास की सभी सीढ़ियों का आधार राष्ट्रीय एकता है। अत: प्रत्येक देशभक्त का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उन सभी मार्गों का अवलंबन करे, जो एकता की स्थापना में सहायक सिद्ध होते हों।

राष्ट्रपिता गांधी जी इतने दूरदर्शी थेा कि उन्होंने उन सभी समस्यायों पर बहुत पहले विचार किया था, जो आज हमारा ध्यान आकर्षित कर रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार का बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है। किंतु इसी के साथ उन्होंने एक दूसरे विषय की ओर भी संकेत किया था, जो कम महत्त्व का नहीं है। वह था देवनागरी लिपि का प्रचार।

गांधी जी चाहते थे कि भारत की सभी प्रांतीय भाषाओं की एक ही लिपि हो जाए। गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा था–

'लिपि–विभिन्नता के कारण प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान आज असंभव–सा हो गया है। बंगला लिपि में लिखी हुई गुरुदेव की गीतांजलि को सिवा बंगालियों के और कौन पढ़ेगा ? पर यदि यह देवनागरी में लिखी जाए, तो उसे सभी लोग पढ़ सकते हैं।

'हमें अपने बालकों को विभिन्न प्रांतीय लिपियां सीखने का कष्ट नहीं देना चाहिए। यह निर्दयता नहीं तो और क्या है कि देवनागरी के अतिरिक्त तमिल, तेलुगु , मलयालम, कन्नड़, उड़िया और बंगला इन छ: लिपियो को सीखने में दिमाग खपाने को कहा जाए। आज कोई प्रांतीय भाषा सीखना चाहे तो लिपियों का यह अमेद प्रतिबंध ही उनके मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है।

स्पष्ट है कि गांधी जी देवनागरी लिपि के पक्के हिमायती थे और भारत की राष्ट्रलिपि के स्थान पर उसे बैठाना चाहते थे। इतना ही क्यों प्रांतीय भाषा के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग की दिशा में कुछ कार्य भी किया था। उनकी ही प्रेरण से 'नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद' ने उनकी आत्मकथा 'सम्यनो प्रयोग' को गुजराती भाषा और देवनारी लिपि में प्रकाशित किया था।

गांधी के पहले भी स्वामी दयानंद सरस्वती, बंकिम चंद्र चटर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, रवींद्रनाथ ठाकुर, जस्टिस शारदाचरण मित्र, लोकमान्य तिलक आदि सुधी पुरुषों ने देश के लिए एक सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी की स्वीकार किया था

स्वामी दयानंद की मातृभाषा गुजराती थी, फिर भी उन्होनें अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' की किरणें हिन्दी और देवनागरी के द्वारा बिखेरी थीं। देवनागरी लिपि के समर्थकों में महत्त्वपूर्ण नाम है जस्टिस श्री शारदा चरण मित्र का और उसके जनक थे श्री शारदाचरण जी। उन्होंनें एक लिपि विस्तार परिषद की स्थापना की और 'देवनागर' नाम की एक पत्रिका निकाली। श्री शारदा चरण मित्र ने इसमें लिखा था।

जगत विख्यात भारतवर्ष ऐसे महादेश में, जहां जाति-पांति, रीति-नीति, मत आदि के अनेक भेद दृष्टिगोचर हो रहे है, भाव की एकता रहते हुए भी भिन्न भिन्न भाषाओं के कारण एक प्रांतवासियों के विचारों से दूसरे प्रांतवालों का उपकार नहीं होता। इसलिए एक ऐसा वृक्ष रोपना चाहिए, जिसमें सर्वप्रिय फल लगे भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों की भिन्न-भिन्न बोलियों को एक लिपि में लिखना ही उस आशानुरूप फल को देने वाला प्रधान अंकुर है।

एक बंगाल क्या, सभी प्रांतों के विद्वानों ने भारत की सभी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि का समर्थन किया था। दक्षिण के श्री कृष्णास्वामी अय्यर ने एक बार कहा था कि विभिन्न लिपियों का व्हवहार करने से हम कितनी बड़ी हानि उठा रहे हैं, क्योंकि वे जनता के एक भाग को दूसरे भाग से पृथक करती है। भाषा अलग-अलग हो भी, किंतु यदि उनकी लिपि एक ही हो, तो लोगों को शब्दों वाक्यों की अभिव्यक्ति के ढंग की समानता के कारण अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओ का समझना भी सरल होगा।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, लोकमान्य तिलक, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य विनोवा भावे आदि सभी ने राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने एक स्थान पर लिखा है 'वर्तमान युग में भारतीय संस्कृति के समन्वय के प्रश्न के अतिरिक्त यह बात भी विचारणीय है कि भारत की प्रत्येक प्रादेशिक भाषा की सुंदर आनंदप्रद कृतियों के स्वाद को भारत के अन्य प्रदेशों के लोगों को कैसे चखाया जाए ? इस बारे में यह उचित ही होगा कि प्रत्येक भाषा की साहित्यिक संस्थाएं उस भाषा की कृतियों को संघ लिपि अर्थात् देवनागरी में भी छपवाने का आयोजन करें।

एक लिपि के हो जाने पर किसी देश या किन्हीं देशों को कितना लाभ प्राप्त होता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण चीन, यूरोप के देश हैं। चीन एक विशाल देश है। इसकी आबादी सवा सौ करोड़ से भी ज्यादा है। जगह-जगह के उच्चारण के कारण भाषा भेद पैदा हो जाता है। चीन में भाषाएँ तो अनेक हैं, किंतु सारे चीन में एक ही लिपि (चित्रलिपि) प्रचलित है। इसलिए इस लिपि को पढ़कर प्रत्येक चीनी अपनी भाषा में उसे समझ लेता है।

यूरोप में बहुत छोटे-छोटे अनेक राष्ट्र हैं और प्रत्येक राष्ट्र की अपनी पृथक भाषा है, किंतु सम्पूर्ण यूरोप में एक ही लिपि 'रोमन' का प्रयोग होता है। इस सुविधा का सबसे अधिक लाभ स्कूल के बच्चे उठाते हैं। स्कूल में पढ़ते समय ही बच्चे चार पाँच भाषाएँ आसानी से सीख लेते हैं, क्योंकि दूसरी भाषाओ को सीखते समय उनकी भिन्न-भिन्न लिपियों के सीखने का कष्ट उन्हें उठाना नहीं पड़ता।

आचार्य विनोबा भावे ने नागरी लिपि के प्रचार प्रसार पर बहुत जोर दिया है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है।

'सारे भारत को एक रखने के लिए उसे जितने स्नेह बंधनों से बांध सकते हैं, उतने स्नेह बंधनों की आज जरूरत है। जैसे हिन्दी एक स्नेह तंतु है, उतने ही महत्व का स्नेह तंतु देवनागरी लिपि है। आज लोग अपनी भिन्न-भिन्न भाषाएं भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखते हैं। साथ साथ नागरी में भी लिखते तो कितना लाभ होता। उनकी लिपि अच्छी है सुंदर है। हम उसका विरोध नहीं करते, परंतु उसके साथ साथ ऐच्छिक तौर पर नागरी में भी वह भाषा लिखना शुरू करते हैं, तो सारे भारत की भिन्न-भिन्न भाषाएँ एक दूसरे को सीखना सुलभ होगा।

देवनागरी का समर्थन करते हुए आचार्य विनोवा ने दूसरे स्थान पर कहा है-'हिन्दुस्तान की एकता के लिए हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे अधिक काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान की समस्त भाषाएं देवनागरी में लिखी जाएं। सब लिपियाँ चलें, साथ साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाए।

देवनागरी के प्रचार प्रसार को विनोबा जी एक आंदोलन का रूप देना चाहते थे। इस दिशा में वे अनेक वर्षों से प्रभावशील थे और उनकी प्रेरणा से उनका लोकप्रिय ग्रंथ 'गीता प्रवचन' तेरह चौदह भाषाओं में प्रकाशित हो चुका है। इन सबकी लिपि देवनागरी ही है। उनकी प्रेरणा से अनेक भाषाओ मे, किंतु देवनागरी लिपि में प्रकाशित होने लगे हैं।

भारत में दो वर्णमालाएं हैं, जिनकी दो भिन्न लिपियाँ हैं। ये हैं– फारसी (उर्दू) लिपि और रोमन लिपि। इन दोनों को कुछ विशेष कारणों से थोड़ा महत्व मिल गया है। ये दोनों लिपियाँ विदेशी हैं। भारत में रोमन लिपि का तो राष्ट्रीय दृष्टि से कोई स्थान नहीं है। अंग्रेजी के साथ वह बनीं रह सकती है, किंतु उसे अपनाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सरल हिन्दी और सरल उर्दू एक ही भाषा है। हाँ लिपियों की भिन्नता उन्हें अलग कर देती है। अगर उर्दू के समर्थक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उर्दू के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार कर लें, तो न जाने देश की कितनी समस्याएं अपने आप सुलझ जाएँ। पिछले दिनों में उर्दू का बहुत कुछ साहित्य देवनागरी लिपि में आ चुका है। कितना अच्छा हो यदि उर्दू के लेखक अपनी कृतियों को देवनागरी में प्रकाशित कराया करें। देखा गया है कि उर्दू लेखकों की जिन जिन कृतियों को देवनागरी में प्रकाशित किया गया है, उनका प्रचार विशेष हुआ है, क्योंकि हिन्दी का क्षेत्र उर्दू की अपेक्षा बहुत बड़ा है।

गांधी जी ने मुसलमान भाइयों से भी यह अपेक्षा रखी थी कि वे देवनागरी लिपि को भी सीख लें। हिन्दीतर प्रदेशों के मुसलमान अपने अपने प्रदेश की लिपियों से परिचित हैं। ये लिपियाँ देवनागरी से मिलती जुलती हैं। लिपि, भाषा का परिधान मात्र है। इसलिए लिपि के साथ धार्मिक अथवा भावनापरक संबंध जोड़ना उचित नहीं है। ऐसा करने से लिपि प्रचार और उसके परिष्कर करने के मार्ग में बाधाएं उपस्थित हो जाती हैं।

उर्दू के अनेक विद्वानों और राष्ट्रीय मुसलमानों ने खुले दिल से देवनागरी लिपि का समर्थन किया है। हजरत ताराशाह चिश्ती समिति आगरा के अध्यक्ष श्री मौलाना हाफिज रमजान अली कादरी ने एक पत्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'हम व हमारे मुरीदों व शिष्यों की निगाह में देवनागरी प्रचार का एक सच्चा आंदोलन है। इसमें कोई शक-शुबह नहीं है कि देवनागरी ही एक ऐसी लिपि है, जो एशिया को और कम से कम हिन्दुस्तान को एक धागे में बाँधने की ताकत रखती है। इस आंदोलन को सफल बनाने में हमारी खिदमत में आपके साथ हैं।'

महाराष्ट्र राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल श्री अली यावर जंग ने अपना विचार इन शब्दों में प्रकट किया है-'मेरा मत यह है कि उर्दू सहित प्रत्येक भाषा को अपनी लिपि में स्वतंत्रता होनी चाहिए, लेकिन देवनागरी लिपि को देश में जोड़ लिपि के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए।

केंद्रीय सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्रीयुत नुरूल हमन ने नागरी लिपि परिषद को जो संदेश भेजा था, उससे देवनागरी के संबंध में भारत की केंद्रीय सरकार का रुख स्पष्ट होता है। उन्होंने लिखा था – 'हमारे देश की विभिन्न भाषाओ का साहित्य विशाल और समृद्ध है, लेकिन अभी यह साहित्य सिर्फ इन भाषाओं की परंपरागत लिपियों में ही है। इन परंपरागत लिपियों की रक्षा और उन्नयन तो करना ही है, लेकिन उसके साथ-साथ विभिन्न भाषाओं के साहित्य का कुछ अंश यदि एक संपर्क लिपि में भी उपलब्ध हो सके, तो विभिन्न प्रदेशों के लोग दूसरे प्रदेशों के विकसित साहित्य को आसानी से पढ़ सकेंगे और इस प्रकार राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण से यह एक स्पष्ट लाभ होगा। यह संपर्क केवल देवनागरी में ही हो सकता है।

इस संदर्भ में भारत सरकार एक जोड़ लिपि की आवश्यकता के प्रति सदैव सजग रही है। इसी आवश्यकता को 1961 में मुख्य मंत्रियों के सम्मेलन में भी औपचारिक रूप से स्वीकार किया गया था। अत: केंद्रीय सरकार द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं के कुछ संकेत चिन्ह जोड़े गए हैं। इस प्रकार से विकसित लिपि अब 'परिवर्तित देवनागरी कहलाती है।

अभी तो सुझाव इतना ही है कि प्रादेशिक भाषाएँ अपनी लिपि के साथ साथ देवनागरी लिपि का भी प्रयोग करें। दूर भविष्य में यह सुझाव भी आ सकता है कि भारत में एक लिपि देवनागरी रहे। ऐसा सुझाव आने पर कुछ मौलिक प्रश्न उठ खड़े होते हैं।

पहला प्रश्न यह उठता है कि यदि देवनागरी को स्वीकार कर लिया जाए तो, क्या वर्तमान लिपियो को लुप्त होन दिया जाएगा ?

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि प्रांतीय लिपियों में जो असीम सुंदर साहित्य पड़ा है, लिपि के लुप्त होते ही उसका क्या होगा ?

तीसरा प्रश्न यह कि वर्तमान समय में भाषा को लेकर इतनी ताना तानी है, तब क्या यह उचित होगा कि एक नये लिपि आन्दोलन को अंकुरित किया जाए ?

तीनों ही प्रश्न गंभीर हैं और उन पर विचार करना हागा।

यह तो स्वीकार करना ही होगा कि भारत राष्ट्र में आवश्यकता से अधिक लिपियां हैं, जो प्रांत के बीच थोड़ा व्यवधान उपस्थित करती हैं। लिपि परिवर्तन का काम जल्दी नहीं हो सकता। प्रत्येक सुधार और प्रत्येक परिवर्तन का सही रूप

होना चाहिए यदि इस दिशा में धीरे धीरे बढ़ा जाए, तो यह परिवर्तन भी सहनीय हो जाएगा।

साहित्य के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। उचित होगा कि प्रांतीय साहित्य को धीरे धीरे देवनागरी लिपि में भी हम प्रकाशित करते चलें। देवनागरी में प्रकाशित प्रांतीय साहित्य का क्षेत्र संभवत: व्यापक होगा। अत: आर्थिक दृष्टि से यह लाभप्रद ही होगा। जहां तक प्राचीन साहित्य का प्रश्न है, उसका जितना अंश सुंदर है, शक्तिशानी है, समृद्ध है, देवनागरी में अपने आप स्थान बना लेगा। रविबाबू, शरत, प्रेमचंद, प्रसाद, मेधाणी, बल्लतोल, तमिल कवि भारती जैसे साहित्यकारों की रचनाँ भाषा और लिपि की सीमाएँ पार कर देश में और विदेशों में पहुंच ही रही हैं। सुंदर समृद्ध साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। उसमें अमर रहने की अर्वणनीय शक्ति रहती है।

तीसरे प्रश्न का उत्तर और भी सरल है। ज्यों ज्यों हममें राष्ट्रीय भावना का उदय होगा, उसका विकास होगा, त्यो त्यों हम अपनी क्षुद्र सीमाओं से ऊपर उठेंगे। ज्यों ज्यों राष्ट्रीय गौरव का भार होगा, विभेदी विचार स्वयं ही नष्ट हो जाएंगे।

देवनागरी लिपि के प्रचार प्रसार का काम शुरू हो चुका है और इस दिशा में काफी काम हो चुका है, हो रहा है। लखनऊ निवासी भुवन वाणी ट्रस्ट के संचालक श्री नंदकुमार अवस्थी द्वारा प्रादेशिक भाषाओं का विपुल प्राचीन साहित्य हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी लिपि में प्रकाशित हो चुका है। दिल्ली विश्वविद्यालय और केंद्रीय साहित्य अकादमी ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। बर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने 'कविश्रीमाला' नाम से प्रादेशिक साहित्य के 25 ग्रंथ देवनागरी में प्रस्तुत किए हैं।

भारत के पूर्वांचल में रहने वाली पहाड़ी जातियों की भाषाओं की कोई लिपि नहीं थी। मिशनरी पादरियों ने उनकी भाषाओं को रोमन लिपि दी है। इन भाषाओं को देवनागरी लिपि देने का प्रयत्न किया जा रहा है। जिन पहाड़ी और आदिवासियों की भाषाओं की कोई लिपि ही नहीं थी, उन्हें देवनागरी लिपि दी जा रही है। अरुणाचल की विभिन्न भाषाओं की पुस्तकें देवनागरी में छानी गई हैं। पुणे की 'ज्ञान प्रयोधिनी' संस्था ने तो अंग्रेजी भाषा की रीडरें देवनागरी लिपि में प्रकाशित की हैं।

देवनागरी प्रचार के इसी प्रकार के काम विभिन्न स्थानों पर विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा हो रहे हैं, जो लिपि अभी संपूर्ण भारत के लिए जोड़ लिपि भी न बन सकी हो, उसे पूर्वी एशिया की लिपि, या 'विश्वलिपि' बनाने

की बात एक स्वप्न ही समझी जाएगी, परंतु यह मनुष्य का ही सौभाग्य है कि मनुष्य पहले स्वप्न देखता है, फिर अपने पुरुषार्थ के बल पर उसे सत्य में रूपांतरित करता है। लेकिन यह मात्र कल्पना की ही बात नहीं है। अंतराष्ट्रीय संदर्भ में भी देवनागरी लिपि का महत्त्व है ही।

पहले ही लिखा जा चुका है कि पूर्व एशिया के देशों और द्वीपों में दक्षिण के आर्यों के द्वारा जो सांस्कृतिक अभियान हुए उनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग, जिनमें व्यापारी भी थे, उन देशों और द्वीपों में पहुंच और बस गये। वे अपने साथ अपनी भाषा और लिपि जो ब्राह्मी से उद्‌भूत थी, लेते गये इन देशों में भारतीय संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव वहां देखा जा सकता है। इसलिये बर्मा, थाइलैंड, स्याम आदि देशों में देवनागरी का प्रचार आसानी से हो सकता है।

श्रीलंका में बौद्ध धर्म भारत से ही गया था। संस्कृत और पालि के जो ग्रंथ वहां पहुंचे, देवनागरी में थे। इसलिए श्रीलंका निवासी देवनागरी से अपरिचित नहीं हैं। डॉ. शेर सिंह ने अपने एक लेख में लिखा है कि ब्राह्मी लिपि ने इस देश के बाहर भी प्रचार प्रसार पाया था। भारत से लेकर मध्य एशिया और चीन जापान तक धार्मिक ग्रंथों के लिए देवनागरी का प्रयोग होता था। सातवीं शताब्दी के मध्य में तिब्बत के राजा सुमितन्न गप्पा ने अपने अनेक विद्यार्थियो को नालंदा भोजकर तिब्बत में इस लिपि का आयात किया था।

चीन में जो चित्रलिपि प्रचलित है वह अपनी दुरूहता के कारण प्रिय नहीं हो रही है। वहां के विद्वान अपनी चीनी भाषाओं के लिए एक लिपि की तलाश में है। आचार्य विनोबा का मानना है कि अगर सही ढंग से सेवा भावना से नागरी लिपि को चीन के विद्वानों के सामने पेश किया जाए, तो चीनी भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि को अपनाया जा सकता है।

यह देखकर आश्चर्य और प्रसन्नता होती है कि जापानी भाषा और हिन्दी भाषा का वाक्य विन्यास लगभग एक-सा ही होता है। हिन्दी में जैसे पहले कर्ता, फिर कर्म, फिर क्रिया होती है। (जैसे राम ने आम को खाया) जापानी भाषा में भी ठीक यही क्रम होता है। बौद्ध धर्म के अनुयायी होने के कारण, धार्मिक ग्रंथों के कारण जापानी लोग देवनागरी से परिचित ही हैं। यदि जापानी भाषा देवनागरी को अपना ले, तो जापानी और हिन्दी एक दूसरे के निकट आ जाएंगी।

संसार के कई ऐसे देश औरर द्वीप हैं, जहां भिन्न-भिन्न कारणों से लाखों भारतीय विशेषत: हिन्दी भाषी लोग पहुंचे हैं और वहीं बस गए हैं। उनके साथ उनकी भाषाएं गई, देवनागरी लिपि गई। ऐसे देशों में सूरीनाम, मॉरिशस, गयाना,

ट्रिनिडाड, फीजी आदि का नाम आसानी से लिया जा सकता है, इन देशों में हिन्दी भाषा और देवनागरी का खूब प्रचार है। कहीं-कहीं राजभाषा हिन्दी है, राजलिपि देवनागरी है।

स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् विश्व में हिन्दी भाषा का मान बढ़ा है। संसार के 74 विश्वविद्यालयों में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन विधिवत होता है। हिन्दी के साथ देवनागरी वहां पहुंची। देवनागरी लिपि अपने सहज स्वाभाविक गुणों के कारण सभी जगह लोकप्रिय हो रही है। उसकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को समझा जा रहा है, इसलिए आश्चर्य नहीं होगा, यदि कभी भविष्य में देवनागरी लिपि अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर चमक उठे।

भाषा एवं लिपि का संबन्ध

भाषा और लिपि का परस्पर अविनाभाव संबन्ध है। इनके उद्भव और विकास का इतिहास आज भी गवेषकों के लिए शोध का विषय बना हुआ है। मानव जब जंगलों एवं गुफाओं में रहता था तब वह अपनी गुफा में जादू-टोने के लिए विविध प्रकार की रेखाओं के माध्यम से कुछ आकृतियाँ बनाया करता था। अपने घोडों तथा अन्य पालतु जानवरों की पहचान के लिए उनके शरीर पर विविध कोटि के चिह्न बनाया करता था।

किसी बात को स्मरण रखने के लिए बेलों तथा रस्सियों में गाँठ बांधकर रखता था। इस प्रकार प्राचीनकालीन मानव विविध साधनों के माध्यम से दीर्घकाल पर्यन्त अपने भावों को प्रकट करता रहा। इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर समयानुसार विविध लिपियों का विकास होता चला गया। लिपि–विज्ञानियों ने चित्रों एवं लकीरों कसे विकसित कर वर्णाकार प्रदान किया और आकृतियों को लिपि नाम दिया गया। धीरे–धीरे विविध भाषाओं की अपनी-अपनी लिपियाँ बनने लगी।

कुछ भाषाओं के उच्चारण–वैविध्य के कारण उनकी अपनी लिपियाँ विकसित हुई। जैसे गुजराती, बंगला, मैथिल, उडिया, तामिल, तेलगु, मलयालम आदि। ये लपियाँ भी हैं और भाषा भी हैं। जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी आदि सिर्फ भाषा हैं, लिपि नहीं। अक्सर हम देखते हैं कि आज भी कई लोग हिंदी या संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाबद्ध ग्रंथ जो नागरी लिपि में लिखे हुए होते हैं, को भी हिंदी लिपि में लिखा

हुआ कहते हैं, जबकि हिंदी नाम की कोई लिपि नहीं है। सही में वह लिपि तो देवनागरी अथवा नागरी लिपि है।

मनुष्य के विचारों को व्यक्त करने का माध्यम वाणी है। यह वाणी विभिन्न भाषाओं के माध्यम से संसार में प्रकट होती है। इन भाषाओं को लंबे समय तक स्थाई रूप से सुरक्षित रखने व एक स्थान तक ले जाने का काम लिपि करती है।

अत: भाषा के दो प्रमुख आधार माने गये हैं- (1) ध्वनि या नाद और (2) दृश्य। किसी भाषा का पहले ध्वनि रूप प्रकट होता है। बाद में वह दृश्य स्वरूप के रूप में अपने विकास का मार्ग प्रशस्त कर लेती है। अत: हम कह सकते हैं कि भाव तथा विचारों के प्रकाशन का ध्वनि-स्वरूप भाषा है और उसका दृश्य-स्वरूप लिपि। अर्थात् भाषा को दृष्टिगोचर करने के लिए जिन प्रतीक-चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें लिपि कहते हैं।

भाषा और लिपि का संबन्ध सिक्के के दो पहलुओं के समान है। भाषा के बिना किसी लिपि की संभावना हो ही नहीं सकती। हाँ बिना लिपि के भाषा संभव है। अनेक बोलियाँ और उपभाषाएँ ऐसी हैं, जो भावों और विचारों को व्यक्त करने का कार्य करती हैं, किन्तु लिपि के अभाव में उनका विशेष महत्त्व या प्रचार-प्रसार नहीं हो पाता।

भाषा या बोली का ध्वनि स्वरूप स्थान-काल की सीमा में रहकर ही प्रकट किया जाता है, जबकि लिपि भाषा को स्थान और काल के बंधन से मुक्त कर देती है। इसका तात्पर्य यह है कि बोली गई भाषा किसी स्थान विशेष में उपस्थित व्यक्तियों तक ही सीमित रहती है, किन्तु लिखी गई भाषा दीर्घकाल पर्यन्त विस्तृत असीम भूमि पर कहीं भी उन विचारों और भावों को पहुँचा सकती है। इस लिए लिपि को भाषा का एक अनिवार्य एवं अत्युत्तम अंग माना गया है। भाषा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने तथा दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रखने का काम लिपि ही करती है।

लिपि के अभाव में अनेक भाषाएँ उत्पन्न होकर नष्ट हो गई। आज उनका नामों-निशान तक नहीं रहा। लिपि भी इसके अछूती नहीं रही। ललितविस्तर आदि प्राचीन ग्रंथों में तत्कालीन प्रचलित लगभग चौंसठ लिपियों का नामोल्लेख मिलता है, लेकिन आज उसमें में अधिकांश लिपियाँ अथवा उनमें लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है।

कुछ प्राचीन लिपियाँ आज भी एक अनसुलझी पहेली बनी हुई हैं। उनमें लिखित अभिलेख आज-तक नहीं पढ़े जा सके हैं। मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर के आस-पास विस्तृत पर्वतों एवं गुफाओं में टंकित 'शंख लिपि' के सुन्दर अभिलेखों को भी आज-तक नहीं पढ़ा जा सका है। इस लिपि के अक्षरों की आकृति शंख के आकार की है। प्रत्येक अक्षर इस प्रकार लिखा गया है कि उससे शंखवाद आकृति उभरकर सामने दिखाई पड़ती है। अत: अनुमान लगाया जा रहा है कि शायद यही शंख लिपि है। विद्वान गवेषक इन लेखों को पढने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन अभी तक योग्य सफलता नहीं मिल सकी है। खरोष्ठी लिपि को भी पूर्णत: नहीं पढ़ा जा सका है। आज भी विविध सिक्कों, मृद्पात्रों एवं मुहरों पर लिखित ऐसी कई लिपियाँ और भाषाएँ हमारे संग्रहालयों में विद्यमान हैं, जो एक अनसुलझी पहेली बनी हुई है और हमारे भाण्डागारों की शोभा बढ़ रही हैं।

अत: इतना तो निश्चित कहा जा सकता है कि भाषा और लिपि दोनों ही एक-दूसरे के विकास में गाड़ी के दो पहियों की तरह अहम भूमिका अदा करती हैं। लिपि के अभाव में कोई भी भाषा अपनी लिपि हौ वे आज खूब फल-फूल रहीं हैं। कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जिनकी अपनी लिपि तो नहीं है, लेकिन दूसरी लिपियों में आसानी से लिखी-पढ़ी जा सकती हैं। ये भाषाएँ इतनी शुद्ध, स्पष्ट और व्याकरणसम्मत हैं कि किसी भी लिपि में हूब-हू लिखी-पढ़ी जा सकती हैं। जैसे संस्कृत,प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी आदि भाषाओं की अपनी कोई लिपि नहीं है, लेकिन इन्हें किसी भी लिपि लिखा-पढ़ा जा सकता है। एक प्रकार से देखें तो भाषाएँ देवनागरी लिपि पर आधारित हैं। इन्होंने देवनागरी लिपि को विशेषरूप से अपनाया है, लेकिन अन्य लिपियों में भी इन भाषाओं का साहित्य प्राचीनकाल से लिखा जाता रहा है, जो हमें विविध ग्रन्थकारों में पाण्डुलिपियों एवं अभिलेखों के रूप में प्राप्त होता है।

भाषा और लिपि साम्य-वैषम्य

भाषा के विकास में लिपि का अत्यधिक महत्त्व है। लिपि के अभाव में भाषा अपनी सीमा और परिधि से बाहर नहीं जा पाती, किन्तु लिपि का आधार मिलते ही भाषा का विकास एवं विस्तार प्रारंभ हो जाता है। लिपि के द्वारा ही भाषा में अधिक सूक्ष्मता और निश्चितता आती है। विदित् हो कि प्राचीनकाल में धर्म, साहित्य तथा इतिहास का लिपि से उतना घनिष्ट संबंध नहीं था। जितना आज है। आज लिपि के अभाव में साहित्य, इतिहास आदि का होना असंभव-सा

प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। लिपि के अभाव में भी साहित्य, इतिहास आदि हो सकते हैं और थे भी। अन्तर सिर्फ इतना हो जाता है कि लिपि के अभाव में वे अनिश्चित से रहते हैं, धर्म मंत्र-तंत्र का, साहित्य कविता का और इतिहास लोक-कथाओं का रूप ग्रहण कर लेता है। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित कहानियाँ तथा विभिन्न देशों की परंपरागत लोक-कथाएँ इसके उदाहरण हैं। जिस प्रकार लेखनकला के अभाव में साहित्य का होना संभव है, उसी प्रकार वर्णमाला के अभाव में लिपि का होना भी संभव है। वर्णमाला के अभाव में मनुष्य रज्जु, रेखा-चित्र, लीपने, माढने आदि द्वारा अपने भावों तथा विचारों को लिपिबद्ध करता था। अत: लिपि के अन्तर्गत वर्ण-लिपि के अतिरिक्त रज्जु-लिपि, रेखा-लिपि, चित्र-लिपि आदि को भी शामिल किया जा सकता है।

भाषा ध्वन्यात्मक होती है जबकि लिपि चिह्नात्मक अथवा अक्षरात्मक होती है। भाषा बाली जाती है जबकि लिपि लिखी जाती है। अर्थात् भाषा का उद्‌गम स्थान मुख है जबकि लिपि हाथ द्वारा लिखी जाती है। भाषा को दीर्घकाल पर्यन्त जीवित रखने का काम लिपि करती है। अर्थात् लिपि भाषा को स्थायित्व प्रदान करती है। भाषा को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का काम भी लिपि ही करती है। प्राचीनकाल में यह कार्य पत्र द्वारा संदेश भेजने के रूप में किया जाता था, जिसमें काफी समय लगता था। लेकिन आज वैज्ञानिक साधनों के विकास के साथ यह कार्य ईमेल, एस.एम.एस, फैक्स अथवा वॉट्स्अप द्वारा तुरन्त हो जाता है। मुख से बोला गया शब्द शीघ्र ही बदला जा सकता है, परन्तु लिखी गई बात को बदलना सरल नहीं होता है। बोली हुई वाणी तुरन्त ही वायु में विलीन होकर नष्ट हो जाती है, लेकिन लिखित बातें हजारों वर्षों तक स्थिर रहती हैं।

लगभग दो हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन सम्राट अशोक के शिलालेख तत्कालीन ब्रह्मी लिपि के कारण आज भी हमारी मूल्यवान निधि के रूप में सुरक्षित हैं। अत: यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि हमारे सामने आज जितना भी पुरातन साहित्य विद्यमान है, वह लिपि के स्थायित्व का ही परिणाम है। भाषा और साहित्य की सुरक्षा के लिए भी लिपि ही एकमात्र साधन है। इस प्रकार मानवजाति के विकास में भाषा और साहित्य का जो महत्त्व है, लिपि का भी उससे कम नहीं माना जा सकता है। वर्तमान में कई लिपियाँ एवं भाषाएँ आधुनिक विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति एवं राष्ट्र के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

4

साहित्यिक संरचना

हिन्दी भारत और विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उसकी जड़ें प्राचीन भारत की संस्कृत भाषा में तलाशी जा सकती हैं। परंतु हिन्दी साहित्य की जड़ें मध्ययुगीन भारत की अवधी, मागधी , अर्धमागधी तथा मारवाड़ी जैसी भाषाओं के साहित्य में पायी जाती हैं। हिंदी में गद्य का विकास बहुत बाद में हुआ और इसने अपनी शुरुआत कविता के माध्यम से जो कि ज्यादातर लोकभाषा के साथ प्रयोग कर विकसित की गई। हिंदी का आरंभिक साहित्य अपभ्रंश में मिलता है। हिंदी में तीन प्रकार का साहित्य मिलता है। गद्य पद्य और चम्पू। हिंदी की पहली रचना कौन-सी है इस विषय में विवाद है, लेकिन ज्यादातर साहित्यकार लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखे गये उपन्यास परीक्षा गुरु को हिन्दी की पहली प्रामाणिक गद्य रचना मानते हैं।

बाबर, हुमायूँ और शेरशाह के समय में हिन्दी को राजकीय संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु व्यक्तिगत प्रयासों से 'पद्मावत' जैसे श्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना हुई। मुगल सम्राट अकबर ने हिन्दी साहित्य को संरक्षण प्रदान किया। मुगल दरबार से सम्बन्धित हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राजा बीरबल, मानसिंह, भगवानदास, नरहरि, हरिनाथ आदि थे। व्यक्तिगत प्रयासों से हिन्दी साहित्य को मजबूती प्रदान करने वाले कवियों में महत्त्वपूर्ण थे- नन्ददास, विट्ठलदास, परमानन्द दास, कुम्भन दास आदि। तुलसीदास एवं सूरदास मुगल काल के दो ऐसे विद्वान थे, जो अपनी कृतियों से हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर हो गये। अबर्दुरहमान खनखना और

रसखान को भी इनकी हिन्दी की रचनाओं के कारण याद किया जाता है। इन सबके महत्त्वपूर्ण योगदान से ही 'अकबर के काल को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल' कहा गया है। अकबर ने बीरबल को 'कविप्रिय' एवं नरहरि को 'महापात्र' की उपाधि प्रदान की। जहाँगीर का भाई दानियाल हिन्दी में कविता करता था।

शाहजहाँ के समय में सुन्दर कविराय ने 'सुन्दर श्रृंगार', 'सेनापति ने 'कवित्त रत्नाकर', कवीन्द्र आचार्य ने 'कवीन्द्र कल्पतरु' की रचना की। इस समय के कुछ अन्य महान् कवियों का सम्बन्ध क्षेत्रीय राजाओं से था, जैसे- बिहारी महाराजा जयसिंह से, केशवदास ओरछा से सम्बन्धित थे। केशवदास ने 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' एवं 'अलंकार मंजरी' जैसी महत्त्वपूर्ण रचनायँ की। अकबर के दरबार में प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता कश्मीर के मुहम्मद हुसैन को 'जरी कलम' की उपाधि दी गई। बंगाल के प्रसिद्ध कवि मुकुन्दराय चक्रवर्ती को प्रोफेसर कॉवेल ने 'बंगाल का क्रैब' कहा है। हिन्दी में पहली प्रमुख पुस्तक 12वीं सदी में लाहौर के चंदबरदाई का पृथ्वीराजरासो महाकाव्य है, जिसमें इस्लामी आक्रमण से पहले दिल्ली के अंतिम हिंदू राजा पृथ्वीराज के साहसिक कार्यों का वर्णन किया गया है, यह पुस्तक राजपूतों के दरबार की भाट परंपरा पर आधारित है, फारसी कवि अमीर खुसरो की कविताएँ भी उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अवधी में लिखा। हिन्दी में अधिकतर प्रारंभिक साहित्य की प्रेरणा धर्म पर आधारित है।

कविता

कविता से मनुष्य-भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार-विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है मानो वे पदार्थ या व्यापार-विशेष नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। वे मूर्तिमान दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता या अनुत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की जरूरत नहीं पड़ती। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों के प्रवाह जोर से बहने लगते हैं। तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है। यदि क्रोध, करूणा, दया, प्रेम आदि मनोभाव मनुष्य के अन्त:करण से निकल जाएँ तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। कविता हमारे मनोभावों को उच्छवासित करके हमारे जीवन में एक नया जीव डाल देती है। हम सृष्टि के सौन्दर्य को देखकर मोहित होने लगते हैं। कोई अनुचित या निष्ठुर काम हमें असह्य होने लगता है। हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक होकर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है।

कविता क्या है? जब कवि 'भावनाओ की प्रसव' से गुजरते है तो कविताए प्रस्फूटित होते है।

कार्य में प्रवृत्ति

कविता की प्रेरणा से कार्य में प्रवृत्ति बढ़ जाती है। केवल विवेचना के बल से हम किसी कार्य में बहुत कम प्रवृत्त होते हैं। केवल इस बात को जानकर ही हम किसी काम के करने या न करने के लिए प्रायः तैयार नहीं होते कि वह काम अच्छा है या बुरा, लाभदायक है या हानिकारक। जब उसकी या उसके परिणाम की कोई ऐसी बात हमारे सामने उपस्थित हो जाती है, जो हमें क्रोध और करूणा आदि से विचलित कर देती है तभी हम उस काम को करने या न करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। केवल बुद्धि हमें काम करने के लिए उत्तेजित नहीं करती। काम करने के लिए मन ही हमको उत्साहित करता है। अतः कार्य-प्रवृत्ति के लिए मन में वेग का आना आवश्यक है। यदि किसी से कहा जाये कि अमुक देश तुम्हारा इतना रुपया प्रतिवर्ष उठा ले जाता है, इसी से तुम्हारे यहाँ अकाल और दारिद्र्य बना रहता है? तो सम्भव है कि उस पर कुछ प्रभाव न पड़े। पर यदि दारिद्र्य और अकाल का भीषण दृश्य दिखाया जाए, पेट की ज्वाला से जले हुए प्राणियों के अस्थिपंजर सामने पेश किए जाएँ, और भूख से तड़पते हुए बालक के पास बैठी हुई माता का आर्त्तस्वर सुनाया जाए तो वह मनुष्य क्रोध और करूणा से हो उठेगा और इन बातों को दूर करने का यदि उपाय नहीं तो संकल्प अवश्य करेगा। पहले प्रकार की बात कहना राजनीतिज्ञ का काम है और पिछले प्रकार का दृश्य दिखाना, कवि का कर्त्तव्य है। मानव-हृदय पर दोनों में से किसका अधिकार अधिक हो सकता है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

मनोरंजन और स्वभाव-संशोधन

कविता के द्वारा हम संसार के सुख, दुःख, आनन्द और क्लेश आदि यथार्थ रूप से अनुभव कर सकते हैं। किसी लोभी और कंजूस दुकानदार को देखिए जिसने लोभ के वशीभूत होकर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि मनोविकारों को दबा दिया है। और संसार के सब सुखों से मुँह मोड़ लिया है। अथवा किसी महाक्रूर राजकर्मचारी के पास जाइए जिसका हृदय पत्थर के समान जड़ और कठोर हो गया है, जिसे दूसरे के दुःख और क्लेश का अनुभव स्वप्न में भी नहीं होता। ऐसा करने से आपके मन में यह प्रश्न अवश्य उठेगा कि क्या

इनकी भी कोई दवा है। ऐसे हृदयों को द्रवीभूत करके उन्हें अपने स्वाभाविक धर्म पर लाने का सामर्थ्य काव्य ही में है। कविता ही उस दुकानदार की प्रवृत्ति भौतिक और आध्यात्मिक सृष्टि के सौन्दर्य की ओर ले जाएगी, कविता ही उसका ध्यान औरों की आवश्यकता की ओर आकर्षित करेगी और उनकी पूर्ति करने की इच्छा उत्पन्न करेगी, कविता ही उसे उचित अवसर पर क्रोध, दया, भक्ति, आत्माभिमान आदि सिखावेगी। इसी प्रकार उस राजकर्मचारी के सामने कविता ही उसके कार्यों का प्रतिबिम्ब खींचकर रक्खेगी और उनकी जघन्यता और भयंकरता का आभास दिखलावेगी तथा दैवी किंवा अन्य मनुष्यों द्वारा पहुँचाई हुई पीड़ा और क्लेश के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंश को दिखलाकर उसे दया दिखाने की शिक्षा देगी। प्रायः लोग कहा करते हैं कि कविता का अन्तिम उद्देश्य मनोरंजन है, पर मेरी समझ में मनोरंजन उसका अन्तिम उद्देश्य नहीं है। कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है, पर इसके सिवा कुछ और भी होता है। मनोरंजन करना कविता का प्रधान गुण है। इससे मनुष्य का चित्त एकाग्र हो जाता है, इधर-उधर जाने नहीं पाता। यही कारण है कि नीति और धर्म-सम्बन्धी उपदेश चित्त पर वैसा असर नहीं करते जैसा कि किसी काव्य या उपन्यास से निकली हुई शिक्षा असर करती है। केवल यही कहकर कि 'परोपकार करो' 'सदैव सच बोलो' 'चोरी करना महापाप है' हम यह आशा कदापि नहीं कर सकते कि कोई अपकारी मनुष्य परोपकारी हो जाएगा, झूठा सच्चा हो जाएगा और चोर चोरी करना छोड़ देगा। क्योंकि पहले तो मनुष्य का चित्त ऐसी शिक्षा ग्रहण करने के लिए उद्यत ही नहीं होता, दूसरे मानव-जीवन पर उसका कोई प्रभाव अंकित हुआ न देखकर वह उनकी कुछ परवा नहीं करता। पर कविता अपनी मनोरंजक शक्ति के द्वारा पढ़ने या सुनने वाले का चित्त उचटने नहीं देती, उसके हृदय आदि अत्यन्त कोमल स्थानों को स्पर्श करती है और सृष्टि में उक्त कर्मों के स्थान और सम्बन्ध की सूचना देकर मानव जीवन पर उनके प्रभाव और परिणाम को विस्तृत रूप से अंकित करके दिखलाती है। इन्द्रासन खाली कराने का वचन देकर, हूर और गिलमा का लालच दिखाकर, यमराज का स्मरण दिलाकर और दोजख की जलती हुई आग की धमकी देकर हम बहुधा किसी मनुष्य को सदाचारी और कर्तव्य-परायण नहीं बना सकते। बात यह है कि इस तरह का लालच या धमकी ऐसी है जिससे मनुष्य परिचित नहीं और जो इतनी दूर की है कि उसकी परवा करना मानव-प्रकृति के विरुद्ध है। सदा-चार में एक अलौकिक सौन्दर्य और माधुर्य होता है। अतः लोगों को सदाचार की ओर आकर्षित करने का प्रकृत उपाय

यही है कि उनको उसका सौन्दर्य और माधुर्य दिखाकर लुभाया जाए, जिससे वे बिना आगा पीछा सोचे मोहित होकर उसकी ओर ढल पड़ें। मन को हमारे आचार्यों ने ग्यारहवीं इन्द्रिय माना है। उसका करना और उसे सुख पहुँचाना ही यदि कविता का धर्म माना जाए तो कविता भी केवल विलास की सामग्री हुई। परन्तु क्या हम कह सकते हैं कि वाल्मीकि का आदि-काव्य, तुलसीदास का रामचरितमानस, या सूरदास का सूरसागर विलास की सामग्री है? यदि इन ग्रन्थों से मनोरंजन होगा तो चरित्र-संशोधन भी अवश्य ही होगा। खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी भाषा के अनेक कवियों ने शृंगार रस की उन्माद कारिणी उक्तियों से साहित्य को इतना भर दिया है कि कविता भी विलास की एक सामग्री समझी जाने लगी है। पीछे से तो ग्रीष्मोपचार आदि के नुस्खे भी कवि लोग तैयार करने लगे। ऐसी शृंगारिक कविता को कोई विलास की सामग्री कह बैठे तो उसका क्या दोष? सारांश यह कि कविता का काम मनोरंजन ही नहीं, कुछ और भी है। चरित्र-चित्रण द्वारा जितनी सुगमता से शिक्षा दी जा सकती है उतनी सुगमता से किसी और उपाय द्वारा नहीं। आदि-काव्य रामायण में जब हम भगवान रामचन्द्र के प्रतिज्ञा-पालन, सत्यव्रताचरण और पितृभक्ति आदि की छटा देखते हैं, भारत के सर्वोच्च स्वार्थत्याग और सर्वांगपूर्ण सात्विक चरित्र का अलौकिक तेज देखते हैं, तब हमारा हृदय श्रद्धा, भक्ति और आश्चर्य से स्तम्भित हो जाता है। इसके विरुद्ध जब हम रावण को दुष्टता और उद्दंडता का चित्र देखते हैं तब समझते हैं कि दुष्टता क्या चीज है और उसका प्रभाव और परिणाम सृष्टि में क्या है। अब देखिए कविता द्वारा कितना उपकार होता है। उसका काम भक्ति, श्रद्धा, दया, करूणा, क्रोध और प्रेम आदि मनोवेगों को तीव्र और परिमार्जित करना तथा सृष्टि की वस्तुओं और व्यापारों से उनका उचित और उपयुक्त सम्बन्ध स्थिर करना है।

उच्च आदर्श

कविता मनुष्य के हृदय को उन्नत करती है और उसे उत्कृष्ट और अलौकिक पदार्थों का परिचय कराती है, जिनके द्वारा यह लोक देवलोक और मनुष्य देवता हो सकता है।

कविता की आवश्यकता

कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियों में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो, पर

कविता अवश्य ही होगी। इसका क्या कारण है? बात यह है कि संसार के अनेक कृत्रिम व्यापारों में फंसे रहने से मनुष्य की मनुष्यता जाती रहने का डर रहता है। अतएव मानुषी प्रकृति को जागृत रखने के लिए ईश्वर ने कविता रूपी औषधि बनाई है। कविता यही प्रयत्न करती है कि प्रकृति से मनुष्य की दृष्टि फिरने न पावे। जानवरों को इसकी जरूरत नहीं। हमने किसी उपन्यास में पढ़ा है कि एक चिड़चिड़ा बनिया अपनी सुशीला और परम रुपवती पुत्रवधू को अकारण निकालने पर उद्यत हुआ। जब उसके पुत्र ने अपनी स्त्री की ओर से कुछ कहा तब वह चिढ़कर बोला, 'चल चल! भोली सूरत पर मरा जाता है' आह! यह कैसा अमानुषिक बर्ताव है! सांसारिक बन्धनों में फंसकर मनुष्य का हृदय कभी-कभी इतना कठोर और कुंठित हो जाता है कि उसकी चेतनता - उसका मानुषभाव - कम हो जाता है। न उसे किसी का रूप माधुर्य देखकर उस पर उपकार करने की इच्छा होती है, न उसे किसी दीन दुखिया की पीड़ा देखकर करूणा आती है, न उसे अपमानसूचक बात सुनकर क्रोध आता है। ऐसे लोगों से यदि किसी लोमहर्षण अत्याचार की बात कही जाए तो, मनुष्य के स्वाभाविक धर्मानुसार, वे क्रोध या घृणा प्रकट करने के स्थान पर रूखाई के साथ यही कहेंगे - "जाने दो, हमसे क्या मतलब, चलो अपना काम देखो." याद रखिए, यह महा भयानक मानसिक रोग है। इससे मनुष्य जीते जी मृतवत् हो जाता है। कविता इसी मरज की दवा है।

सृष्टि-सौन्दर्य

कविता सृष्टि-सौन्दर्य का अनुभव कराती है और मनुष्य को सुन्दर वस्तुओं में अनुरक्त करती है। जो कविता रमणी के रूप माधुर्य से हमें आ]लादित करती है वही उसके अन्त:करण की सुन्दरता और कोमलता आदि की मनोहारिणी छाया दिखा कर मुग्ध भी करती है। जिस बंकिम की लेखनी ने गढ़ के ऊपर बैठी हुई राजकुमारी तिलोत्तमा के अंग प्रत्यंग की शोभा को अंकित किया है। उसी ने आयशा के अन्त:करण की अपूर्व सात्विकी ज्योति दिखा कर पाठकों को चमत्कृत किया है। भौतिक सौन्दर्य के अवलोकन से हमारी आत्मा को जिस प्रकार सन्तोष होता है उसी प्रकार मानसिक सौन्दर्य से भी। जिस प्रकार वन, पर्वत, नदी, झरना आदि से हम प्रफुल्लित होते हैं, उसी प्रकार मानवी अन्त:करण में प्रेम, दया, करुणा, भक्ति आदि मनोवेगों के अनुभव से हम आनंदित होते हैं। और यदि इन दोनों पार्थिव और अपार्थिव सौन्दर्यों का कहीं संयोग देख पड़े तो फिर क्या कहना

है। यदि किसी अत्यन्त सुन्दर पुरुष या अत्यन्त रूपवती स्त्री के रूप मात्र का वर्णन करके हम छोड़ दें तो चित्र अपूर्ण होगा, किन्तु यदि हम साथ ही उसके हृदय की दृढ़ता और सत्यप्रियता अथवा कोमलता और स्नेह-शीलता आदि की भी झलक दिखावें तो उस वर्णन में सजीवता आ जाएगी। महाकवियों ने प्रायः इन दोनों सौन्दर्यों का मेल कराया है, जो किसी किसी को अस्वाभाविक प्रतीत होता है। किन्तु संसार में प्राय- देखा जाता है कि रूपवान् जन सुशील और कोमल होते हैं और रूपहीन जन क्रूर और दुःशील। इसके सिवा मनुष्य के आंतरिक भावों का प्रतिबिम्ब भी चेहरे पर पड़कर उसे रुचिर या अरुचिर बना देता है। पार्थिव सौन्दर्य का अनुभव करके हम मानसिक अर्थात् अपार्थिव सौन्दर्य की ओर आकर्षित होते हैं। अतएव पार्थिव सौन्दर्य को दिखलाना कवि का प्रधान कर्म है। कविता का दुरूपयोग जो लोग स्वार्थवश व्यर्थ की प्रशंसा और खुशामद करके वाणी का दुरुपयोग करते हैं वे सरस्वती का गला घोंटते हैं। ऐसी तुच्छ वृत्ति वालों को कविता न करना चाहिए। कविता का उच्चाशय, उदार और निःस्वार्थ हृदय की उपज है। सत्कवि मनुष्य मात्र के हृदय में सौन्दर्य का प्रवाह बहाने वाला है। उसकी दृष्टि में राजा और रंक सब समान हैं। वह उन्हें मनुष्य के सिवा और कुछ नहीं समझता। जिस प्रकार महल में रहने वाले बादशाह के वास्तविक सद् गुणों की वह प्रशंसा करता है उसी प्रकार झोंपड़े में रहने वाले किसान के सद् गुणों की भी। श्रीमानों के शुभागमन की कविता लिखना और बात बात पर उन्हें बधाई देना सत्कवि का काम नहीं। हाँ जिसने निःस्वार्थ होकर और कष्ट सहकर देश और समाज की सेवा की है, दूसरों का हित साधन किया है, धर्म का पालन किया है, ऐसे परोपकारी महात्मा का गुण गान करना उसका कर्तव्य है।

कविता की भाषा

मनुष्य स्वभाव ही से प्राचीन पुरुषों और वस्तुओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। पुराने शब्द हम लोगों को मालूम ही रहते हैं। इसी से कविता में कुछ न कुछ पुराने शब्द आ ही जाते हैं। उनका थोड़ा बहुत बना रहना अच्छा भी है। वे आधुनिक और पुरातन कविता के बीच सम्बन्ध सूत्र का काम देते हैं। हिन्दी में 'राजते हैं' 'गहते हैं' 'लहते हैं' 'सरसाते हैं' आदि प्रयोगों का खड़ी बोली तक की कविता में बना रहना कोई अचम्भे की बात नहीं। अँग्रेजी कविता में भी ऐसे शब्दों का अभाव नहीं जिनका व्यवहार बहुत पुराने जमाने से कविता में होता आया है। आदि शब्द ऐसे ही हैं। अंग्रेजी कविता समझने के लिए इनसे परिचित होना

पड़ता है। पर ऐसे शब्द बहुत थोड़े आने चाहिए, वे भी ऐसे जो भद्दे और गंवारू न हों। खड़ी बोली में संयुक्त क्रियाएँ बहुत लंबी होती हैं, जैसे - "लाभ करते हैं," "प्रकाश करते हैं" आदि। कविता में इनके स्थान पर "लहते हैं" "प्रकाशते हैं" कर देने से कोई हानि नहीं, पर यह बात इस तरह के सभी शब्दों के लिए ठीक नहीं हो सकती। कविता में कही गई बात हृत्पटल पर अधिक स्थायी होती है। अतः कविता में प्रत्यक्ष और स्वभावसिद्ध व्यापार-सूचक शब्दों की संख्या अधिक रहती है। समय बीता जाता है, कहने की अपेक्षा, समय भागा जाता है कहना अधिक काव्य सम्मत है। किसी काम से हाथ खींचना, किसी का रुपया खा जाना, कोई बात पी जाना, दिन ढलना, मन मारना, मन छूना, शोभा बरसना आदि ऐसे ही कवि-समय-सिद्ध वाक्य हैं, जो बोल-चाल में आ गए हैं। नीचे कुछ पद्य उदाहरण-स्वरूप दिए जाते हैं -

(क) धन्य भूमि वन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा।।
-तुलसीदास

(ख) मनहुँ उमगि अंग अंग छवि छलकै।। -तुलसीदास, गीतावलि

(ग) चूनरि चारु चुई सी परै चटकीली रही अंगिया ललचावे

(घ) वीथिन में ब्र में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगरो बसंत है। -पद्माकर

(ङ) रंग रंग रागन पै, संग ही परागन पै, वृन्दावन बागन पै बसंत बरसो परै।

बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनसे एक ही का नहीं किन्तु कई क्रियाओं का एक ही साथ बोध होता है। ऐसे शब्दों को हम जटिल शब्द कह सकते हैं। ऐसे शब्द वैज्ञानिक विषयों में अधिक आते हैं। उनमें से कुछ शब्द तो एक विलक्षण ही अर्थ देते हैं और पारिभाषिक कहलाते हैं। विज्ञानवेत्ता को किसी बात की सत्यता या असत्यता के निर्णय की जल्दी रहती है। इससे वह कई बातों को एक मानकर अपना काम चलाता है, प्रत्येक काम को पृथक पृथक दृष्टि से नहीं देखता। यही कारण है, जो वह ऐसे शब्द अधिक व्यवहार करता है जिनसे कई क्रियाओं से घटित एक ही भाव का अर्थ निकलता है। परन्तु कविता प्राकृतिक व्यापारों को कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष कराती है- मानव-हृदय पर अंकित करती है। अतएव पूर्वोक्त प्रकार के शब्द अधिक लाने से कविता के प्रसाद गुण की हानि होती है और व्यक्त किए गए भाव हृदय पर अच्छी तरह अंकित नहीं होते। बात यह है कि मानवी कल्पना इतनी प्रशस्त नहीं कि एक दो बार में कई व्यापार उसके द्वारा

हृदय पर स्पष्ट रीति से खचित हो सकें। यदि कोई ऐसा शब्द प्रयोग में लाया गया जो कई संयुक्त व्यापारों का बोधक है तो सम्भव है, कल्पना शक्ति किसी एक व्यापार को भी न ग्रहण कर सके, अथवा तदन्तर्गत कोई ऐसा व्यापार प्रगट करे जो मानवी प्रकृति का उद्दीपक न हो। तात्पर्य यह कि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, तथा ऐसे शब्दों का समावेश जो कई संयुक्त व्यापारों की सूचना देते हैं, कविता में वांछित नहीं। किसी ने 'प्रेम फौजदारी' नाम की शृंगार-रस-विशिष्ट एक छोटी-सी कविता अदालती काररवाइयों पर घटा कर लिखी है और उसे 'एक तरफा डिगरी' आदि कानूनी शब्दों से भर दिया है। यह उचित नहीं। कविता का उद्देश्य इसके विपरीत व्यवहार से सिद्ध होता है। जब कोई कवि किसी दार्शनिक सिद्धान्त को अधिक प्रभावोत्पादक बना कर उसे लोगों के चित्त पर अंकित करना चाहता है तब वह जटिल और पारिभाषिक शब्दों को निकाल कर उसे अधिक प्रत्यक्ष और मर्म स्पर्शी रुप देता है। भर्तृहरि और गोस्वामी तुलसीदास आदि इस बात में बहुत निपुण थे। भर्तृहरि का एक श्लोक लीजिए- तृषा शुष्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि

क्षुधार्त्तः संछालीन्कवलयति शाकादिवलितान्।
प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढ़तरमाश्लिष्यति वधूं
प्रतीकारो व्याधैः सुखमिति विपर्यस्यति जनः॥

भावार्थ - प्यासे होने पर स्वादिष्ट और सुगन्धित जल-पान, भूखे होने पर शाकादि के साथ चावलों का भोजन, और हृदय में अनुरागाग्नि के प्रज्वलित होने पर प्रियात्मा का आलिंगन करन वाले मनुष्य विलक्षण मूर्ख हैं। क्योंकि प्यास आदि व्याधियों की शान्ति के लिए जल-पान आदि प्रतीकारों ही को वे सुख समझते हैं। वे नहीं जानते कि उनका यह उपचार बिलकुल ही उलटा है। देखिए, यहाँ पर कवि ने कैसी विलक्षण उक्ति के द्वारा मनुष्य की सुख-दुख विषयक बुद्धि की भ्रामिकता दिखलाई है। अंग्रेजों में भी पोप कवि इस विषय में बहुत सिद्धहस्त था। नीचे उसका एक साधारण सिद्धान्त लिखा जाता है- "भविष्यत् में क्या होने वाला है, इस बात की अनभिज्ञता इसलिए दी गई है जिसमें सब लोग, आने वाले अनिष्ट की शंका से, उस अनिष्ट घटना के पूर्ववर्ती दिनों के सुख को भी न खो बैठें." इसी बात को पोप कवि इस तरह कहता है-

भावार्थ - उस भेड़ के बच्चे को, जिसका तू आज रक्त बहाना चाहता है, यदि तेरा ही सा-ज्ञान होता तो क्या वह उछलता कूदता फिरता? अन्त तक वह आनन्दपूर्वक चारा खाता है और उस हाथ को चाटता है, जो उसका रक्त

बहाने के लिए उठाया गया है। 3 भविष्यत् का अज्ञान हमें (ईश्वर ने) बड़ी कृपा करके दिया है। 'अनिष्ट' शब्द बहुत व्यापक और संदिग्ध है, अत: कवि मृत्यु ही को सबसे अधिक अनिष्ट वस्तु समझता है। मृत्यु की आशंका से प्राणिमात्र का विचलित होना स्वाभाविक है। कवि दिखलाता है कि परम अज्ञानी पशु भी मृत्यु सिर पर नाचते रहते भी सुखी रहता है। यहाँ तक कि वर प्रहारकर्ता के हाथ को चाटता जाता है। यह एक अद्‌भुत और मर्मस्पर्शी दृश्य है। पूर्वोक्त सिद्धान्त को यहाँ काव्य का रूप प्राप्त हुआ है। एक और साधारण सा उदाहरण लीजिए। "तुमने उससे विवाह किया" यह एक बहुत ही साधारण वाक्य है। पर "तुमने उसका हाथ पकड़ा" यह एक विशेष अर्थ-गर्भित और काव्योचित वाक्य है। 'विवाह' शब्द के अन्तर्गत बहुत से विधान हैं जिन सब पर कोई एक दफे दृष्टि नहीं डाल सकता। अत: उससे कोई बात स्पष्ट रूप से कल्पना में नहीं आती। इस कारण उन विधानों में से सबसे प्रधान और स्वाभाविक बात जो हाथ पकड़ना है उसे चुन कर कवि अपने अर्थ को मनुष्य के हृत्पटल पर रेखांकित करता है।

कहानी

कहानी हिन्दी में गद्य लेखन की एक विधा है। उन्नीसवीं सदी में गद्य में एक नई विधा का विकास हुआ जिसे कहानी के नाम से जाना गया। बंगला में इसे गल्प कहा जाता है। कहानी ने अंग्रेजी से हिंदी तक की यात्र बंगला के माध्यम से की। कहानी गद्य कथा साहित्य का एक अन्यतम भेद तथा उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्य का रूप है। मनुष्य के जन्म के साथ ही साथ कहानी का भी जन्म हुआ और कहानी कहना तथा सुनना मानव का आदिम स्वभाव बन गया। इसी कारण से प्रत्येक सभ्य तथा असभ्य समाज में कहानियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में कहानियों की बड़ी लंबी और सम्पन्न परंपरा रही है। वेदों, उपनिषदों तथा ब्राह्मणों में वर्णित 'यम-यमी', 'पुरुरवा-उर्वशी', 'सौपर्णी-काद्रव', 'सनत्कुमार- नारद', 'गंगावतरण', 'श्रृंग', 'नहुष', 'ययाति', 'शकुन्तला', 'नल-दमयन्ती' जैसे आख्यान कहानी के ही प्राचीन रूप हैं।

प्राचीनकाल में सदियों तक प्रचलित वीरों तथा राजाओं के शौर्य, प्रेम, न्याय, ज्ञान, वैराग्य, साहस, समुद्री यात्र, अगम्य पर्वतीय प्रदेशों में प्राणियों का अस्तित्त्व आदि की कथाएँ, जिनकी कथानक घटना प्रधान हुआ करती थीं, भी कहानी के ही रूप हैं। 'गुणढ्य' की 'बृहत्कथा' को, जिसमें 'उदयन', 'वासवदत्ता', समुद्री व्यापारियों, राजकुमार तथा राजकुमारियों के पराक्रम की

घटना प्रधान कथाओं का बाहुल्य है, प्राचीनतम रचना कहा जा सकता है। वृहत्कथा का प्रभाव 'दण्डी' के 'दशकुमार चरित', 'बाणभट्ट' की 'कादम्बरी', 'सुबन्धु' की 'वासवदत्ता', 'धनपाल' की 'तिलकमंजरी', 'सोमदेव' के 'यशस्तिलक' तथा 'मालतीमाधव', 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्र', 'विक्रमोर्वशीय', 'रत्नावली', 'मृच्छकटिकम्' जैसे अन्य काव्यग्रंथों पर साफ-साफ परिलक्षित होता है। इसके पश्चात् छोटे आकार वाली 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', 'बेताल पच्चीसी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'शुक सप्तति', 'कथा सरित्सागर', 'भोजप्रबन्ध' जैसी साहित्यिक एवं कलात्मक कहानियों का युग आया। इन कहानियों से श्रोताओं को मनोरंजन के साथ ही साथ नीति का उपदेश भी प्राप्त होता है। प्रायः कहानियों में असत्य पर सत्य की, अन्याय पर न्याय की और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई हैं।

प्रेमचंद और प्रसाद

सन 1916 ई., प्रेमचंद की पहली कहानी सौत प्रकाशित हुई। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी का कथा-साहित्य समाज-सापेक्ष सत्य की ओर मुड़ा। प्रेमचंद की आखिरी कहानी 'कफन' 1936 ई., में प्रकाशित हुई और उसी वर्ष उनका देहावसान भा हुआ। बीस वर्षों की इस अवधि में कहानी की कई प्रवृत्तियाँ उभर कर आईं। किंतु इन प्रवृत्तियों को अलग-अलग न देखकर यदि समग्रतः देखा जाय तो इस समूचे काल को आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के रूप में लिया जा सकता है। इस कालावधि में 'प्रसाद' और प्रेमचंद कहानियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद मुख्यत रोमैंटिक कहानीकार हैं। किंतु उनके अंतिम कहानी संग्रह 'इंद्रजाल' (1936 ई.) में संग्रहीत इन्द्रजाल, गुंडा, सलीम, विरामचिन्ह से उनकी यथार्थोमुखी प्रवृत्ति को पहचाना जा सकता है। पर रोमैंटिक होने के कारण वे आदर्शवादी थे। प्रेमचंद ने अपने को आदर्शोमुखी यथार्थवादी कहा है। वस्तुतः वे भी आदर्शवादी थे। किंतु अपने विकास के अंतिम काल में वे यथार्थ की कटुता को भोगकर यथार्थवादी हो गए। 'पूस की रात' और 'कफन' इसके प्रमाण हैं। सन '33 में निराला का एक संग्रह 'लिली' प्रकाशित हो चुका था। उसकी कहानियाँ बहुत कुछ यथार्थवादी ही हैं।

प्रसाद का रोमैंटिक आदर्श उनकी प्रारम्भिक कहानियों में भी दिखाई देता है। पर चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की कहानी 'उसने कहा था' (1915 ई.) में यह अपनी पूरी रंगीनी में मिलता है। प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रोमैंटिक कहानियाँ 'उसने

कहा था' के बाद लिखी गई। 'उसने कहा था' अपने परिपार्श्व (सेटिंग), चरित्र-कल्पना, परिणति में रोमैंटिक है। प्रेमजन्य त्याग, बलिदान–यहाँ तक कि मृत्यु का वरण सभी कुछ रोमैंटिक आदर्श की परिपूर्ति करते हैं। आठ वर्ष की लड़की और बारह वर्ष के लड़के में जिस प्रेम का उदय होता है वह पच्चीस वर्षों के अन्तराल के बाद भी इस तरह उभर आता है कि उस रोमैंटिक प्रेम के निमित्त लहना सिंह प्राण दे देता है। इस आदर्श की रक्षा के लिए वास्तविकता को नजरअंदाज कर दिया गया है। इस कहानी की तकनीकी उपलब्धियाँ अभूतपूर्व हैं। नाटकीयता, स्थानिक रंग, रंगीन सेटिंग, जीवंत वर्णन, फ्लैश बैक, स्वप्न आदि को कहानी में समाविष्ट करने का पहला श्रेय उन्हीं को है। प्रसाद ने अपनी कहानियों में गुलेरजी की कतिपय तकनीकी विशेषताओं को ग्रहण किया हा पर वे मूलत प्रगीतात्मक (लीरिकल) हैं। प्रगीतों में कथा तत्त्व कम, भाव अधिक होता है। वे छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। अतीत के शौर्यमूलक चित्रों, प्रभावशाली प्राकृतिक वातावरणों, प्रेमगत अन्तर्द्वन्दों में उनका मन अधिक रमा है। प्रेम और सौन्दर्य के चित्रण में उन्होंने सर्वाधिक मनोयोग से काम लिया है। एक दूसरी विशेषता, जो प्रायः अलक्षित रह जाती है, यह है कि उन्होंने कहानी के पात्रों को व्यक्तित्त्व दिया। व्यक्तिनिष्ठता छायावादी काव्य की विशेषता रही है। नाटकों के पात्रों को भी उन्होंने सर्वप्रथम व्यक्तित्त्व दिया। वही बात कहानी को संबंध में भी कही जा सकती है। 'गुण्डा' के बाबू नन्हूक सिंह जैसे व्यक्ति चरित्र की सृष्टि अद्वितीयता में अकेली है। इस प्रकार मधूलिका, चम्पा, सालवती आदि भी अविस्मरणीय हैं। राष्ट्रीय चेतना छायावादी काव्य के एक वैशिष्ट्य है। इसे 'पुरस्कार' जैसी कहानियों में देखा जा सकता है। मन का गहन अन्तर्द्वन्द्व तो इनकी कहानी का मूलाधार है। 'आकाशदीप' इसका जीवंत उदाहरण है। प्रगीतात्मकता के सभी तत्त्व–अत्यधिक धनत्वपूर्ण वेदना, एकतानता आदि के लिए विसाती द्रष्टव्य हैं।

एक अलग द्रष्टिकोण अपनाने के कारण उनकी कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों से भिन्न हो जाती हैं। इसलिये आलोचकों ने प्रसाद संस्थान की कहानियों को प्रेमचंद-संस्थान की कहानियों से पृथक माना है। दृष्टिकोण का अलगाव संरचना का अलगाव होता है। उनके कथानक में घटनाएँ कम और स्थितियों (सिचुएशन्स) के प्रति प्रतिक्रियाएँ अधिक हैं। फलस्वरूप उनमें नाटकीयता का प्राधान्य हो गया है। उनके चरित्र भी स्थितियों से गुजर कर अपने क्रिया-कलापों द्वारा अपने व्यक्तित्त्व को प्रतिष्ठित करते हैं। प्राकृतिक सेटिंग जहाँ

कहीं भी ले आई गई है वह संपूर्ण कहानी का अनिवार्य अंग बन गई है। छायावादी काव्य की तरह उस पर भी मानवीय चेतना की आरोप दिखाई देता है। अनुभूति और कल्पना का इतना एकतान संयोग अन्यत्र नहीं मिलेगा। प्रेमचंद ने कहानियों को व्यष्टि-जीवन से समष्टि-जीवन की ओर मोड़ा। प्रसाद की कहानियों छायावादी काव्य-चेतना के इतने समीप है कि वे स्वयं प्रगीतात्मक हो गई हैं। उनमें मिश्रित भावों के द्वंद्व मुख्यत: काव्यात्मक और व्यक्तिमूलक हैं, इसलिए सामान्य जीवन का प्रवाह वहाँ नहीं मिलेगा। प्रेमचंद ने कहानियों पर लदी हुई आलंकारिता को अनलंकृत कर उन्हें सहज बनाया।

यों प्रेमचंद की आरंभिक कहानियों में एक दूसरा अलगाव दिखाई पड़ता है। इसे सामान्यत: आदर्शवाद के नाम से पुकारा जाता है। पर उसे सुधारवाद कहना चाहिए। बड़े घर की बेटी का बड़प्पन, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन सुधारवाद के अंतर्गत ही आता है। पर क्रमश: उनमें परिवर्तन आया और उन्होंने यथार्थ भारतीय जीवन को आँकने का पूरा प्रयास किया। इस देश के मध्यवर्गीय समाज को इतने वैविध्य के साथ कहानियों में चित्रित करने का प्रयत्न किसी अन्य व्यक्ति ने नहीं किया। संख्या में भी उन्होंने काफी कहानियाँ लिखी हैं—दो सौ चौबीस। कुछ ही कहानियाँ लिखने के बाद प्राय: कहानीकार अपने को दुहराने लगते हैं, किन्तु प्रेमचंद ने अपने को दुहराया नहीं है। यह उनकी दृष्टि-व्याप्ति का सूचक है। घरेलू जीवन की समस्याओं तथा सामाजिक जीवन की विडम्बनाओं को जिस ढंग से उन्होंने चित्रित किया है वे बहुत जटिल तो नहीं पर तात्कालीन परिवारों और संस्थाओं को उजागर करने में पूर्णत: समर्थ हैं। उनकी आदर्शोन्मुख और अनसंकृत कथा-शैली भारतीय कथा-आख्यायिका के मेल में अधिक है।

पर बाद में चलकर प्रेमचंद ने अनुभव किया कि उनके आदर्श जीवन में फलीभूत नहीं हुए। इसलिये कल्पनात्मक आदर्श का पल्ला छोड़कर वे यथार्थ जीवन की कटुताओं का चित्रण करने लगे। 'पूस की रात' और 'कफन' में उनके बदले हुए दृष्टिकोण तथा नई संरचना को देखा जा सकता है। इन दोनों कहानियों को विशेष रूप से अंतिम कहानी को पूर्णत: आधुनिक कहा जा सकता है। ये कहानियाँ किसी आदर्श की खूँटी पर नहीं टँगी हैं। इनमें आलोचक यह नहीं बता सकता कि कहानी का संप्रेश्य कोई खास वस्तु है। वे अपना संप्रेष्य स्वयं हैं-आदि से अन्त तक। कोई परिणति नहीं है कोई चरमोत्कर्ष नहीं है। केवल सांकेतिकता है, पाठकों की काल्पना को उड़ान भरने की छूट है। आज की आलोचना में जिस

भाषिक सर्जना की चर्चा की जाती है उसे इनमें पूरी ऊँचाई पर देखा जा सकता है। दोनों ही कहानियाँ अन्वेषण की प्रक्रिया का सुन्दर नमूना हैं। आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि आज की जिंदगी में जिस विदूषकत्व का प्रवेश देखा जा रहा है उसके तेवर 'कफन' में मौजूद हैं। किन्तु इस विदूषकत्व को (जो तथाकथित आलोचकों की दृष्टि में विकृति है) उन्होंनें रचनात्मक संदर्भ में रखा है, जो समूचे समाज को नंगा करते हुए एक अर्थपूर्ण मूल्यदृष्टि को संकेतिक करता है। एक ऐतिहासिक संगति के फलस्वरूप कफन में आधुनिक जीवन का अकेलापन और डीह्यूमनाइजेशन सदृश्य में ही समाविष्ट हो गया है। यह हिन्दी की पहली आधुनिकता बोध की कहानी है। प्रसाद और प्रेमचंद संस्थान के जो लेखक हुए उनमें विकास का कोई क्रम लक्षित नहीं होता है। उनकी कहानियों में अपने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व की झलक प्राय नहीं मिलती। रायकृष्णदास प्रसाद-संस्थान के लेखक हैं। चंडीप्रसाद हृदयेश में प्रसाद की काव्यात्मकता नहीं है, उनकी अलंकृति मात्र है। प्रेमचंद संस्थान के लेखकों में सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ कौशिक, राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि की गणना की जाती है।

उग्र और जैनेन्द्र

सन 1922 ई. में उग्र का हिन्दी-कथा-साहित्य में प्रवेश होता है। उग्र न तो प्रसाद की तरह रोमैंटिक थे और न ही प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवादी। वे केवल यथार्थवादी थे–प्रकृति से ही उन्होंने समाज के नंगे यथार्थ को सशक्त भाषा-शैली में उजागर किया। समाज की गंदगी को अनावृत करने के कारण तथाकथित शुद्धतावादी आलोचकों ने उनकी तीखी आलोचना की। उनके साहित्य को घासलेटी साहित्य कहा गया। उन्होंने सामाजिक कुरूपताओं पर तीखा प्रहार किया। दोजख की आग, चिन्गारियाँ, बलात्कार, सनकी अमीर, चाकलेट, इन्द्रधनुष आदि उनकी सुप्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इन कहानियों को अमर्यादित और विघातक बताया गया है। लेकिन यदि उनकी बहुत-सी कहानियाँ अमर्यादित हैं तो आज के लेखकों की अनेक कहानियों के संबंध में भी यही कहना होगा। उग्र की कहानियों के लिये एक प्रतिमान तथा आज की वैसी ही कहानियों के लिये दूसरा प्रतिमान नहीं लागू किया जा सकता। आज के संदर्भ में उग्र की कहानियों पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन आदि पर उग्र का प्रभाव देखा जा सकता है।

27-28 ई. में जैनेन्द्र ने कहानी लिखना आरंभ किया। उनकी पहली कहानी खेल (सन 1927 ई) विशाल भारत में प्रकाशित हुई थी। फाँसी (1928 ई.) वातायन (1930 ई.) नीलम देश की राजकन्या (1933 ई.), एक रात (1934 ई.), दो चिड़ियाँ (1934 ई.), पाजेब (1942 ई.), जयसंधि (1947 ई.) आदि उनके कहानी संग्रह हैं। उनके आगमन के साथ ही हिन्दी-कहानी का नया उत्थान शुरू होता है।

नए उत्थान का मतलब मनोवैज्ञानिक कहानियाँ कहने से स्पष्ट नहीं होता। उन्हें हिन्दी का शरत्चंद्र कह कर भी लोग भ्रांति की सृष्टि करते हैं। जैनेंद्र में शरत्चंद्र की रुआँसी भावुकता नहीं है। जैनेन्द्र की कहानियों में एक विशिष्ट प्रकार के जीवन-दर्शन की खोज है। प्रसाद की कहानियों में भी मन का गहरा द्वंद्व चित्रित हुआ है। पर इस द्वंद्व के आयाम सीमित हैं। जैनेन्द्र मन की परतें उघाड़ते हैं और उसके माध्यम से सत्यान्वेषण का प्रयास करते हैं। कहानियों के माध्यम से सत्यान्वेषण का यह प्रयास पहली बार जैनेन्द्र की कहानियों में दिखाई पड़ता है। जैनेन्द्र का कहना है—कहानी तो एक भूख है, जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएँ होती हैं, चिंताएँ होती हैं और हम उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का सतत् प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। इस अन्वेषण की प्रक्रिया गाँधीवादी अहिंसा और फ्रायडवादी अचेतन मन के व्यापार से संबंध है। इसलिये जगह जगह नैतिक मानों का प्रश्न उठता है, पर जैनेन्द्र में एक प्रकार के रहस्य और गुह्यता के भी दर्शन होते हैं। यह उनकी विशेषता और कमजोरी दोनों हैं। आगे चलकर जहाँ उनका दर्शन शिथिल और अन्वेषणहीन हो गया है बहाँ उसका तेवर अधिक स्थूल और चटकीला है। परवर्ती कहानियों की मुद्राएँ इसी तरह की हैं। उनकी कहानियों की संरचना व्यक्ति के बिंदु से शुरु होती है। अवचेतन मन की कुछ गुत्थियाँ उछाल दी जाती हैं। वे कभी अपनी ही किसी दूसरी प्रवृत्ति अथवा बाह्य नैतिकता से टकराती हैं। यह टकराहट आत्मपीड़ा और अहं के विलगन में परिणत होकर कहानी बन जाती है। उनमें प्राय तार्किक अन्विति का अभाव मिलता है और उसकी पूर्ति वे तर्कातीत रहस्य से करते हैं। आगे कुछ दिनों तक प्रेमचंद और जैनेन्द्र की परंपराओं का विकास ही हिन्दी—कहानी का विकास माना गया है।

यशपाल

यशपाल मूलत प्रेमचंद की परम्परा के कहानीकार हैं। '36 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हो चुकी थी। इस समय के लेखकों की रचनाओं में

प्रगतिशीलता के तत्त्व का जो समावेश हुआ उसे युगधर्म समझना चाहिए। यशपाल राष्ट्रीय संग्राम के एक सक्रिय क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। इसलिये साहित्य के वे साधन समझते थे, साध्य नहीं। स्पष्ट है कि उनकी कहानियाँ किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखी गई हैं। धनी वर्ग हमारे समाज के कोढ़ हैं। सारी सांस्कृतिक–नैतिक असंगतियों के मूल में धन की विषमता ही क्रियाशील है। मार्क्स के साथ ही इन पर फ्रायड का भी गहरा प्रभाव है। फलत यौन–चेतना के खुले चित्र भी इनके कहानी उपन्यासों में मिलेंगे। इनके दर्जनों कहनी–संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं – पिंजड़े की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिशप्त, तर्क का तूफान, भस्मावृत चिन्गारी, फूलों का कुर्ता, उत्तमी की माँ आदि। यशपाल की कहानियों को दृष्टांत के रूप में ग्रहण करते हैं। इसलिए उनकी कहानियाँ बहुत कुछ नियोजित (कांट्राइव्ड) होती हैं। इस नियोजन का मुख्य आधार कल्पना है–अनुभूति नहीं। प्रेमचंद की रचना–प्रक्रिया से इनकी रचना–प्रक्रिया काफी मिलती–जुलती है। प्रेमचंद की कहानियों में (कुछ को छोड़कर) पहले कोई स्थिर विचार आता है और बाद में उसके अनुसार कहानी के पात्र, स्थितियाँ घटनाएँ आदि को अन्वेषित कर लिया जाता है। यशपाल की प्रक्रिया इससे भिन्न नहीं है। प्रेमचंद में सुधारवाद की प्रमुखता है तो यशपाल में मार्क्सवाद और फ्रायडवाद की। वे विचारों के कहानीकार हैं, चिन्तन के नहीं। सामाजिक विशेषताओं और मध्यवर्गीय समाज के खोखलेपन पर गहरा व्यंग करने में ये बेजोड़ हैं। यशपाल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कथा का रस उनमें सर्वत्र मिलता है।

अज्ञेय

अज्ञेय प्रयोगधर्मा कलाकार हैं। उनके आगमन के साथ कहानी नई दिशा की ओर मुड़ी। जिस आधुनिकता बोध की आज बहुत चर्चा की जाती है उसके प्रथम पुरस्कर्ता अज्ञेय ही ठहरते हैं– काव्य में भी, कथा–साहित्य में भी। प्रयोगधर्मा होने के साथ साथ वे अपने अभिजातीय संस्कारों के कारण सचेत भी हैं। उनकी आरंभिक कहानियों में रोमानी विद्रोह दिखाई पड़ता है। लेकिन क्रमश वे रोमांस से हटते गये। अहं के विसर्जन का उल्लेख वे बार–बार करते हैं, यह रोमांस से अलग होने का प्रयत्न ही है। उनकी श्रेष्ठ कहानियों में उनके अहं ने दखल नहीं दिया है। इसलिये वे अपनी संश्लिष्टता में अपूर्व बन पड़ी है। विपगाथा (1937 ई.), परंपरा (1944 ई.), कोठरी की बात (1945 ई.),

शरणार्थी (1947 ई.), जयदोल (1951 ई.) और ये तेरे प्रतिरूप उनके कहानी संग्रह हैं। पहले दोनों संग्रहों की कहानियों में अहं का विस्फोट और रोमानी विद्रोह है। शरणार्थी की कहानियाँ बौद्धिक सहानुभूति से प्रेरित होने के कारण रचनात्मक नहीं बन पड़ी हैं। पर जयदोल संग्रह की कहानियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में अहं पूर्णत विसर्जित है। अपने से हट कर उसकी दृष्टि में समग्रता और रचना में संश्लिष्टता आ गई है। उदाहरणार्थ उनकी दो कहानियों को (गैंग्रीन-रोज और पठार का धीरज) देखा जा सकता है। 'गैंग्रीन' में मध्यवर्ग की एकरसता (बोर्डम) को समग्रत लिया गया है। यह एकरसता उसके संरचनात्मक स्तर पर चित्रित मिलेगी। उसे परिणति या निचोड़ के रूप में नहीं पाया जा सकता है - उसे पाने के लिये कहानी को समग्रत ही लेना होगा। 'गैंग्रीन' मध्यवर्गीय जीवन की एकरसता का जबरदस्त प्रतीक है। पर इसे परिवेश, फ्लैश बैक, बिंब, प्रतीक के माध्यम से रचा गया है। न फालतू शब्द और न ही प्रारंभिक कहानियों की तरह विशेषणों की भरमार। घरेलू वातावरण, तीन का गजर, घंटे का टन-टन, पाइप का टप-टप आदि सभी कुछ एकरस परिवेश की रचना करते हैं। 'पठार का धीरज' भी अपनी रचनात्मक संश्लिष्टता और आधुनिकता बोध के कारण महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। दो युगों की प्रेम-कहानियाँ जो अपना अलग-अलग बोध देती हैं, एक आन्तरिक संगति में बंधकर पैरेबुल के निकट पहुँच जाती हैं।

अन्य रचनाकार

अश्क प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। उन्होंने भी मध्यवर्गीय समाज से कथावस्तु का चयन किया है। कहानी संबंधी विविध प्रयोग उनकी रचना में मिलेंगे। पर प्रयोगधर्मी रचनाओं में एक प्रकार की आयासजन्य कृत्रिमता मिलती है। जीवन की गहरी अनुभूति डाची, काकड़ां का तेली जैसी कहानियों में उपलब्ध होती है। अश्क के अतिरिक्त वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने भी कहानियों के क्षेत्र में काम किया है। किन्तु इनका वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है कहानी नहीं। इसके बाद सन 50 ई. के आस-पास से हिन्दी कहानियाँ नए दौर से गुजरने लगती हैं। इन दो दशकों में विकसित कहानियों की प्रवृति को एक नाम देना कठिन है। यदि कोई नाम दिया जा सकता है तो वह है आधुनिकता बोध की कहानियाँ। आधुनिकता यानि विज्ञान और प्रविधि की यांत्रिकता में जकड़े जटिल-जीवन-बोध की कहानियाँ।

परंपरागत हिन्दी कहानियों से अलगाने के लिए इन्हें नई-नई कहानियाँ कहा जाने लगा। वस्तुत नई कहानियाँ नाम नई कविता के वजन पर रखा गया। कुछ लोग इन कहानियों को पूर्ववर्ती पीढ़ी की कहानियों का विकास मानते हैं और कुछ परंपरा से कटकर या उसे अस्वीकार कर इसे एकदम नई कहने की हठधर्मी से बाज नहीं आते। वस्तुत इन नामों में कुछ अर्थपूर्ण नहीं है।

नई कहानी से भी अपने को अलगाने के लिए और और नाम रखे गये- सचेतन कहानी, अकहानी आदि। पर नामों पर बहस करना बेमानी है। कहानी तो कहानी है। युग परिवर्तन के साथ उसकी प्रवृत्तियाँ बदलेंगी ही। स्वतंत्रता–प्राप्ति के कुछ ही वर्षों बाद भारतीय परिवेश में प्रसन्नता–अवसाद के विरोधी स्वर सुनाई पड़ने लगे। कुछ लोग राष्ट्रीय आकांक्षाओं के पूर्त्यर्थ आशान्वित थे और कुछ लोगों का मोह-भंग हो चुका था। स्वतंत्रता की प्राप्ति एक रोमेंटिक घटना थी। ग्राम तथा उसके अंचल संबद्ध कहानियों में रोमानी यथार्थ चित्रित हुआ है। शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। उनकी कुछ कहानियों में जीवट भी मिलता है। किंतु इस तरह की अधिकांश कहानियाँ, जाने-समझे और आंशिक रूप से भोगे यथार्थ पर आधारित होने पर भी, पुराने मूल्यों का ही प्रतिपादन करती हैं। इन दो दशकों में देखते देखते दादा, बाबा, माई के प्रति व्यक्त की गई आस्था उलट गई और वह पुराने-नए मूल्यों के संघर्ष के रूप में चित्रित की जाने लगी। यह टकराहट नए बदलाव की सूचना देती है।

आधुनिक जीवन में कुछ ऐसा टूट गया है कि पुराने सारे संबंध बदल गए हैं। रागपूर्ण संबंध अपने तनावों में मूल्यहीन होने के साथ अर्थहीन भी हो गये हैं। मोहन राकेश ने इन तनावों को मुख्य रूप से अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। कमलेश्वर तनावों के बीच मुल्य दृष्टि की तलाश करते हैं। निर्मल वर्मा मूलत: रोमेंटिक होते हुए भी कुछ कहानियों में आज की सामाजिक विडंबना–निरर्थक चीख–को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करते हैं। धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय और नरेश मेहता कवि पहले हैं और कहानीकार बाद में। इनमें भारती का व्यक्तित्त्व सबसे अधिक निर्लेप क्षमतावान और मूल्यपरक है। उनकी कहानियों पर उनका कवि व्यक्तित्त्व कहीं हावी नहीं होता। यथाप्रसंग वह सहायता ही पहुँचाता है। इस संग्रह में संग्रहित 'गुलकी बन्नो' इसका प्रमाण है।

राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, श्रीकांत वर्मा, कृष्ण बलदेव वैद, राजकमल चौधरी आदि तनावों के ही कहानीकार हैं। ये तनाव,

पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, प्रेमी-प्रेमिका सभी में दिखाई पड़ेंगे। व्यक्ति और समाज के बीच गहरी खाई पैदा हो गई है। तनावों के बीच रहने वाले व्यक्ति अपने को अकेले, अजनबी और संत्रस्त पा रहे हैं। यह इस देश के बुद्धिजीवियों की ही स्थिति नहीं है। अन्य देशों के लोग भी इल स्थिति का और भी तीखेपन के साथ अनुभव कर रहे हैं। सारा जीवन इतना जटिल और यांत्रिक हो गया है कि मनुष्य यंत्रगतिक हो चला है। उसकी अपनी पहचान (आडेंटिटी) गुम हो गई है। स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई है कि उसके लियें जिंदगी का अर्थ है कि वह अर्थहीन है। एक और पीढ़ी। यानि ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, विजयमोहन सिंह, रवीन्द्र कालिया, महेन्द्र भल्ला आदि की कृतियाँ इनकी कहानियों में आधुनिकता का वह रूप है, जो ऊब, घुटन, व्यर्थता आदि को अभिव्यक्त करता है। ये कहानीकार प्रायः त्रसद मानवीय स्थितियों से उबर नहीं पाते। इन कहानीकारों में ज्ञानरंजन की दृष्टि सर्वाधिक संतुलित, गैर रोमानी और नए उन्मेषों को पकड़ पाने में समर्थ है। अगले दौर के कहानीकारों की सूची लंबी है-काशीनाथ सिंह, इब्राहिम शरीफ, इजराइल, विश्वेशवर, सुधा अरोड़ा आदि। काशीनाथ सिंह और इब्राहिम शरीफ आधुनिकता से अलग हट कर जीवन की विसंगतियों में ही सही रास्ते की तलाश की कोशिश की है। अर्थहीन जीवन को अर्थ देने की यह प्रक्रिया स्वस्थ प्रवृति की सूचक है।

उपन्यास

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1880-1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्रचित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे। बाद में उनकी रुझान समाजवाद की ओर भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर

उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली में, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फरांसीसी ढंग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शेली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलाने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर–एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यासकला में दिखाई। इस शैली में लिखने वाली बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथाप्रयोग है, जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (1895–1963), रांगेय राघव (1922–1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरु होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात् पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाजसुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाज सुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यासलेखक थे। जिन्होंने विशुद्ध उपन्यासलेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम ईशांकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्र में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी

जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यासलेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्त्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासलेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यासपरंपरा को विकसित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती है।

नाटक

हिंदी में नाटकों का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। उस काल के भारतेन्दु तथा उनके समकालीन नाटककारों ने लोक चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना की इसलिए उस समय की सामाजिक समस्याओं को नाटकों में अभिव्यक्त होने का अच्छा अवसर मिला।

जैसाकि कहा जा चुका है, हिन्दी में अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच के निर्माण का श्रीगणेश आगाहसन 'अमानत' लखनवी के 'इंदर सभा' नामक गीति-रूपक से माना जा सकता है। पर सच तो यह है कि 'इंदर सभा' की वास्तव में रंगमंचीय कृति नहीं थी। इसमें शामियाने के नीचे खुला स्टेज रहता था। नौटंकी की तरह तीन ओर दर्शक बैठते थे, एक ओर तख्त पर राजा इंदर का

आसन लगा दिया जाता था, साथ में परियों के लिए कुर्सियाँ रखी जाती थीं। साजिंदों के पीछे एक लाल रंग का पर्दा लटका दिया जाता था। इसी के पीछे से पात्रों का प्रवेश कराया जाता था। राजा इंदर, परियाँ आदि पात्र एक बार आकर वहीं उपस्थित रहते थे। वे अपने संवाद बोलकर वापस नहीं जाते थे।

उस समय नाट्यारंगन इतना लोकप्रिय हुआ कि अमानत की 'इंदर सभा' के अनुकरण पर कई सभाएँ रची गई, जैसे 'मदारीलाल की इंदर सभा', 'दर्याई इंदर सभा', 'हवाई इंदर सभा' आदि। पारसी नाटक मंडलियों ने भी इन सभाओं और मजलिसेपरिस्तान को अपनाया। ये रचनाएँ नाटक नहीं थी और न ही इनसे हिन्दी का रंगमंच निर्मित हुआ। इसी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इनको 'नाटकाभास' कहते थे। उन्होंने इनकी पैरोडी के रूप में 'बंदर सभा' लिखी थी।

हिन्दी रंगमंच और भारतेन्दु हरिश्चंद्र

इस प्रकार भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी रंगमंच और नाट्य-रचना के व्यावसायिक तथा अव्यावसायिक साहित्यिक प्रयास तो हुए पर हिन्दी का वास्तविक और स्थायी रंगमंच निर्मित और विकसित नहीं हो पाया था। सन् 1850 ई. से सन् 1868 ई. तक हिन्दी रंगमंच का उदय और प्रचार-प्रसार तो हुआ पर उसका सुरुचिपूर्ण विकास और स्थायी निर्माण नहीं हो सका था। पारसी नाटक मंडलियों के अतिरिक्त कुछ और भी छुटपुट व्यावसायिक मंडलियाँ विभिन्न स्थानों पर निर्मित हुई पर साहित्यिक सुरुचि सम्पन्नता का उनमें भी अभाव ही रहा।

व्यावसायिक मंडलियों के प्रयत्न में हिन्दी रंगमंच की जो रूपरेखा बनी थी, प्रचार और प्रसार का जो काम हुआ था तथा इनके कारण जो कुछ अच्छे नाटककार हिन्दी को मिले थे-उस अवसर और परिस्थिति का लाभ नहीं उठाया जा सका था।

भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुंदर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे, किंतु नियमित रूप से खड़ी बोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। भारतेन्दु के पूर्ववर्ती नाटककारों में रीवा नरेश विश्वनाथ सिंह (1846-1911) के बृजभाषा में लिखे गए नाटक 'आनंद रघुनंदन' और गोपालचंद्र के 'नहुष' (1841) को अनेक विद्वान हिंदी का प्रथम नाटक मानते हैं। यहाँ यह जानना रोचक हो सकता है कि गोपालचंद्र, भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पिता थे।

हिन्दी के विशुद्ध साहित्यिक रंगमंच और नाट्य-सृजन की परम्परा की दृष्टि से सन् 1868 ई. का बड़ा महत्त्व है। भारतेन्दु के नाटक-लेखन और मंचीकरण का श्रीगणेश इसी वर्ष हुआ। इसके पूर्व न तो पात्रों के प्रवेश-गमन, दृश्य-योजना आदि से युक्त कोई वास्तविक नाटक हिन्दी में रचा गया था। भारतेन्दु के पिता गोपालचन्दर चित 'नहुष' तथा महाराज विश्वनाथ सिंह रचित 'आनंदरघुनंदन' भी पूर्ण नाटक नहीं थे, न पर्दों और दृश्यों आदि की योजना वाला विकसित रंगमंच ही निर्मित हुआ थाय नाट्यारंगन के अधिकतर प्रयास भी अभी तक मुंबई आदि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही हुए थे और भाषा का स्वरूप भी हिन्दी-उर्दू का मिश्रित खिचड़ी रूप ही था।

3 अप्रैल सन् 1868 को पं. शीतलाप्रसाद त्रिपाठी रचित 'जानकी मंगल' नाटक का अभिनय 'बनारस थियेटर' में आयोजित किया था। कहते हैं कि जिस लड़के को लक्ष्मण का अभिनय पार्ट करना था वह अचानक उस दिन बीमार पड़ गया। लक्ष्मण के अभिनय की समस्या उपस्थित हो गई और उस दिन युवक भारतेन्दु स्थिति को न सँभालते तो नाट्यायोजन स्थगित करना पड़ता। भारतेन्दु ने एक-डेढ़ घंटे में ही न केवल लक्ष्मण की अपनी भूमिका याद कर ली, अपितु पूरे 'जानकी मंगल' नाटक को ही मस्तिष्क में जमा लिया। भारतेन्दु ने अपने अभिजात्य की परवाह नहीं की।

उन दिनों उच्च कुल के लोग अभिनय करना अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं समझते थे। इस प्रकार इस नाटक से भारतेन्दु ने रंगमंच पर सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया। इसी समय-उन्होंने नाट्य-सृजन भी आरम्भ किया।

भारतेन्दु ने सन् 1868 ई. से सन् 1885 ई. तक अपने स्वल्प और अत्यन्त व्यस्त जीवन से शेष 17 वर्षों में अनेक नाटकों का सृजन किया, अनेक नाटकों में स्वयं अभिनय किया, अनेक रंगशालाएँ निर्मित कराईं और हिन्दी रंगमंच के स्थापन का स्तुत्य प्रयास किया। यही नहीं, भारतेन्दु के अनेक लेखकों और रंगकर्मियों को नाट्य-सृजन और अभिनय के लिए प्रेरित किया। भारतेन्दु के सदुद्योग एवं प्रेरणा से काशी, प्रयाग, कानपुर आदि कई स्थानों पर हिन्दी का अव्यावसायिक साहित्यिक रंगमंच स्थापित हुआ।

भारतेन्दु के ही जीवन काल में ये कुछ रंग-संस्थाएँ स्थापित हो चुकी थीं-

(1) काशी में भारतेन्दु के संरक्षण में नेशनल थियेटर की स्थापना हुई। भारतेन्दु अपना 'अंधेर नगरी' प्रहसन इसी थियेटर के लिए एक ही रात में लिखा था,

(2) प्रयाग में 'आर्य नाट्यसभा' स्थापित हुई जिसमें लाला श्रीनिवासदास का 'रंगधीर प्रेममोहिनी' प्रथम बार अभिनीत हुआ था,

(3) कानपुर में भारतेन्दु के सहयोगी पं. प्रतापनारायण मिश्र ने हिन्दी रंगमंच का नेतृत्व किया और भारतेन्दु के 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत-दुर्दशा', 'अंधेर नगरी' आदि नाटकों का अभिनय कराया।

इनके अतिरिक्त बलिया, डुमराँव, लखनऊ आदि उत्तर प्रदेश के कई स्थानों और बिहार प्रदेश में भी हिन्दी रंगमंच और नाट्य-सृजन की दृढ़ परम्परा का निर्माण हुआ।

प्रेरणा-स्रोत

भारतेन्दु और उनके सहयोगी लेखकों ने नाट्य-सृजन की प्रेरणा कहाँ-कहाँ से प्राप्त की, यह प्रश्न पर्याप्त महत्त्व का है। इस प्रश्न का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि हिन्दी में नाट्य-रचना का सूत्रपात भारतेन्दु की ही नव-प्रवर्तनकारी प्रतिभा से हुआ। यद्यपि भारतेन्दु से पूर्व नाट्य-शैली में कुछ सृजन-प्रयास हुए थे, पर नाटक के वास्तविक रूप का उद्‌भव सर्वप्रथम भारतेन्दु की ही लेखिनी से हुआ। अस्तु, जब हिन्दी में इस साहित्यि-विधा का अभाव था, तो भारतेन्दु ने नाट्य-सृजन की प्रेरणा कहाँ से ली?

साहित्यिक प्रेरणा

साहित्यिक प्रेरणा की खोज की जाय तो कहा जा सकता है कि भारतेन्दु ने संस्कृत तथा प्राकृत की पूर्ववर्ती भारतीय नाट्य-परम्परा और बँगला की समसामयिक नाट्यधारा के साथ अंग्रेजी प्रभाव-धारा से प्रेरणा ली। यद्यपि हमारे यहाँ भास, कालीदास, भवभूति, शूद्रक आदि पूर्ववर्ती संस्कृत नाटककारों की समृद्ध नाट्य-परम्परा विद्यमान थी, पर यह खेद की बात है कि भारतेन्दु बाबू ने उस समृद्ध संस्कृत नाट्य-परम्परा को अपने सम्मुख रखा। प्राकृत-अपभ्रंश काल में अर्थात् ईसा की 9वीं-10 वीं शताब्दी के बाद संस्कृत नाटक ह्रासोन्मुख हो गया था। प्राकृत और अपभ्रंश में भी नाट्य-सृजन वैसा उत्कृष्ट नहीं हुआ जैसा पूर्ववर्ती संस्कृत-नाट्य-साहित्य था। अतः भारतेन्दु के सामने संस्कृत-प्राकृत की यह पूर्ववर्ती ह्रासगामी परम्परा रही। संस्कृत के मुरारि, राजशेखर, जयदेव आदि

की क्रमशः 'अनर्घराघव', 'बालरामायण', 'प्रसन्नराघव' आदि रचनाएँ ही भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी लेखकों का आदर्श बनीं। इनमें न कथ्य- या विषय-वस्तु का वह गाम्भीर्य था, जो कालिदास आदि की अमर कृतियों में था, न उन जैसी शैली-शिल्प की श्रेष्ठता थी। यही कारण है कि भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी नाटक सर्वथा निष्प्राण रहा और यद्यपि भारतेन्दु ने उसमें सामयिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झलक पैदा कर नवोन्मेष और किंचित् सप्राणता का प्रयास किया, पर उनके प्रयत्नों के बावजूद भारतेन्दुकालीन हिन्दी नाटक कथ्य और शिल्प दोनों की ही दृष्टि से शैशव काल में ही पड़ा रहा, विशेष उत्कर्ष को प्राप्त नहीं हुआ।

भारतेन्दु के पश्चात

इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सत्यप्रयत्नों से हिन्दी के साहित्यिक रंगकर्म और नाट्य-लेखन की दृढ़ परम्परा चली। पर सन् 1885 ई. में भारतेन्दु के निधन के पश्चात् वह उत्साह कुछ मन्द पड़ गया। 19 वीं शती के अन्तिम दशक में फिर कुछ छुटपुट प्रयास हुए। कई नाटक मंडलियों की स्थापना हुई, जैसे प्रयाग की 'श्रीरामलीला नाटक मंडली' तथा 'हिन्दी नाट्य समिति', भारतेन्दु जी के भतीजों- श्रीकृष्णचन्द्र और श्री ब्रजचन्द्र-द्वारा काशी में स्थापित 'श्री भारतेन्दु नाटक मंडली' तथा 'काशी नागरी नाटक मंडली।' इन नाटक मंडलियों के प्रयत्न से उस समय 'महाराणा प्रताप', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'महाभारत', 'सुभद्राहरण', 'भीष्मपितामह', 'बिल्व मंगल', 'संसार स्वप्न', 'कलियुग' आदि अनेक नाटकों का अभिनय हुआ।

पर ये प्रयास भी बहुत दिन नहीं चल सके। धनाभाव तथा सरकारी और गैर-सरकारी प्रोत्साहन के अभाव में साहित्यिक रंगमंच की स्थापना के प्रयत्न कालान्तर में सब सो गए। इन छुटपुट प्रयासों के अन्तर्गत तत्कालीन साहित्यिक नाटकों का अभिनय हुआ और हिन्दी में कुछ अच्छे रंगमंचानुकूल साहित्यिक नाटकों की रचना हुई। पारसी नाटक कंपनियों के दुष्प्रभाव का तो यह प्रयास अच्छा जवाब था, किन्तु यह प्रयास था बहुत ही स्वल्प। दूसरे, इस साहित्यिक रंगान्दोलन से भी हिन्दी का रंगमंच विशेष विकसित नहीं हुआ, क्योंकि यह रंगमंच पारसी रंगमंच से विशेष भिन्न और विकसित नहीं था- वही पर्दों की योजना, वैसा ही दृश्य-विधान और संगी आदि का प्रबंध रहता था। वैज्ञानिक साधनों से सम्पन्न घूमने वाले रंगमंच का विकास 19वीं शती में नहीं हो सका था। ध्वनि-यन्त्र आदि की स्थापना के प्रयास भी हिन्दी रंगमंच के विकास की दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण

योग नहीं दे पाए। हाँ, इनका यही लाभ हुआ की पारसी नाटक कम्पनियों के भ्रष्ट प्रचार को कुछ धक्का लगा तथा कुछ रंगमंचीय हिन्दी नाटक प्रकाश में आए।

बीसवीं शताब्दी

20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में सिनेमा के आगमन ने पारसी रंगमंच को सर्वथा समाप्त कर दिया। पर अव्यावसायिक रंगमंच इधर-उधर नए रूपों में जीवित रहा। अब हिन्दी का रंगमंच केवल स्कूलों और कॉलेजों में ही है। यह रंगमंच बड़े नाटकों की अपेक्षा एकांकियों को अधिक अपनाकर चला। इसके दो मुख्य कारण हैं- एक तो आज का दर्शक कम-से-कम समय में अपने मनोरंजन की पूर्ति करना चाहता है, दूसरे, आयोजकों के लिए भी बड़े नाटक का प्रदर्शन यहां बहुत कठिनाई उत्पन्न करता है वहाँ एकांकी का प्रदर्शन सरल है-रंगमंच, दृश्य-विधान आदि एकांकी में सरल होते हैं, पात्र भी बहुत कम रहते हैं। अतः सभी शिक्षालयों, सांस्कृतिक आयोजनों आदि में आजकल एकांकियों का ही प्रदर्शन होता है। डॉ. राम कुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्द दास, जगदीशचन्द्र माथुर आदि हमारे अनेक नाटककारों ने सुन्दर अभिनय-उपयोगी एकांकी नाटकों तथा दीर्घ नाटकों की रचना की है।

प्रसाद जी ने उच्चकोटि के साहित्यिक नाटक रचकर हिन्दी नाटक साहित्य को समृद्ध किया था, पर अनेक नाटक रंगमंच पर कुछ कठिनाई उत्पन्न करते थे। फिर भी कुछ काट-छाँट के साथ प्रसाद जी के प्रायः सभी नाटकों का अभिनय हिन्दी के अव्यावसायिक रंगमंच पर हुआ। जार्ज बर्नार्ड शॉ, इब्सन आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से उपर्युक्त प्रसादोत्तर आधुनिक नाटककारों ने कुछ बहुत सुन्दर रंगमंचीय नाटकों की सृष्टि की। इन नाटककारों के अनेक पूरे नाटक भी रंगमंचों से प्रदर्शित हुए।

स्वतंत्रता के पश्चात

स्वतंत्रता के पाश्चात् हिन्दी रंगमंच के स्थायी निर्माण की दिशा में अनेक सरकारी-गैर-सरकारी प्रयत्न हुए हैं। सरकार की ओर से भी कई गैर-सरकारी संस्थाओं को रंगमंच की स्थापना के लिए आर्थिक सहायता मिली है। पुरुषों के साथ अब स्त्रियाँ भी अभिनय में भाग लेने लगी है। स्कूलों-कॉलेजों में कुछ अच्छे नाटकों का अब अच्छा प्रदर्शन होने लगा है।

अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से संबद्ध कुछ अच्छे स्थायी रंगमंच बने हैं, जैसे थिएटर सेंटर के तत्त्वावधान में दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, इलाहाबाद, हैदराबाद, बंगलौर, शान्तिनिकेतन आदि स्थानों पर स्थायी रंगमंच स्थापित हैं। केन्द्रीय सरकार भी इस ओर पर्याप्त ध्यान दे रही है। पर इन सर्वभाषायी रंगमंचों पर हिन्दी भिखारिणी-सी ही प्रतीत होती है।

केन्द्रीय सरकार ने संगीत नाटक अकादमी की स्थापना की है, जिसमें अच्छे नाटककारों और कलाकारों को प्रोत्साहन दिया जाता है।

व्यावसायिक रंगमंच के निर्माण के भी पिछले दिनों कुछ प्रयत्न हुए हैं। प्रसिद्ध कलाकार स्वर्गीय पृथ्वीराज कपूर ने कुछ वर्ष हुए पृथ्वी थियेटर की स्थापना की थी। उन्होंने कई नाटक प्रस्तुत किए हैं, जैसे 'दीवार', 'गद्दार', 'पठान', 'कलाकार', 'आहूति' आदि। धन की हानि उठाकर भी कुछ वर्ष इस कम्पनी ने उत्साहपूर्वक अच्छा कार्य किया। पर इतने प्रयास पर भी बंबई, दिल्ली या किसी जगह हिन्दी का स्थायी व्यावसायिक रंगमंच नहीं बन सका है। इस मार्ग में कठिनाइयाँ हैं।

संस्मरण

संस्मरण साहित्य की एक विधा है। स्मृति के आधार पर किसी विषय पर अथवा किसी व्यक्ति पर लिखित आलेख 'संस्मरण' कहलाता है। संस्मरण को साहित्यिक निबन्ध की एक प्रवृत्ति भी माना जा सकता है। ऐसी रचनाओं को संस्मरणात्मक निबंध कहा जा सकता है। जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी घट जाती हैं जिनके साथ हम जुड से जाते हैं। उन्हें याद करना तथा ऐसे संस्मरण सुनना-सुनाना अपने आप में आंनद का स्रोत है। आत्मकथाएँ संस्मरणों का विस्तृत रूपाकार ही हैं। आत्मकथाओं के जरिये हमें इस संसार के महान, सफलतम लोगों के जीवन के सकारात्मक - नकारात्मक खासो - आम घटनाक्रम के भीतर झांकने का अवसर मिलता है। यात्रा साहित्य भी इसके अन्तर्गत आता है।

संस्मरण और आत्मचरित

व्यापक रूप से संस्मरण आत्मचरित के अन्तर्गत लिया जा सकता है। किन्तु संस्मरण और आत्मचरित के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर है। आत्मचरित के लेखक का मुख्य उद्देश्य अपनी जीवनकथा का वर्णन करना होता है। इसमें कथा का प्रमुख पात्र स्वयं लेखक होता है। संस्मरण लेखक का दृष्टिकोण भिन्न रहता

है। संस्मरण में लेखक जो कुछ स्वयं देखता है और स्वयं अनुभव करता है उसी का चित्रण करता है। लेखक की स्वयं की अनुभूतियाँ तथा संवेदनाएँ संस्मरण में अन्तर्निहित रहती हैं। इस दृष्टि से संस्मरण का लेखक निबन्धकार के अधिक निकट है। वह अपने चारों ओर के जीवन का वर्णन करता है। इतिहासकार के समान वह केवल यथातथ्य विवरण प्रस्तुत नहीं करता है। पाश्चात्य साहित्य में साहित्यकारों के अतिरिक्त अनेक राजनेताओं तथा सेनानायकों ने भी अपने संस्मरण लिखे हैं, जिनके साहित्यिक महत्त्व को स्वीकारा गया है।

इतिहास

संस्मरणों को साहित्यिक रूप में लिखे जाने का प्रचलन आधुनिक काल में पाश्चात्य प्रभाव के कारण हुआ लेकिन हिन्दी साहित्य में संस्मरणात्मक आलेखों की गद्य विधा का पर्याप्त विकास हुआ है। संस्मरण लेखन के क्षेत्र में अत्यन्त प्रौढ तथा श्रेष्ठ रचनायें हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हैं।

श्रेष्ठ कृतियाँ

हिन्दी के प्रारंभिक संस्मरण लेखकों में बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा तथा रामवृक्ष बेनीपुरी आदि हैं। चतुर्वेदी ने 'संस्मरण' तथा 'हमारे अपराध' शीर्षक कृतियों में अपने विविध संस्मरण आकर्षक शैली में लिखे हैं। हिन्दी के अनेक अन्य लेखकों तथा लेखिकाओं ने भी बहुत अच्छे संस्मरण लिखे हैं। उनमें से कुछ साहित्यकारों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। श्रीमती महादेवी वर्मा की 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'अतीत के चलचित्र' संस्मरण साहित्य की श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। रामबृक्ष बेनीपुरी की कृति 'माटी की मूरतें' में जीवन में अनायास मिलने वाले सामान्य व्यक्तियों का सजीव एवं संवेदनात्मक कोमल चित्रण किया गया है। इनके अतिरिक्त कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने 'भूले हुए चेहरे' तथा 'दीपजले शंख बजे' में अपने कतिपय अच्छे और आकर्षक संस्मरण संकलित किये। गुलाबराय की कृति 'मेरी असफलताएँ' को संस्मरणात्मक निबन्ध की कोटि में रखा जा सकता है।

साक्षात्कार

भेंटवार्ता यानी साक्षात्कार समाचार संकलन का एक प्रभावी तरीका है इसका उपयोग विशिष्ट प्रकार के समाचारों के लिए विशेष रूप में प्रयोग किया

जाता है समाचार संकलन में यदि भेंटवार्ता के महत्त्व को नकारा दिया जाए तो समाचार पत्रों में घटनाओं कार्यक्रमों आदि का विवरण तथ्यों की गहराई से छानबीन से दूर ही रहे होगा ऊपरी तौर पर जो देखने या सुनने को आएगा। उसके प्रस्तुतीकरण से पाठकों की जिज्ञासा शांत नहीं हो सकती तथ्यों की तरह में पहुंचने के लिए भेंटवार्ता आवश्यक है इसकी विशेषता के कारण ही साक्षात्कार पत्रकारिता का अधिकतम एवं अंश भी कहा जाता है कोई भी व्यक्ति ऐसी सूचना या जानकारी सकता है, लेकिन को क्या जानकारी दी जाए इस तरह की जानकारी दी जाए सकता है इसके लिए जरूरी है कि फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर बड़ी-बड़ी योजनाओं में काम करने वाले इंजीनियर वैज्ञानिक आदि सभी के पास कुछ ना कुछ ऐसी जानकारी होती है सकती है और जिसे प्राप्त कर सकता है साक्षात्कार के प्रकार आम व्यक्ति से साक्षात्कार चुनाव से संबंधित हत्या से संबंधित इत्यादि हो सकते हैं इसमें पड़ोस के व्यक्तियों या घटना स्थल पर उपस्थित लोगों से बातचीत की जाती है इस तरह के साक्षात्कार लेना काफी मुश्किल भी होता है, क्योंकि किसी व्यक्ति से घटना के बारे में पूछताछ करने पर उसे संदेह में भी डाल सकता है आ सकता है यह कार्य रिपोर्टर का ही है कि वह उन व्यक्तियों का विश्वास जीतें इस तरह के साक्षात्कार का कोई मार्ग नहीं होता है परेशानियाँ उठानी पड़ती है असम बंध और बातें सुननी पड़ती है और यह सब रिपोर्टरों को सुनना और सहना पड़ता है ताकि उसके उद्देश्य की पूर्ति हो सके आकाश मिक साक्षात्कार इसे अंग्रेजी में कैजुअल इंटरव्यू भी कहते हैं और यह ज्यादातर अचानक होते हैं सामान्यत: यह पूर्व उद्देश्य विभिन्न होते हैं एक संवाददाता और समाचार स्त्रोत रास्ते में मिलकर बातें करते हैं और वह समाचार के रूप में या छात्र के रूप में प्रकाशित किए जाते हैं संवाददाता और समाचार स्त्रोत कभी-कभी भोजन अथवा पार्टी के दौरान आकस्मिक रूप से बातों का मीनिंग करते हैं इस तरह की बातों में बिना किसी तैयारियाँ दृष्टिकोण के ही बातचीत होती हैं इसी वार्ता से कभी-कभी एक काफी बड़ी स्टोरी मिल जाती है व्यक्तित्त्व साक्षात्कार लोगों के बारे में लंबे विवरण फीचर लेखन के लिए इस तरह के साक्षात्कार किए जाते हैं अखबारों में तो इस तरह के साक्षात्कार छपते हैं मगर ज्यादातर यह नजर आते हैं उदाहरण के तौर पर हम फिल्म नागिन में अभिनेताओं के साक्षात्कार पाते हैं इस तरह के साक्षात्कार में अपने स्रोत से काफी गहराई भरे सवाल पूछता है और यह सवाल उसके निजी जिंदगी के बारे में अथवा किसी विषय के बारे में होता है कभी अखबार एक निश्चित स्थान पर साक्षात्कार

को जगह देते हैं उदाहरण के तौर पर टाइम्स ऑफ इंडिया में ज्यादातर एडिटोरियल पेज पर नजर आते हैं उसी तरह दैनिक जागरण में भी एडिटोरियल पेज पर नजर आते हैं साक्षात्कार पूरी स्टोरी का एक हिस्सा भी होता है, जो ब्लॉक में दिया जाता है यह काफी कम समय में आयोजित किया जाता है और इस तरह के साक्षात्कार का उद्देश्य संवादाता संवादाता द्वारा समाचार से ही संबंधित किन ही महत्वपूर्ण निर्धारित प्रश्नों का उत्तर पाना होता है इस तरह के साक्षात्कार से संवाददाता न्यू स्टोरी के बारे में ज्यादा जानकारियां प्राप्त करते हैं और उसे अपनी स्टोरी में कोटेशन के रूप में भी इस्तेमाल करते हैं टेलीफोन अथवा ई-मेल द्वारा साक्षात्कार कभी-कभी साक्षात्कार दाता इसी दूर जगह पर स्थित होता है अथवा उसके पास समय नहीं होता है ऐसे में संवाददाता प्रश्नों की सूची बनाकर साक्षात्कार दाता को ईमेल द्वारा भेजता है या टेलीफोन से पूछता है ऐसे में प्रश्नों का स्पष्ट होना बहुत जरूरी है इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में साक्षात्कार थोड़ी अलग होती है। इसमें साक्षात्कार दाता के सामने कैमरा होता है, समय की भी सीमा होती है सवाल के जवाब को छेड़छाड़ करने की गुंजाइश कम होती है ऐसे में संवाददाता को साक्षात्कार से पूर्व साक्षात्कारदाता से वार्तालाप कर उसके कैमरे के सामने आने वाले डर को कम करना होता है किसी भी प्रश्न का जवाब आता है टीवी और रेडियो के संवादाता इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की तकनीक से परिचित होना पड़ता है इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से एक विशेष महत्व है इसका उपयोग होता है जैसे आप की अदालत कार्यक्रम रूबरू कार्यक्रम में विशिष्ट व्यक्तियों से सवाल जवाब होते हैं डॉक्टर वकील विशेषज्ञ स्वास्थ्य संबंधी और कानून संबंधी पर कार्यक्रम चलाए जाते हैं फीचर में भी विषय से संबंधित व्यक्तियों की प्रतिक्रियाएं सूत्रधार यानी एंकर की टिप्पणी के साथ पिरोए जाते हैं समाचारों का ब्यौरा बताते समय घटनास्थल के दृश्यों के साथ संबंधित व्यक्तियों की राय और प्रतिक्रिया प्रदर्शित की जाती है जहां संवाददाता और कैमरामैन नहीं हो वहां से संबंधित व्यक्तियों की ध्वनि रिकॉर्डिंग प्रस्तुत की जाती है, जिससे समाचार की प्रस्तुति की जाती है स्थापित प्रभावोत्पादक संबंधित व्यक्तियों की बातचीत करती है तो उसके हावभाव और बोलने की शैली भी बहुत कुछ कह जाती है और मुद्रित माध्यम वंचित रह जाती है दृश्य श्रव्य माध्यम के कारण अधिक जीवंत और प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो रहा है साक्षात्कार के दौरान ध्यान देने वाली बातें बिना तैयारी के साक्षात्कार लेने नहीं जाना चाहिए साक्षात्कार दाता तथा उसके व्यवसाय की पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी अधिक से अधिक प्राप्त करने से

पहले अपना परिचय देना चाहिए उसे अपना नाम समाचार पत्र का नाम बता देना चाहिए कार में सीधे और आसान प्रश्न पूछे जाने चाहिए और कठिन प्रश्नों को बाद में पूछना चाहिए टेलीविजन में कम समय होता है इसलिए रिपोर्ट जल्द ही भारी प्रश्नों का कर देता है रिपोर्टर को चाहिए कि वह अधिकारी से ही साक्षात्कार ले और इसका पता होना चाहिए संवाददाता को अपने उपकरण हमेशा साथ ले जाना चाहिए और मुख्य बातों को अपने नोटपैड समाप्त हो जाने पर कि किसी प्रश्न का जवाब कम तो नहीं पड़ गया है और यदि पड़ गया तो साक्षात्कार दाता से उसे दिलवाने का प्रयास करना चाहिए।

व्यंग्य

व्यंग्य का जन्म अपने समय की विद्रूपताओं के भीतर से उपजे असंतोष से होता है। विद्वानों में इस बात पर मतभेद लगातार बना रहा है कि व्यंग्य को एक अलग विधा माना जाए या कि वह किसी भी विधा के भीतर 'स्पिरिट' के रूप में मौजूद रहे। दरअसल व्यंग्य एक माध्यम है जिसके द्वारा व्यंग्यकार जीवन की विसंगतियों, खोखलेपन और पाखंड को दुनिया के सामने उजागर करता है। जिनसे हम सब परिचित तो होते हैं, किंतु उन स्थितियों को दूर करने, बदलने की कोशिश नहीं करते बल्कि बहुधा उन्हीं विद्रूपताओं-विसंगतियों के बीच जीने की, उनसे समझौता करने की आदत बना लेते हैं। व्यंग्यकार अपनी रचनाओं में ऐसे पात्रों और स्थितियों की योजना करता है, जो इन अवांछित स्थितियों के प्रति पाठकों को सचेत करते हैं। जैसा कि 'व्यंग्य' नाम से ही स्पष्ट है, इस विधा में सामाजिक विसंगतियों का चित्रण सीधे-सीधे (अभिधा में) न होकर परेक्षत: (व्यंजना के माध्यम से) होता है। इसीलिए व्यंग्य में मारक क्षमता अधिक होती है।

आरंभिक युग

हिंदी में संत-साहित्य से व्यंग्य का आरंभ माना जा सकता है। कबीर व्यंग्य के आदि प्रणेता हैं। उन्होंने मध्यकाल की सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रहार किया है। जाति-भेद, हिंदू-मुस्लमानों के धर्माडंबर, गरीबी-अमीरी, रूढ़िवादिता आदि पर कबीर के व्यंग्य बड़े मारक हैं।

'जो तू बामन-बमनी जाया। आन द्वार काहे नहिं आया'।,

'क्या तेरा साहिब बहरा है',

'कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय। ता चढ़ि मुल्ला बांगि दे क्या बहरा हुआ खुदाय'

आदि अनेक उद्धरण कबीर की व्यंग्य-क्षमता के प्रमाण हैं। लेकिन उत्तर-मध्यकालीन सामंती समाज कबीर आदि संतों के समाज-बोध को समझ पाने में असफल रहा और पूरे रीतिकाल में व्यंग्य रचनाओं की उपस्थिति नगण्य रही। कबीर के बाद भारतेंदु ने सामाजिक विषमताओं के प्रति व्यंग्य को हथियार बनाया। अंग्रेजों के खिलाफ लिखते हुए वे कहते हैं, ''होय मनुष्य क्यों भये, हम गुलाम वे भूप।'' इस पंक्ति में औपनिवेशिक भारत की मूल समस्या हमें दिखाई देती है। पराधीन भारत की समस्याएँ वर्तमान भारत से अलग थीं। 'अंधेर नगरी' और 'मुकरियों' में गुलाम भारत की विडंबनापूर्ण परिस्थितियों, अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उनकी शोषक दृष्टि के प्रति आक्रोश को देखा जा सकता है। भारतेंदु-युग के अन्य महत्वपूर्ण व्यंग्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र हैं। किंतु प्रेमघन की कृति 'हास्यबिंदु' और प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों में व्यंग्य सहायक प्रवृत्ति के रूप में मौजूद है। व्यंग्य इनकी रचनाओं में केंद्रीय भूमिका का निर्वहन नहीं करता है। व्यंग्य का पूर्ण उन्मेष इनके बाद के व्यंग्य रचनाकार बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं में दिखाई देता है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' नामक अपनी प्रसिद्ध व्यंग्य लेखमाला में इन्होंने समसामयिक परिस्थितियों पर तीव्र व्यंग्य किए। राजनीति और तत्कालीन शासन-व्यवस्था से टकराव इनकी व्यंग्य रचनाओं की आधार सामग्री का काम करते हैं।

स्वतंत्रता-पूर्व युग

युगीन समस्याओं पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रेमचंद में भी बहुत मिलती है। इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में आम आदमी और कृषक वर्ग की दैनंदिन कठिनाइयों पर करारा व्यंग्य किया है। प्रेमचंद के बाद के रचनाकारों में निराला साहित्य में इसे देखा जा सकता है। इनकी 'कुकुरमुत्ता' आदि रचनाओं में व्यंग्य की अभिव्यक्ति विद्रूपता फैलाने वाले समाज के खिलाफ चुनौती के रूप में हुई है। इनके अलावा स्वतंत्रता-पूर्व के रचनाकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और रांगेय राघव का नाम भी लिया जा सकता है, लेकिन इन लेखकों में व्यंग्य की वह धार नहीं है, जो हमें भारतेंदु अथवा बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं में दिखाई देती है।

स्वातंत्र्योत्तर युग

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और देश की आजादी के साथ ही आम आदमी खुशहाली के सपने देखने लगा। लेकिन विपरीत परिस्थितियों और राजनीतिक अदूरदर्शिता के कारण आम आदमी के ये सपने पूरे नहीं हो सके। स्वतंत्रता के बाद भारत में समाज, राजनीति, धर्म, शिक्षा, आदि सभी क्षेत्रों में असंगतियाँ बढ़ी हैं। सामाजिक-नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है। आम आदमी के लिए शांतिपूर्वक जीवन जीने के अवसर कम हुए हैं। सत्य, सदाचरण, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा आदि शाश्वत मूल्यों का स्थान अनेक विसंगतियों ने ले लिया है। आजादी पूर्व देखे गए स्वप्न तो बीसवीं शताब्दी के छठे दशक तक आते-आते ही खण्डित हो गए। गुलाम भारत में होने वाले शोषण-अत्याचार आजादी के बाद कम होने के बजाय और अधिक बढ़ गए। व्यक्ति और समाज की आंतरिक जटिलताओं के साथ-साथ अन्तर्विरोध भी बढ़े हैं। व्यक्ति निजी स्वार्थ तक सीमित होकर रह गया है। ये विसंगतियाँ और जटिलताएँ व्यंग्य के लिए आधारभूमि बनीं। स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का पर्याप्त सृजन हुआ है। निरन्तर बढ़ती सामाजिक विषमताओं से विक्षुब्ध होकर करुणापूर्ण व्यंग्य लेखन की एक लम्बी परम्परा मिलती है। हरिशंकर परसाई इस परम्परा के प्रतिनिधि रचनाकार हैं।

परसाई की रचनाएं 'आजाद भारत का सृजनात्मक इतिहास' कही जा सकती हैं। इन रचनाओं का वर्तमान भारत की यथार्थ स्थितियों के संदर्भ में ही आकलन किया जा सकता है। सामान्य सामाजिक स्थितियों को परसाई ने वैचारिक चिन्तन से पुष्ट करके प्रस्तुत किया है। स्वतंत्र भारत के सकारात्मक-नकारात्मक सभी पहलुओं की परसाई ने बखूबी पड़ताल की है। परसाई की रचनाओं में उस पीड़ित भारत की छटपटाहट को महसूस किया जा सकता है, जो शोषकों के तिलिस्म में कैद है। शोषक इस तिलिस्म को बनाए रखने के लिए तरह-तरह के छद्म करते हैं। इन छद्मों का खुलासा परसाई करते हैं। अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता और सतर्क वैज्ञानिक दृष्टि के कारण परसाई छद्म के उन सभी रूपों को आसानी से पहचान लेते हैं। जिन तक सामान्यत: रूढ़िवादी दृष्टि नहीं पहुँच पाती। परसाई का रचना संसार बहुत व्यापक है। निजी अनुभूतियों की निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति उनके व्यंग्य लेखन की विशिष्टता है। परसाई की सृजनशील दृष्टि निम्नवर्गीय सामान्य आदमी से प्रारम्भ होकर बहुराष्ट्रीय समस्याओं तक को अपने भीतर समेटती है। परसाई व्यंग्य के माध्यम से सृजन और संहार

दोनों एक साथ करते हैं। परसाई का व्यंग्य जब शोषक वर्ग के प्रति होता है तो वह उस वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न करता है, लेकिन जब वही व्यंग्य अभावग्रस्त व्यक्ति पर होता है तो करुणा पैदा करता है।

परसाई के व्यंग्य लेखन की भाषा सप्रयास नहीं है। उनका मानना है कि समाज में रहने के कारण वह हमें अनुभव देता है और विषयानुरूप नई भाषा सिखाता है। यही कारण है कि परसाई की भाषा उनके कथ्य का अनुसरण करती हैं।

शरद जोशी भी परसाई की ही तरह एक अलग भाषाई तेवर के साथ व्यंग्य लेखन करते हैं। शिल्प की सजगता इनके व्यंग्य लेखन की विशेषता है। भाषा में वक्रता के द्वारा ये शब्दों और विशेषणों का विशिष्ट संयोजन करते हैं।

श्रीलाल शुक्लका नाम भी स्वातंत्रयोत्तर व्यंग्य लेखन में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके उपन्यास 'रागदरबारी' ने मोहभंग की स्थितियों के यथार्थ को सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रवींद्रनाथ त्यागीका लेखन आत्म-व्यंग्य के कारण महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनके लेखन को हम हास्य और व्यंग्य का संयोजन कह सकते हैं। यह न सिर्फ पाठक को प्रफुल्लित करता है। बल्कि उसे सोचने के लिए बाध्य भी करता है।

लतीफ घोंघी के व्यंग्य में राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ को विषय बनाया गया है। इनके व्यंग्य में मारकता का अभाव है, किंतु इनका कथ्य बहुत व्यापक है। नारी-शोषण, कालाबाजारी, भुखमरी, शैक्षिक-साहित्यिक दुनिया की गड़बड़ियाँ आदि विषयों के साथ-साथ इन्होंने आम आदमी की दैनिक परेशानियों को अपने व्यंग्यों में स्थान दिया है। भाषा में उर्दू का पुट है।

सामाजिक मूल्यों के विघटन को केंद्र में रखकर समकालीन साहित्यिक परिदृष्य में व्यंग्य का लगातार सृजन हो रहा है। वर्तमान महत्वपूर्ण व्यंग्य लेखकों में नरेन्द्र कोहली, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल, ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक शुक्ल और शंकर पुणतांबेकर, गिरीश पन्कज आदि का नाम लिया जा सकता है। नरेन्द्र कोहली ने अपने व्यंग्यों में नए प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया है। इनके व्यंग्यों का असंगत शिल्प इन्हें अपने समकालीनों में विशिष्ट बनाता है। आज व्यंग्य को सामाजिक सतर्कता के हथियार के रूप में देखा जाता है। नए व्यंग्यकारों में आलोक पुराणिक, सुशील सिद्धार्थ, दीपक श्रीवास्तव, सुभाष चंदर, अरुण अर्णव खरे, पिलकेंद्र अरोडा, रामकिशोर उपाध्याय , डॉ. स्नेहलता पाठक , ब्रजेश कानूनगो, पीयूष पांडे, निर्मल गुप्त, अशोक मिश्र, अलंकार रस्तोगी, केके

अस्थाना, देवेंद्र सिंह सिसोदिया, आरिफा एविस, मलय , शशिकांत सिंह शशि , अशोक गौतम , आदि प्रमुख हैं।

रेखाचित्र

रेखाचित्र कहानी से मिलता-जुलता साहित्य रूप है। यह नाम अंग्रेजी के 'स्केच' शब्द की नाप-तोल पर गढ़ा गया है। स्केच चित्रकला का अंग है। इसमें चित्रकार कुछ इनी-गिनी रेखाओं द्वारा किसी वस्तु-व्यक्ति या दृश्य को अंकित कर देता है-स्केच रेखाओं की बहुलता और रंगों की विविधता में अंकित कोई चित्र नहीं है, न वह एक फोटो ही है, जिसमें नन्हीं से नन्हीं और साधारण से साधारण वस्तु भी खिंच आती है।

साहित्य में रेखाचित्र

साहित्य में जिसे रेखाचित्र कहते हैं, उसमें भी कम से कम शब्दों में कलात्मक ढंग से किसी वस्तु, व्यक्ति या दृश्य का अंकन किया जाता है। इसमें साधन शब्द है, रेखाएँ नहीं। इसीलिए इसे शब्दचित्र भी कहते हैं। कहीं-कहीं इसका अंग्रेजी नाम 'स्केच' भी व्यवहृत होता है।

रेखाचित्र का स्वरूप

रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्म-स्पर्शी, भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है। कहानी से इसका बहुत अधिक साम्य है- दोनों में क्षण, घटना या भाव विशेष पर ध्यान रहता है, दोनों की रूपरेखा संक्षिप्त रहती है और दोनों में कथाकार के नैरेशन और पात्रों के संलाप का प्रसंगानुसार उपयोग किया जाता है। इन विधाओं के साम्य के कारण अनेक कहानियों को भी रेखाचित्र कह दिया जाता है और इसके ठीक विपरीत अनेक रेखाचित्रों को कहानी की संज्ञा प्राप्त हो जाती है। कहीं-कहीं लगता है, कहानी और रेखाचित्र के बीच विभाजन रेखा खींचना सरल नहीं है। उदाहरण के लिए रायकृष्णदास लिखित 'अन्तःपुर का आरम्भ' कहानी है, पर वह आदिम मनुष्य की अन्तःवृत्ति पर आधारित 'रेखाचित्र' भी है। रामवृक्ष बेनीपुरी की पुस्तक 'माटी की मूरतें' में संकलित 'रजिया', 'बलदेव सिंह', 'देव' आदि रेखाचित्र कहानियाँ भी हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा लिखित 'रामा', 'घीसा' आदि रेखाचित्र भी कहानी कह जाते हैं। कहानी और रेखाचित्र में साम्य है अवश्य, पर जैसा कि 'शिप्ले'

के 'विश्व साहित्य कोश' में कहा गया है, रेखाचित्र में कहानी की गहराई का अभाव रहता है। दूसरी बात यह भी है कि कहानी में किसी न किसी मात्र में कथात्मकता अपेक्षित रहती है, पर रेखाचित्र में नहीं।

आत्मकथा और संस्मरण से भिन्न

व्यक्तियों के जीवन पर आधारित रेखाचित्र लिखे जाते हैं, पर रेखाचित्र जीवनचरित नहीं है। जीवनचरित के लिए यथातथ्यता एवं वस्तुनिष्ठता अनिवार्य है। इसमें कल्पना के लिए अवकाश नहीं रहता, लेकिन रेखाचित्र साहित्यिक कृति है- लेखक अपनी भावना एवं कल्पना की तूलिका से ही विभिन्न चित्र अंकित करता है। जीवनचरित में समग्रता का भी आग्रह रहता है, इसमें सामान्य एवं महत्त्वपूर्ण सब प्रकार की घटनाओं के चित्रण का प्रयत्न रहता है, लेकिन रेखा चित्रकार गिनी-चुनी रेखाओं, गिनी-चुनी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का ही उपयोग करता है। इन बातों से यह भी स्पष्ट है कि रेखाचित्र आत्मकथा और संस्मरण से भी भिन्न अस्तित्त्व रखता है।

रेखाचित्र की विशेषता

रेखाचित्र की विशेषता विस्तार में नहीं, तीव्रता में होती है। रेखाचित्र पूर्ण चित्र नहीं है-वह व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि का एक निश्चित विवरण की न्यूनता के साथ-साथ तीव्र संवेदनशीलता वर्तमान रहती है। इसीलिए रेखाचित्रंकन का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है, उस दृष्टिबिन्दु का निर्धारण, जहाँ से लेखक अपने वर्णय विषय का अवलोकन कर उसका अंकन करता है। इस दृष्टि से व्यंग्य चित्र और रेखाचित्र की कलाएँ बहुत समान हैं। दोनों में दृष्टि की सूक्ष्मता तथा कम से कम स्थान में अधिक से अधिक अभिव्यक्त करने की तत्परता परिलक्षित होती है। रेखाचित्र के लिए संकेत सामर्थ्य भी बहुत आवश्यक है- रेखाचित्रकार शब्दों और वाक्यों से परे भी बहुत कुछ कहने की क्षमता रखता है। रेखाचित्र के लिए उपयुक्त विषय का चुनाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसकी विषय वस्तु ऐसी होती है, जिसे विस्तृत वर्णन और रंगों की अपेक्षा न हो और जो कुछ ही रेखाओं के संघात से चमक उठे।

उदाहरण-

चाँदनी रात में 'ताजमहल' की शोभा को रेखाचित्र में बाँधा जा सकता है, पर शाहजहाँ और मुमताज महल की प्रेमकथा को रेखाचित्र की सीमा में बाँध सकना कठिन काम है।

विषय और शैली

रेखाचित्र के लिए विषय का बन्धन नहीं रहता, सब प्रकार के विषयों का इसमें समावेश हो सकता है। मूल चेतना के आधार पर रेखाचित्रों को अनेक वर्गों में रखा जा सकता है–

1. संस्मरणात्मक
2. वर्णनात्मक
3. व्यंग्यात्मक
4. मनोवैज्ञानिक आदि

हिंदी में रेखाचित्र

हिन्दी में अनेक लेखकों ने रेखाचित्र लिखे हैं। इस क्षेत्र के कुछ महत्त्वपूर्ण नाम हैं–

1. बनारसीदास चतुर्वेदी–'रेखाचित्र'
2. महादेवी वर्मा–श्अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ' और 'श्रृंखला की कड़ियाँ'
3. रामवृक्ष बेनीपुरी–श्माटी की मूरतें' तथा 'गेहूँ और गुलाबश
4. प्रकाशचन्द्र गुप्त–श्पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच तथा रेखाचित्रश
5. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'–'भूले हुए चेहरे' आदि।

जीवनी

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ और जीवनी-लेखक टामस कारलाइल ने अत्यंत सीधी सादी और संक्षिप्त परिभाषा में इसे 'एक व्यक्ति का जीवन' कहा है। इस तरह किसी व्यक्ति के जीवन वृत्तांतों को सचेत और कलात्मक ढंग से लिख डालना जीवनचरित कहा जा सकता है। यद्यपि इतिहास कुछ हद तक, कुछ लोगों की राय में, महापुरुषों का जीवनवृत्त है तथापि जीवनचरित उससे एक अर्थ में भिन्न हो जाता है। जीवनचरित में किसी एक व्यक्ति के यथार्थ जीवन के इतिहास का आलेखन होता है, अनेक व्यक्तियों के जीवन का नहीं। फिर भी जीवनचरित का लेखक इतिहासकार और कलाकार के कर्त्तव्य के कुछ समीप आए बिना नहीं रह सकता। जीवनचरितकार एक ओर तो व्यक्ति के जीवन की घटनाओं की यथार्थता इतिहासकार की भाँति स्थापित करता है, दूसरी ओर वह साहित्यकार

की प्रतिभा और रागात्मकता का तथ्य निरूपण में उपयोग करता है। उसकी यह स्थिति संभवत: उसे उपन्यासकार के निकट भी ला देती है।

जीवनचरित की सीमा का यदि विस्तार किया जाय तो उसके अंतर्गत (आत्मकथा) भी आ जायगी। यद्यपि दोनों के लेखक पारस्परिक रुचि और संबद्ध विषय की भिन्नता के कारण घटनाओं के यथार्थ आलेखन में सत्य का निर्वाह समान रूप से नहीं कर पाते। आत्मकथा के लेखक में सतर्कता के बावजूद वह आलोचनात्मक तर्कना चरित्र विश्लेषण और स्पष्टचारिता नहीं आ पाती जो जीवनचरित के लेखक विशिष्टता होती है। इस भिन्नता के लिये किसी को दोषी नहीं माना जा सकता। ऐसा होना पूर्णत: स्वाभाविक है।

इतिहास

जीवनचरित के प्राचीनतम रूपों के उदाहरण किसी भी देश के धार्मिक, पौराणिक आख्यानों और दंतकथाओं में मिल सकते हैं जिनमें मानवीय चरित्रों, उनके मनोविकारों और मनोभावों का रूपायन हुआ हो। अधिकांशत: दैवी और मानवीय चरित्रों में जीवनचरित्र के कुछेक लक्षण मिल जाते हैं जिनका निर्माण उस काल से ही होता चला आ रहा है जब लेखनकला का विकास भी नहीं हुआ था और इस प्रयोजन के निमित्त मिट्टी और श्रीपत्रों का प्रयोग होता था।

मिस्र और पश्चिमी एशिया के देशों में पत्थरों पर, राजाओं की कब्र की रेलिंगों, स्तंभों और दीवारों की चिकनी सतह पर उनके जीवन की विजयादि से संबंधित बातें उत्कीर्ण करने की परंपरा बहुत पहले ही चल पड़ी थी। उनके जीवनकाल में भी प्रशस्तियों के रूप में इस तरह की उत्कीर्णन होते रहते थे। इस तरह की सामग्री को जीवन-चरित का प्राचीन और प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। ऐसे जीवनवृत्तांत इतिहास की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं तथापि कभी कभी इतिहासकार को उनका उपयोग बड़ी सतर्कता से करना पड़ता है।

चीन में ई पू प्रथम शताब्दी के स्सु-मा चिएन ने अपने ऐतिहासिक संस्करणें के एक भाग में समकालीन विशिष्ट व्यक्तियों का जीवनचरित लिखा। बाद में चीनी सम्राट् चिएन के तत्त्वावधान में चीन की वंशावलियों का इतिहास 1747 में 214 खंडों में संगृहीत और प्रकाशित हुआ जिसमें चीन के पाँच काल्पनिक सम्राटों से लेकर स्सु-मा-चिएन के काल तक के सम्राटों का इतिवृत्तात्मक वर्णन हुआ। ज्योतिषियों, राजनीतिज्ञों, राजसभासदों, हत्यारों तक के जीवन भी उक्त ग्रंथों में लिखे गए। प्राय: उसी समय ने विशिष्ट महिलाओं की

जीवनी लिखी। उससे प्रकट है कि ईसा के पूर्व भी चीनी साहित्य में जीवनचरित का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।

यूनानी जीवनीकारों में प्लूतार्क विशेष महत्व का है। उसकी कृति में यूनान, रोम और फारस के 46 विशिष्ट और यशस्वी व्यक्तियों के जीवन वृत्तांतों का वर्णन हुआ है। प्लूतार्क से भी चार शताब्दियों पूर्व एक महत्त्वपूर्ण जीवनी 'अनाबासिस सुकरात' के शिष्य जनोफोन ने लिखी। बाद के प्रसिद्ध यूनानी जीवनीकारों में फ्लावियस फिलोस्त्रतस और दियोजिकी लेइर्तियस के नाम उल्लेखनीय हैं।

लातीनी साहित्य में पहली सदी ईसा पूर्व का जीवनी-लेखक कार्नेलियस नेपोस विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने कातो और उसके मित्र सिसरो के चरित लिखे। कार्नेलियस के अन्य जीवन चरित विशिष्ट सेनानायकों से संबंधित हैं।

अंग्रेजी साहित्य में 17वीं सदी के पूर्व का जीवनी साहित्य एक तरह से बहुत संक्षिप्त है। एलिजाबेथ के समकालीन विशिष्ट व्यक्तियों की, यहाँ तक कि शेक्सपीयर आदि की भी, जीवनी के अभाव में साहित्यकारों और इतिहासकारों को शु डिग्री में अनेक अड़चनों का सामना करना पड़ा था। बाद में उस दिशा में अनेक प्रयत्न हुए। 18वीं सदी तक आते आते इसका काफी विकसित रूप जेम्स बासवेल द्वारा लिखित सेम्युअल जान्सन की जीवनी में देखने को मिलता है। 1791 ईदृ में इस जीवनी का प्रकाशन अंग्रेजी जीवनी-साहित्य में एक महत्वपूर्ण घटना है। यह ग्रंथ जीवनी-लेखकों के लिये एक निश्चित शैली और स्वरूप का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करता है।

इसी तरह अमेरीका, फ्रांस, स्पेन तथा यूरोपीय महाद्वीप के अन्य देशों के साहित्य में जीवनी-लेखक की जीवित परंपरा देखी जा सकती है। यह साहित्य जीवनचरित के रूप में और आत्मकथा के रूप में रचा गया है।

भारत में जीवनचरित

भारत में ई पू तीसरी शताब्दी के मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा शिलाओं पर उत्कीर्ण अभिलेख आदि भी आत्मकथा के ही रूप हैं। यह परंपरा अशोक के बाद अधिकांश भारतीय नरेशों में चल पड़ी थी। जीवन की अथवा प्रशासन की किसी विशिष्ट घटना को जीवित रखने के लिये वे उसे पत्थर के स्तंभों, मंदिरों और उनकी दीवारों, ताम्रपत्रों आदि पर अंकित करवा देते थे। कुषाण और विशेषत:

गुप्त सम्राटों का काल इस तरह के संदर्भों से भरा पड़ा है। इसके साथ ही कभी कभी जीवनी लेखन का स्पष्ट रूप भी दिखाई पड़ जाता है। बाण द्वारा रचित हर्षचरित एक ऐसा ही उदारहण है।

बाद के मुगल बादशाहों में तो आत्मकथा लिखना चाव और रुचि की बात ही हो गई थी। बाबर से लेकर जहाँगीर तक सभी ने आत्मकथाएँ लिखी हैं, जो क्रमशः इस प्रकार है – बाबरनामा, हुमायूनामा, अकबरनामा, जहाँगीरनामा।

भारतीय सम्राटों, मुगल बादशाहों तथा राजपूत राजा और रजवाड़ों में आश्रय पाने वाले कवियों ने भी अपने आश्रयदाताओं के जीवनवृत्तातों का विस्तृत वर्णन अपने काव्य ग्रंथों में किया है। काव्य के नायक के रूप में किसी नरेश, अथवा आश्रयदाता का चयन करने के पश्चात् उनकी जीवनी का रूपायन कविता की पंक्तियों में कर डालना एक सामान्य बात हो गई थी। इस तरह के काव्य को हिन्दी साहित्य के चरितकाव्य की संज्ञा दी गई है। ऐसे काव्यों की रचना हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल और विशेषतः रीतिकाल के बहुलता से हुई है। वीरगाथा काल के रासों काव्यों को इसी श्रेणी में माना जा सकता है। रीतिकाल में इस तरह के चरित काव्यों के अनेक नाम गिनाए जा सकते हैं जिनकी रचना समय समय पर कवियोंद्वारा होती रही है।

नाभा दास का 'भक्तमाल' तथा उसपर प्रियादास की टीका भक्तों के जीवनचरित के संग्रह ग्रंथ हैं। कई अन्य भक्तकवियों ने भी 'भक्तमाल' नाम से जीवनचरित संग्रह ग्रंथों की रचना की। पुष्टिमार्गीय वैष्णव संतों और कवियों के ब्रजभाषा गद्य में अंकित जीवनचरित के दो संग्रह 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' अपने ढंग से बेजोड़ ग्रंथ हैं।

आधुनिक युग

आधुनिक गद्य काल में तो अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन आदि पश्चिमी भाषाओं के साथ साथ हिंदी, बंगला, मराठी आदि में भी प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवनचरित लिखने की प्रवृत्ति यथेष्ट रूप से बढ़ती जा रही है। आत्मकथाओं में महात्मा गांधी की 'सत्य के प्रयोग' शीर्षक आत्मकथा, देशरत्न स्व. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा इस प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आत्मकथा

साहित्य में आत्मकथा किसी लेखक द्वारा अपने ही जीवन का वर्णन करने वाली कथा को कहते हैं। यह संस्मरण से मिलती-जुलती लेकिन भिन्न है। जहाँ

संस्मरण में लेखक अपने आसपास के समाज, परिस्थितियों व अन्य घटनाओं के बारे में लिखता हैं वहाँ आत्मकथा में केन्द्र लेखक स्वयं होता है। आत्मकथा हमेशा व्यक्तिपरक होती हैं, यानि वह लेखक के दृष्टिकोण से लिखी जाती हैं। इनमें लेखक अनजाने में या जानबूझ कर अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण तथ्य छुपा सकता है या फिर कुछ मात्र में असत्य वर्णन भी कर सकता है। एक ओर आत्मकथा से व्यक्ति के जीवन और परिस्थितियों के बारे पढ़कर पाठकों को जानकारी व मनोरंजन मिलता है, तो दूसरी ओर इतिहासकार आत्मकथाओं की जानकारी को स्वयं में मान्य नहीं ठहराते और सदैव अन्य स्रोतों से उनमें कही गई बातों की पुष्टी करने का प्रयास करते हैं।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज गद्य-लेखन की एक विधा है। रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। रिपोर्ट अंग्रेजी भाषा का शब्द है। रिपोर्ट किसी घटना के यथातथ्य वर्णन को कहते हैं। रिपोर्ट सामान्य रूप से समाचारपत्र के लिये लिखी जाती है और उसमें साहित्यिकता नहीं होती है। रिपोर्ट के कलात्मक तथा साहित्यिक रूप को रिपोर्ताज कहते हैं। वास्तव में रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से लिखे जाने में ही रिपोर्ताज की सार्थकता है। आँखों देखी और कानों सुनी घटनाओं पर भी रिपोर्ताज लिखा जा सकता है। कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज नहीं लिखा जा सकता है। घटना प्रधान होने के साथ ही रिपोर्ताज को कथातत्त्व से भी युक्त होना चाहिये। रिपोर्ताज लेखक को पत्रकार तथा कलाकार दोनों की भूमिका निभानी पडती है। रिपोर्ताज लेखक के लिये यह भी आवश्यक है कि वह जनसाधारण के जीवन की सच्ची और सही जानकारी रखे। तभी रिपोर्ताज लेखक प्रभावोत्पादक ढंग से जनजीवन का इतिहास लिख सकता है।

आलोचना

आलोचना शब्द 'लुच' धातु से बना है। 'लुच' का अर्थ होता है- 'देखना'। इसीलिए किसी वस्तु या कृतिकी सम्यक् व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना ही 'आलोचना' है- 'आ समंतात् लोचनम् अवलोकनम् इति आलोचनम्। समीक्षा और समालोचना शब्दों का भी यही अर्थ है। अंग्रेजी के 'क्रिटिसिज्म' शब्द के समानार्थी रूप में 'आलोचना' का व्यवहार होता है। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत में प्रचलित 'टीका-व्याख्या' और काव्य-सिद्धांत आदि के निरूपण के

लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है, किन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्पष्ट मत है कि 'आधुनिक आलोचना, संस्कृत के काव्य-सिद्धांत निरूपण से स्वतंत्र चीज है।

आलोचना का कार्य

आलोचक किसी कवि या लेखक की कृति को देखता है या परखता है। आलोचना कवि या लेखक और पाठक के बीच की शृंखला है। राजशेखर ने कविकर्म को प्रकाश में लाना ही भावयित्री प्रतिभा अथवा आलोचक की प्रतिभा कहा है। आलोचना का कार्य है किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, गुण और अर्थव्यवस्था का निर्धारण करना।

'यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।'

यानी कि 'आलोचना का कर्त्तव्य साहित्यिक कृति की विश्लेषणपरक व्याख्या है। साहित्यकार जीवन और अनुभव के जिन तत्त्वों के संश्लेषण से साहित्य की रचना करता है, आलोचना उन्हीं तत्त्वों का विश्लेषण करती है। साहित्य में जहाँ रागतत्त्व प्रधान है, वहाँ आलोचना में बुद्धि तत्त्व। आलोचना ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों और शक्तियों का भी आकलन करती है और साहित्य पर उनके पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करती है। व्यक्तिगत रुचि के आधार पर किसी कृति की निन्दा या प्रशंसा करना आलोचना का धर्म नहीं है। कृति की व्याख्या और विश्लेषण के लिए आलोचना में पद्धति और प्रणाली का महत्त्व होता है। आलोचना करते समय आलोचक अपने व्यक्तिगत राग-द्वेष, रुचि-अरुचि से तभी बच सकता है, जब वह पद्धति का अनुसरण करे। वह तभी वस्तुनिष्ठ होकर साहित्य के प्रति न्याय कर सकता है। इस दृष्टि से हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को सर्वश्रेष्ठ आलोचक माना जाता है।

प्रकार

अधिकांशतः आलोचना करते समय जिन मान्यताओं और पद्धतियों को स्वीकार किया जाता है, उनके अनुसार आलोचना के प्रकार विकसित हो जाते हैं। इसके निम्नलिखित चार प्रकार स्वीकार किये गए हैं-

सैद्धांतिक

1. निर्णयात्मक
2. प्रभावाभिव्यंजक
3. व्याख्यात्मक।

सैद्धांतिक आलोचना

इस आलोचना में साहित्य के सिद्धांतों पर विचार होता है। इसमें प्राचीन शास्त्रीय काव्य के अंगों, जैसे- रस, अलंकार आदि और साहित्य की आधुनिक मान्यताओं तथा नियमों की मुख्य रूप से विवेचना की जाती है। सैद्धांतिक आलोचना में विचार का बिन्दु यह है कि साहित्य का मानदंड शास्त्रीय है या ऐतिहासिक। मानदंड का शास्त्रीय रूप, स्थिर और अपरिवर्तनशील होता है। किन्तु मानदंडों को ऐतिहासिक श्रेणी मानने पर उनका स्वरूप परिवर्तनशील और विकासात्मक होता है। इन दोनों प्रकार की सैद्धांतिक आलोचनाएँ उपलब्ध हैं, किन्तु अब उसी सैद्धांतिक आलोचना का महत्त्व अधिक है, जो साहित्य के तत्त्वों और नियमों की ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्रगतिशील होती है।

निर्णयात्मक आलोचना

इस प्रकार की आलोचना में निश्चित सिद्धांतों के आधार पर जब साहित्य के गुण-दोष, श्रेष्ठ-निकृष्ट का निर्णय कर दिया जाता है, तब उसे निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं। इसे एक प्रकार की नैतिक आलोचना भी माना जाता है। इसका मुख्य स्वभाव न्यायाधीश की तरह साहित्यिक कृतियों पर निर्णय देना है। ऐसी आलोचना प्रायः ही सिद्धांत का यांत्रिक ढंग से उपयोग करती है। इसलिए निर्णयात्मक आलोचना का महत्त्व कम हो जाता है। यद्यपि मूल्य या श्रेष्ठ साहित्य और निकृष्ट साहित्य का बोध पैदा करना आलोचना के प्रधान धर्मों में से एक है, लेकिन वह सिद्धांतों के यांत्रिक उपयोग से संभव नहीं है।

प्रभावाभिव्यंजक आलोचना

इस आलोचना में काव्य का जो प्रभाव आलोचक के मन पर पड़ता है, उसे वह सजीले पद-विन्यास में व्यक्त कर देता है। इसमें वैयक्तिक रुचि ही मुख्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार-

ष्प्रभावाभिव्यंजक समालोचना कोई ठीक-ठिकाने की वस्तु नहीं है, न ज्ञान के क्षेत्र में उसका मूल्य है न भाव के क्षेत्र में।'

व्याख्यात्मक

व्याख्यात्मक आलोचना में किसी साहित्यिक कृति में निहित अनुभव की वास्तविकता और उसके कला-विवेक को समझने का प्रयत्न किया जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना में कविता और साहित्य तथा उसके सिद्धांतों को अंतिम और पूर्ण नहीं मान लिया जाता है। वह मानती है कि जीवन और ज्ञान के विकासमान संदर्भ में साहित्य और उसके मानदंड भी विकसित होते रहते हैं। इसलिए व्याख्यात्मक आलोचना साहित्य पर विचार और विश्लेषण करते समय इतिहास, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि का उपयोग आवश्यक रूप से करती है। इस प्रकार की आलोचना में जब कृति की व्याख्या करते समय उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अधिक बल हो तो उसे ऐतिहासिक आलोचना कहा जाता है। इसी प्रकार जब मनोविज्ञान के तत्त्वों पर बल देकर कृति की वास्तविकता की व्याख्या होती है तो उसे मनोवैज्ञानिक आलोचना कहते हैं।

प्रगतिवादी आलोचना

साहित्य की व्याख्या-सराहना जब ऐतिहासिक और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर होती है, जिसमें समाज की वर्गीय स्थितियों और संघर्षों से मनुष्य के अनुभव का निर्माण होता है, तब उसे 'प्रगतिवादी आलोचना' कहा जाता है। वर्तमान काल में रूपवादी और संरचनावादी आलोचना का भी चलन हो गया है। इस कोटि की आलोचना में साहित्य का रूपपक्ष और रचना-विन्यास ही मुख्य होता है। यह आलोचना साहित्य में 'भाव वस्तु', जिसे अंग्रेजी में कंटेंट कहा जाता है, को गौण मानती है।

आलोचला का उद्देश्य

लेखक अपने कथ्य को संप्रेषित करने में सफल हो सका है या नहीं, यदि सफल हुआ है तो किस सीमा तक सफल हुआ है। इसके साथ-साथ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से जो कुछ भी अभिव्यक्त करना चाहता है, या कर पाया है, उसकी प्रासंगिकता क्या है? वह अभिव्यक्त करने योग्य भी है या नहीं? आलोचना के उसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर डॉ.

श्यामसुन्दर दास ने लिखा था- 'यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें, तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।' डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में, 'हम यह देखने का प्रयास करते हैं कि जो मूल्य रचनाकार ने रचना में मूर्तिमान किये है उनका मानव जगत् के साथ क्या संबंध है, अथवा लोक.चेतना के संदर्भ में किसी भी भाँति की चेतना का क्या मूल्य है।'

बहुधा आलोचना को रचनाकार व्यक्तिगत आलोचना मान कर दुरूखी, निराश या नाराज हो जाता है। कुछ आलोचक भी अपनी आलोचना के माध्यम से किसी रचनाकार को उठाने और किसी को गिराने के लिए प्रयत्न करते हैं। किंतु इस संदर्भ में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि स्वस्थ आलोचना व्यक्तिगत राग-द्वेष से रहित होती है। स्वस्थ आलोचना सदा रचना से संबंध रखती है। रचनाकार और आलोचक के व्यक्तिगत संबंधों से वह प्रभावित नहीं होनी चाहिए। 'आलोचना स्वस्थ मन से साहित्य या कला का अध्ययन करना और उसके सौंदर्य को परखना सिखाती है। यही उसका परम कर्त्तव्य है।'

अच्छे आलोचक के गुण

एक अच्छे आलोचक में इन गुणों का होना आवश्यक है- निष्पक्षता, साहस, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण, इतिहास और वर्तमान का सम्यक ज्ञान, देशी-विदेशी साहित्य और कलाओं का ज्ञान, संवेदनशीलता, अध्ययनशीलता और मननशीलता। इन गुणों के अभाव में कोई आलोचक किसी रचना के ऊपरी गुण-दोष तो रेखांकित कर सकता है, उसके अंदर तक पैठ पाने की क्षमता उसके पास नहीं होती। ऐसी पल्लवग्राही आलोचनाएँ न तो पाठकों को कोई दिशा दे पाती हैं और न ही रचना के साथ न्याय कर पाती हैं।' ...निष्ट रचना उतनी हानिकारक नहीं होती जितनी एक निष्ट आलोचना।'

एकांकी

हिंदी साहित्य के इतिहासकार एकांकी का प्रारंभ भारतेंदुयुग से मानते हैं। प्रसाद के 'एक घूँट' (1929 ई.) से दूसरा चरण, भुवनेश्वर प्रसाद के 'कारवाँ' (1935 ई.) से तीसरा तथा डॉ. रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' (1941 ई.) संकलन से चौथे चरण की शुरूआत कही गई है। किंतु उक्त कालविभाजन में उन एकांकीकारों को सम्मिलित नहीं किया गया है, जिन्होंने 1955 ई. के

आसपास लिखना प्रारंभ किया है और आज भी लिख रहे हैं। अत: हिंदी एकांकी का अद्यतन इतिहास संक्षेप में इस प्रकार है–

(1) भारतेंदुकाल में दो प्रकार के एकांकी लिखे गए। प्रथम, अनूदित या छायांकित एकांकी तथा द्वितीय, मौलिक एकांकी। पहली कोटि में भारतेंदु का बँगला के 'भारतमाता' का अनुवाद 'भारत जननीश' राधाचरण गोस्वामी द्वारा बँगला के 'भारतेर यवन' का अनुवाद 'भारतवर्ष में यवन लोग', कांचनाचार्य कृत 'धनंजय विजय' का छायाविष्ट रूपक, अयोध्यसिहं उपाध्याय का 'प्रद्युम्नविजय व्यायोग' आदि हैं। दूसरी कोटि में भारतेंदुकृत 'विषस्यविषमौषधम्', 'प्रेमजोगिनी' (अपूर्ण), गीतिरूपक 'नीलदेवी' तथा 'सतीप्रताप' (अपूर्ण)य राधाचरण गोस्वामी कृत 'तनमनधन गोसाई के अरपन', 'सती चंद्रावली', 'अमरसिंह राठौर', एवं 'श्रीदामाश' किशोरीलाल गोस्वामी का 'चौपट चपेटश्य राधाकृष्णदास का 'दुरूखिनीबालाश्य अंबिकादत्त व्यास रचित 'कलियुग और घी' तथा 'मन की उमंगश्य श्रीशरण का 'बालविवाहश्य बालकृष्ण भट्ट के 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल' तथा 'बाल विवाहश्य प्रतापनारायण मिश्र का 'कलिकौतुकश्य देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'जय नरसिंह कीश्य काशीनाथ खत्री के 'सिंधु देश की राजकुमरियाँ', गुन्नौर की रानी' एवं 'लजबो का स्वप्नश्य लाला श्रीनिवासदास का 'प्रह्लाद चरितश्य बदरीनारायण प्रेमघन का 'प्रयाग रामागमनश्य कृष्णशरण सिंह गोपकृत 'माधुरी' आदि एकांकी आते हैं।

ऐतिहासिक आख्यान तथा समाजसुधार के प्रसंग ही उपर्युक्त एकांकियों के विषय हैं। इन्हें आधुनिक एकांकी का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। कला का विकसित रूप इनमें नहीं मिलताय शैलियाँ परस्पर कुछ भिन्न हैं पर परंपरा एक ही है। उक्त एकांकी अभिनेय की अपेक्षा पाठय अधिक हैं। लेखकों का झुकाव जीवन की स्थूलता का वर्णन करने की ओर है, वृत्तियों की सूक्ष्म विवृत्ति इनमें नहीं मिलती। प्ररोचना, प्रस्तावना, सूत्रधार, नांदी, मंगलाचरण, एकाधिक दृश्ययोजना, भरतवाक्य आदि के प्रयोग कहीं हैं, कहीं नहीं भी हैं। आकार सर्वत्र लंबे हैं, अंक भी दृश्य और दृश्य भी गर्भाक जैसे हो गए हैं। संकलनत्रय के निर्वाह का अभाव है, शिथिल संवादों का बाहुल्य एवं विकास तथा विन्यासहीन कथायोजना का आधिक्य है। इनमें से कुछ प्रहसन के रूप में लिखे गए हैं, पर उनमें निर्मल हास्य न होकर व्यंग्य की मात्रा ही अधिक है। एकांकी के लिए अपेक्षित प्रमुख गुण कार्य (ऐक्शन) का इनमें अभाव है।

(2) एकांकी के दूसरे युग में जयशंकर प्रसाद का 'एक घूँट' लिखा गया जिसपर संस्कृत का भी प्रभाव है और बँगला के माध्यम से आए पाश्चात्य एकांकी शिल्प का भी। प्रसाद जी ने इसी बीच 'कल्याणी परिणय' भी लिखा, पर वह अभी तक अप्रकाशित है। साथ ही, इसे उनके 'चद्रंगुप्त' नाटक का एक भाग भी कहा जा सकता है। फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के कुछ प्रहसनों का भी इस दौरान हिंदी में अनुवाद हुआ। 'एक घूँट' में एकांकी के कमोबेश लगभग सभी आधुनिक लक्षण मिल जाते हैं। विवाह समस्या का विवेचन एवं समाधान भावुकतापूर्ण शैली में किया गया है। परंतु 'एक घूँट' एक ही रह गयाय अन्य लेखकों को यह एकांकी लेखन की ओर प्रवृत्त न कर सका।

(3) एकांकी का तीसरा चरण भुवनेश्वप्रसाद के 'कारवाँ' संग्रह से शुरू होता है जिसमें छः एकांकी हैं। 1938 ई में 'हंस' का एकांकी अंक प्रकाशित हुआ। इसमें तत्कालीन प्रतिनिधि एकांकी प्रस्तुत किए गए। इसी बीच सत्येंद्र का 'कुनाल', पृथ्वीनाथ शर्मा का 'दुविधा', रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें सूर्यशरण पारीक का 'बैलावण या प्रतिज्ञापूर्ति' आदि प्रकाशित हुए। उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास प्रभृति एकांकीकार भी इसी काल में एकांकी लेखन की ओर प्रवृत्त हुए और उनके कई सशक्त एकांकी प्रकाश में आए।

इस युग में प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों प्रकार के कथानकों को लेकर एकांकी लिखे गए। इनमें विवाहादि सामाजिक तथा साम्यावादादि राजनीतिक समस्याएँ प्रमुख रूप से उभरी हैं। प्राचीन विचारधारा की वकालत जोरदार शब्दों में की गई है, परंतु इसके साथ नवीन को अपनाने का आग्रह भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पश्चिमी विचार ओर शैली के प्रभाव को लेकर एकांकी ने अपने रूप रंग में पर्याप्त परिवर्तन किया और इसकी तकनीक में यत्किंचित् स्थिरता आई। देखा जाए, तो यह काल एकांकी विधा का परिमार्जन काल था। लेखकों ने इस समय का सदुपयोग कर अपने हाथ साधे। सन् 1935 ई. से रेडियो प्रसारणों के अंतर्गत एकांकियों को भी स्थान दिया जाने लगा था, अतः रेडियो एकांकी अथवा ध्वनिनाटक भी काफी संख्या में लिखे जाने लगे।

(4) चतुर्थ चरण तक पहुँचते-पहुँचते एकांकी का स्वरूप, शिल्प आदि पूरी तरह स्थिर हो जाते हैं, उनका प्रामाणिक रूप सामने आता है। इससे पहले तो वह अपना सही रूप तलाशने में लगा था। डॉ. रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई' एकांकीसंग्रह से इस युग का सूत्रपात हुआ, यह पहले ही बताया जा चुका है। इसके अतिरिक्त वर्मा जी के 'ऐक्ट्रेस', 'रजनी की रात', 'एक तोले अफीम की कीमत',

'परीक्षा', 'नहीं का रहस्य', 'कहाँ से कहाँ', 'चारुमित्र', 'दस मिनट' आदि एकांकी प्रसिद्ध हैं। पहाड़ी का 'युग युग द्वारा शक्तिपूजाश्य भुवनेश्वर के 'शैतान', 'स्ट्राइक', 'असर', 'ताँबे के कीड़ेश्य भगवतीचरण वर्मा के 'संदेह का अंत', 'दो कलाकार', 'सबसे बड़ा आदमीश्य उपेंद्रनाथ अश्क कृत 'जोंक', 'समझौता', 'घड़ी', 'छठा बेटा', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'विभा', 'तौलिये', 'आदिमार्गश्य उदयशंकर भट्ट के 'दो अतिथि', 'वर निर्वाचन', 'मुंशी अनोखेलाल', 'असली नकली', 'नेता', 'सेठ भालचंद', 'मनुमानव', 'आदिम युगश्य सेठ गोविंददास रचित 'विटेमन', 'अधिकार लिप्सा', 'वह मरा क्यों', 'हंगर स्ट्राइक', 'कंगाल नहीं', 'ईद और होलीश्य पांडेय बेचन शर्मा उग्र के 'राम करे सो होय', 'मियाँ भाई', 'अफजल वधश्य वृंदावनलाल वर्मा कृत 'पीले हाथ', 'सगुन' ष्जहाँदार शाह', 'कश्मीर का काँटा', 'मानवश्य एस. पी. खत्री के 'चौराहा', 'माँ', 'मछुए की माँ', 'ठाकुर का घर', 'बंदर की खोपड़ीश्य विष्णु प्रभाकर के 'माँ का हृदय', 'संस्कार और भावना', 'रक्तचंदन', 'माँ बापश्य जगदीशचंद्र माथुर के 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', मकड़ी का जाला', 'कलिंगविजय', 'खंडहरश्य लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'एक दिनश्य सद्गुरुशरण अवस्थी के 'मुद्रिका', 'कालीवधश्य गणेशप्रसाद द्विवेदी के 'सोहाग की बिंदी', 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'शर्मा जी', 'सर्वस्व समर्पण' आदि प्रमुख एकांकी इसी काल की देन हैं।

इस युग के एकांकी स्वतंत्र एवं सचेष्ट भाव से लिखे गए हैं। अतः विषय की अपेक्षा शिल्प उनमें विशेष है। बौद्धिक उत्सुकता, मानसिक विश्लेषण, अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति, हास्य तथा चुटीले व्यंग्य, संवादों की कसावट, मार्मिक स्थलों का चयन, यथार्थ प्रस्तुतीकरण के प्रति आग्रह, मनोवैज्ञानिक कार्यव्यवहार, पद्य का लगभग अभाव, सामान्य नायक की स्वीकृति, रंगसंकेत आदि उत्तरोत्तर बढ़ते गए हैं। युग की विभिन्न एवं विविध अभिरुचियों के अनुसार इस समय के एकांकियों के विषय भी अनेक रहे हैं, जिनमें प्रेम, विवाह, घृणा, क्रूरता, हत्या, पौराणिक आख्यान, लोकगाथात्मक एवं लोकविश्रुत वीरों तथा राजाओं के कृत्य, सामाजिक कुरीतियाँ, वर्गसंघर्ष, देशभक्ति, हिंदु-मुसलमान-भ्रातृत्व, सत्याग्रह, यौनाकर्षण आदि प्रमुख हैं। ध्वनि नाटक भी इस बीच अधिक संख्या में लिखे गए हैं।

(5) हिंदी एकांकी पाँचवाँ अथवा अंतिम चरण एकांकी की विविध विधाओं को लेकर प्रारंभ होता है जिनमें मंच एवं ध्वनि एकांकी के अलावा 'ओपेन एयर एकांकी', 'चित्र एकाकी' (टेलिविजन पर दिखाए जानेवाले) 'गली

एकांकी' आदिश्शसम्मिलित किए जा सकते हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण कृत 'बसंत ऋतु का नाटक', 'मम्मी ठकुराइन', 'राजरानीश्य देवराज दिनेश के 'समस्या सुलझ गई', 'तुलसीदास', 'रिश्वत के अनेक ढंगश्य जयनाथ नलिन रचित 'भक्तों की दीनताश्य सत्येंद्र शरत् कृत 'नवजोती की नई हिरोइनश्य विनोद रस्तोगी का 'बहू की विदाश्य चिरंजीत के 'चक्रव्यूह' ढोल की पोल', (ध्वनि नाटक), पाँच प्रहसन' (संकलन)य रेवतीशरण शर्मा कृत 'तलाकश्य विमला लूथरा का 'अपना घरश्य ज्ञानदेव अग्निहोत्री का 'रोटीवाली गलीश्य कृष्णकिशोर श्रीवास्तव के 'सत्यकिरण', 'मछली के आँसू', 'आस्तीन के साँपश्य इंदुशेखर का 'महल्ले की आबरूश्य स्वामीनाथ कृत आई.ए.एस.श्य राजेंद्रकुमार शर्मा के 'पर्दा उठने से पहले', 'रेत की दीवार', 'अटैची केस', अरुण रचित 'रेलगाड़ी के डिब्बे', 'भोर की किरणेंश्य श्रीकृष्ण कृत 'माँ जी', 'तरकश के तीरश्य मुक्ता शुक्ल के 'पर्दे और परछाइयाँश्य 'भीतरी छाया', कुमार राजेंद्र कृत 'आदमखोर' (ओपेन एयर एकांकी)य कंचनकुमार लिखित 'सूअर बाड़े का जमादार' (गली एकांकी) आदि इस खेवे की प्रमुख रचनाएँ हैं।

इस काल में कुछ बेमानी (ऐब्सर्ड) एकांकी भी लिखे गए हैं जिनमें सत्यदेव दुबे कृत 'थोड़ी देर पहले और थोड़ी देर बादश्य धर्मचंद्र जैन का 'चेहरों के चेहरेश्य मोहन राकेश का बीज नाटक 'शायद' आदि उल्लेख्य हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, गंगाधर शुक्ल, विनोद रस्तोगी, उपेंद्रनाथ अश्क, कमलेश्वर तथा मनहर चौहान ने इधर बहुत से चित्र एकांकी भी प्रस्तुत किए हैं।

पाँचवें चरण के एकांकियों में या तो पाश्चात्य रचना प्रक्रिया को कठोरता के साथ ग्रहण किया गया है अथवा उसमें प्रतिभा और बुद्धि से नए वस्तुविधान, नई अभिव्यंजना द्वारा मौलिक रूप का निर्माण कर लिया गया है। गीतों का इनमें एकांत अभाव है, प्रकाश का जमकर उपयोग किया गया है, जिसमें पर्दों की जरूरत बहुत कुछ समाप्त हो गई है। संवाद अत्यंत कसे हुए तथा चुटीले हैं। जीवन के नए ढंग, उसकी आशाओं, निराशाओं, छोटी-छोटी समस्याओं तथा प्रति दिन की सामान्य घटनाओं को लेकर ये एकांकी रचे गए हैं। चित्र एकांकियों ने 'आउट-डोर-हीनता' को तोड़ा है। इसमें अब पहाड़ी नदी की चंचलता, सड़कों पर भागती कारें, समुद्र में चलते यान, आकाश में शत्रु विमानों से जूझते 'नैट' आदि दिखाए जाते हैं। गली एकांकी ने मंच को तोड़ा है तो बेमानी एकांकियों ने दर्शकों को ही मंचपर लाकर खड़ा कर दिया है।

निबन्ध

निबन्ध गद्य लेखन की एक विधा है। लेकिन इस शब्द का प्रयोग किसी विषय की तार्किक और बौद्धिक विवेचना करने वाले लेखों के लिए भी किया जाता है। निबंध के पर्याय रूप में सन्दर्भ, रचना और प्रस्ताव का भी उल्लेख किया जाता है। लेकिन साहित्यिक आलोचना में सर्वाधिक प्रचलित शब्द निबंध ही है। इसे अंग्रेजी के कम्पोजीशन और एस्से7 के अर्थ में ग्रहण किया जाता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार संस्कृत में भी निबंध का साहित्य है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के उन निबंधों में धर्मशास्त्रीय सिद्धांतों की तार्किक व्याख्या की जाती थी। उनमें व्यक्तित्त्व की विशेषता नहीं होती थी। किन्तु वर्तमान काल के निबंध संस्कृत के निबंधों से ठीक उलटे हैं। उनमें व्यक्तित्त्व या वैयक्तिकता का गुण सर्वप्रधान है।

इतिहास–बोध परम्परा की रूढ़ियों से मनुष्य के व्यक्तित्त्व को मुक्त करता है। निबंध की विधा का संबंध इसी इतिहास–बोध से है। यही कारण है कि निबंध की प्रधान विशेषता व्यक्तित्त्व का प्रकाशन है।

निबंध की सबसे अच्छी परिभाषा है–

1. निबंध, लेखक के व्यक्तित्त्व को प्रकाशित करने वाली ललित गद्य–रचना है।
2. इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है। लेकिन निबंध का रूप साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा इतना स्वतंत्र है कि उसकी सटीक परिभाषा करना अत्यंत कठिन है।

निबंध की विशेषता

सारी दुनिया की भाषाओं में निबंध को साहित्य की सृजनात्मक विधा के रूप में मान्यता आधुनिक युग में ही मिली है। आधुनिक युग में ही मध्ययुगीन धार्मिक, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति का द्वार दिखाई पड़ा है। इस मुक्ति से निबंध का गहरा संबंध है।

ललित अत्री जी के अनुसार–

नए युग में जिन नवीन ढंग के निबंधों का प्रचलन हुआ है वे व्यक्ति की स्वाधीन चिन्ता की उपज है।

इस प्रकार निबंध में निबंधकार की स्वच्छंदता का विशेष महत्त्व है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–

निबंध लेखक अपने मन की प्रवृत्ति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर-उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है। यही उसकी अर्थ सम्बन्धी व्यक्तिगत विशेषता है। अर्थ-संबंध-सूत्रों की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ ही भिन्न-भिन्न लेखकों के दृष्टि-पथ को निर्दिष्ट करती हैं। एक ही बात को लेकर किसी का मन किसी सम्बन्ध-सूत्र पर दौड़ता है, किसी का किसी पर। इसी का नाम है एक ही बात को भिन्न दृष्टियों से देखना। व्यक्तिगत विशेषता का मूल आधार यही है।

इसका तात्पर्य यह है कि निबंध में किन्हीं ऐसे ठोस रचना-नियमों और तत्त्वों का निर्देश नहीं दिया जा सकता जिनका पालन करना निबंधकार के लिए आवश्यक है। ऐसा कहा जाता है कि निबंध एक ऐसी कलाकृति है जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते हैं। निबंध में सहज, सरल और आडम्बरहीन ढंग से व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति होती है।

'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार–

लेखक बिना किसी संकोच के अपने पाठकों को अपने जीवन-अनुभव सुनाता है और उन्हें आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है। उसकी यह घनिष्ठता जितनी सच्ची और सघन होगी, उसका निबंध पाठकों पर उतना ही सीधा और तीव्र असर करेगा। इसी आत्मीयता के फलस्वरूप निबंध-लेखक पाठकों को अपने पांडित्य से अभिभूत नहीं करना चाहता।

इस प्रकार निबंध के दो विशेष गुण हैं-

(1) व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति

(2) सहभागिता का आत्मीय या अनौपचारिक स्तर

निबंध का आरंभ कैसे हो, बीच में क्या हो और अंत किस प्रकार किया जाए, ऐसे किसी निर्देश और नियम को मानने के लिए निबंधकार बाध्य नहीं है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि निबंध एक उच्छृंखल रचना है और निबंधकार एक उच्छृंखल व्यक्ति। निबंधकार अपनी प्रेरणा और विषय वस्तु की संभावनाओं के अनुसार अपने व्यक्तित्त्व का प्रकाशन और रचना का संगठन करता है। इसी कारण निबंध में शैली का विशेष महत्त्व है।

हिन्दी साहित्य में निबन्ध

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग में भारतेन्दु और उनके सहयोगियों से निबंध लिखने की परम्परा का आरंभ होता है। निबंध ही नहीं, गद्य की कई विधाओं का प्रचलन भारतेन्दु से होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि गद्य और उसकी विधाएँ आधुनिक मनुष्य के स्वाधीन व्यक्तित्त्व के अधिक अनुकूल हैं। मोटे रूप में स्वाधीनता आधुनिक मनुष्य का केन्द्रीय भाव है। इस भाव के कारण परम्परा की रूढ़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। सामयिक परिस्थितियों का दबाव अनुभव होता है। भविष्य की संभावनाएँ खुलती जान पड़ती हैं। इसी को इतिहास-बोध कहा जाता है। भारतेन्दु युग का साहित्य इस इतिहास-बोध के कारण आधुनिक माना जाता है।

5

व्याकरणीय संरचना

हिंदी व्याकरण, हिंदी भाषा को शुद्ध रूप में लिखने और बोलने संबंधी नियमों का बोध कराने वाला शास्त्र हैं। यह हिंदी भाषा के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। इसमें हिंदी के सभी स्वरूपों का चार खंडों के अंतर्गत अध्ययन किया जाता है, यथा- वर्ण विचार के अंतर्गत ध्वनि और वर्ण तथा शब्द विचार के अंतर्गत शब्द के विविध पक्षों संबंधी नियमों और वाक्य विचार के अंतर्गत वाक्य संबंधी विभिन्न स्थितियों एवं छंद विचार में साहित्यिक रचनाओं के शिल्पगत पक्षों पर विचार किया गया है।

वर्ण-विचार

वर्ण से शब्द बनते हैं और शब्दों से वाक्य। वाक्यों से ही भाषा का कार्य पूरा होता है अर्थात् कहने वाले के विचार या भाव सुनने वाला ग्रहण करता है। इस तरह वर्ण भाषा की सबसे सूक्ष्म व मूल इकाई है। दूसरे शब्दों में **किसी भाषा की छोटी-से-छोटी स्वीकृत ध्वनि वर्ण कहलाती है।** इस ध्वनि के टुकड़े नहीं किए जा सकते। इस तरह वर्ण को इस तरह से भी परिभाषित किया जा सकता है–

वर्ण वह मूल ध्वनि है जिसके खण्ड या टुकड़े नहीं किये जा सकते।

हर वर्ण को एक निश्चित चिन्ह द्वारा लिखा जाता है। किसी भाषा के वर्ण-समूह को वर्णमाला कहा जाता है। हिन्दी की वर्णमाला इस प्रकार है–

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ अं अः
क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ़ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व श ष स ह क्ष त्र ज्ञ

वर्णमाला

वर्णों के समुदाय को ही वर्णमाला कहते हैं। हिन्दी वर्णमाला में 44 वर्ण हैं। उच्चारण और प्रयोग के आधार पर हिन्दी वर्णमाला के दो भेद किए गए हैं–

1. स्वर
2. व्यंजन

स्वर

जिन वर्णों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से होता हो और जो व्यंजनों के उच्चारण में सहायक हों वे स्वर कहलाते है। ये संख्या में ग्यारह हैं–

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ।

उच्चारण के समय की दृष्टि से स्वर के तीन भेद किए गए हैं–

1. ह्रस्व स्वर।
2. दीर्घ स्वर।
3. प्लुत स्वर।

1. ह्रस्व स्वर

जिन स्वरों के उच्चारण में कम-से-कम समय लगता हैं उन्हें ह्रस्व स्वर कहते हैं। ये चार हैं- अ, इ, उ, ऋ। इन्हें मूल स्वर भी कहते हैं।

2. दीर्घ स्वर

जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व स्वरों से दुगुना समय लगता है उन्हें दीर्घ स्वर कहते हैं। ये हिन्दी में सात हैं- आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

विशेष- दीर्घ स्वरों को ह्रस्व स्वरों का दीर्घ रूप नहीं समझना चाहिए। यहाँ दीर्घ शब्द का प्रयोग उच्चारण में लगने वाले समय को आधार मानकर किया गया है।

3. प्लुत स्वर

जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वरों से भी अधिक समय लगता है उन्हें प्लुत स्वर कहते हैं। प्राय: इनका प्रयोग दूर से बुलाने में किया जाता है।

मात्राएँ

'अ' के अतिरिक्त शेष स्वर जब व्यंजनों के साथ प्रयुक्त किए जाते हैं तो उनकी मात्राएँ ही लगती हैं। 'अ' की मात्रा नहीं होती। अ से रहित व्यंजनों को हलंत लगाकर दिखाया जाता है। यथा–क्, ख्, ग् आदि। 'अ' लगने पर हलंत का चिह्न हट जाता है। क्+अ=क, ख्+अ=ख आदि। इस तरह स्वर जब व्यंजन के साथ प्रयुक्त होते हैं तो उसका रूप बदल जाता है उसके बदले हुए रूप को मात्रा कहते हैं।

विभिन्न स्वरों की मात्राएँ और शब्दों में उनका प्रयोग देखिए–

स्वर	मात्रा	शब्द-प्रयोग	स्वर	मात्रा	शब्द-प्रयोग
अ	–	–	उ	ु	कुत्ता
आ	ा	राम	ऊ	ू	फूल
इ	ि	दिन	ए	े	केला
ई	ी	तीर	ऐ	ै	मैना
ऋ	ृ	कृषक	ओ	ो	कोमल
		औ ौ	सौरभ		

अं को बिन्दु (–) तथा अ: को विसर्ग (:) के रूप में लिखा जाता है।

व्यंजन

जिन वर्णों के पूर्ण उच्चारण के लिए स्वरों की सहायता ली जाती है वे व्यंजन कहलाते हैं। अर्थात व्यंजन बिना स्वरों की सहायता के बोले ही नहीं जा सकते। ये संख्या में 33 हैं। इसके निम्नलिखित तीन भेद हैं–

1. स्पर्श
2. अंत:स्थ
3. ऊष्म

1. स्पर्श

इन्हें पाँच वर्गों में रखा गया है और हर वर्ग में पाँच-पाँच व्यंजन हैं। हर वर्ग का नाम पहले वर्ग के अनुसार रखा गया है जैसे–

कवर्ग- क् ख् ग् घ् ङ्
चवर्ग- च् छ् ज् झ्
टवर्ग- ट् ठ् ड् ढ् ण्
तवर्ग- त् थ् द् ध् न्
पवर्ग- प् फ् ब् भ् म्

2. अंत:स्थ

य् र् ल् व् व्यंजन अंतस्थ हैं।

3. ऊष्म

श् ष् स् ह् व्यंजन ऊष्म कहलाते हैं।

वैसे तो कोई दो व्यंजन मिल जाने पर संयुक्त व्यंजन कहलाते हैं, किन्तु देवनागरी लिपि में चार संयुक्त व्यंजन ऐसे हैं जिनके रूप परिवर्तित हो जाते हैं, वे हैं–

वर्ण + वर्ण	**संयुक्त व्यंजन**	**शब्द-प्रयोग**
क्+ष	= क्ष	क्षत्रिय
त्+र	= त्र	पुत्र
ज्+ञ	= ज्ञ	ज्ञान
श्+र	= श्र	श्रवण

कुछ लोग ज्+ञ = ज्ञ का उच्चारण 'ग्य' करते हैं।

द्वित्व व्यंजन–जब शब्द में एक ही वर्ण दो बार मिलकर प्रयुक्त हो तब उसे द्वित्व व्यंजन कहते हैं। जैसे–चिल्ली में 'ल' और चक्का में 'क' का द्वित्व प्रयोग है।

अनुस्वार–(ं) इसका उच्चारण 'म्' अथवा 'न्' के समान होता है। जैसे–जंगल, पतंग आदि।

विसर्ग–(:) इसका उच्चारण 'ह' के समान होता है। जैसे–अत:, पुन: आदि।

अनुनासिक–(ँ) जब किसी वर्ण का उच्चारण नाक तथा मुँह से हो तब उसके ऊपर चंन्द्रबिन्दु लगाया जाता है, जैसे-चाँद, मुँह आदि। इसे अनुनासिक कहते हैं।

अनुस्वार तथा अनुनासिक में अन्तर–अनुस्वार में वर्ण का उच्चारण केवल नासिका से होता है तथा उसमें आधे वर्ग के उच्चारण जितना बल लगता है। अनुनासिक में उच्चारण मुँह तथा नासिका दोनों से होता है। अनुनासिक (चंद्रबिन्दु से संयुक्त) स्वर के उच्चारण का समय सामान्य वर्ण जितना ही होता है। शब्द में अन्य वर्ण समान रहने पर अनुस्वार एवं अनुनासिक के प्रयोग से अर्थ बदल जाता है। जैसे–'हंस' का अर्थ पक्षी विशेष है जबकि 'हँस' का 'हँसने' की क्रिया है।

हलंत

जब कभी व्यंजन का प्रयोग स्वर से रहित किया जाता है तब उसके नीचे एक तिरछी रेखा (्) लगा दी जाती है। यह रेखा हल कहलाती है। हलयुक्त व्यंजन हलंत वर्ण कहलाता है। जैसे-विद् या।

वर्णों के उच्चारण-स्थान

मुख के जिस भाग से जिस वर्ण का उच्चारण होता है उसे उस वर्ण का उच्चारण स्थान कहते हैं।

उच्चारण स्थान तालिका

वर्ण	उच्चारण	श्रेणी
अ आ क् ख् ग् घ् ङ् ह्	विसर्ग कंठ और जीभ का निचला भाग	कंठस्थ
इ ई च् छ् ज् झ् य् श	तालु और जीभ	तालव्य
ऋ ट् ठ् ड् ढ् ण् ड़् ढ़् ष्	मूर्धा और जीभ	मूर्धन्य
त् थ् द् ध् न् ल् स्	दाँत और जीभ	दंत्य
उ ऊ प् फ् ब् भ् म	दोनों होंठ	ओष्ठ्य
ए ऐ	कंठ तालु और जीभ	कंठतालव्य
ओ औ	दाँत जीभ और होंठ	कंठोष्ठ्य
व्	दाँत जीभ और होंठ	दंतो

शब्द-विचार

दो या दो से अधिक वर्णो से बने ऐसे समूह को 'शब्द' कहते है, जिसका कोई सार्थक अर्थ निकल रहा हो। दूसरे शब्दों में वर्णों के सार्थक ध्वनि समूह

को शब्द कहते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा वह समाज में भाषा के माध्यम से परस्पर विचार/विनिमय करता है। इस प्रक्रिया में जो वाक्य प्रयुक्त हैं, उनमें सार्थक शब्दों का प्रयोग करता है। शब्द किसी भाषा के प्राण हैं। बिना शब्दों के भाषा की कल्पना करना असंभव है। शब्द भाषा की एक स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई है, जो एक निश्चित अर्थ का बोध कराती है।

शब्द-भेद

शब्द का वर्गीकरण काई आधारों पर किया जाता है। जैसे–अर्थ के आधार पर, उत्पत्ति के आधार पर, बनावट के विचार से, प्रयोग के विचार से आदि।

व्युत्पत्ति (बनावट) के आधार पर शब्द के निम्नलिखित तीन भेद हैं–

1. रूढ़

जो शब्द किन्हीं अन्य शब्दों के योग से न बने हों और किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हों तथा जिनके टुकड़ों का कोई अर्थ नहीं होता, वे रूढ़ कहलाते हैं। जैसे-कल, पर। इनमें क, ल, प, र का टुकड़े करने पर कुछ अर्थ नहीं हैं। अत: ये निरर्थक हैं।

2. यौगिक

जो शब्द कई सार्थक शब्दों के मेल से बने हों, वे यौगिक कहलाते हैं। जैसे-देवालय=देव़आलय, राजपुरुष=राज़पुरुष, हिमालय=हिम़आलय, देवदूत=देव़दूत आदि। ये सभी शब्द दो सार्थक शब्दों के मेल से बने हैं।

3. योगरूढ़

वे शब्द, जो यौगिक तो हैं, किन्तु सामान्य अर्थ को न प्रकट कर किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हैं, योगरूढ़ कहलाते हैं। जैसे-पंकज, दशानन आदि। पंकज=पंक़ज (कीचड़ में उत्पन्न होने वाला) सामान्य अर्थ में प्रचलित न होकर कमल के अर्थ में रूढ़ हो गया है। अत: पंकज शब्द योगरूढ़ है। इसी प्रकार दश (दस) आनन (मुख) वाला रावण के अर्थ में प्रसिद्ध है।

उत्पत्ति के आधार पर शब्द-भेद

उत्पत्ति के आधार पर शब्द के निम्नलिखित चार भेद हैं–

1. तत्सम- जो शब्द संस्कृत भाषा से हिन्दी में बिना किसी परिवर्तन के ले लिए गए हैं वे तत्सम कहलाते हैं। जैसे-अग्नि, क्षेत्र, वायु, रात्रि, सूर्य आदि।
2. तद्भव- जो शब्द रूप बदलने के बाद संस्कृत से हिन्दी में आए हैं वे तद्भव कहलाते हैं। जैसे-आग (अग्नि), खेत(क्षेत्र), रात (रात्रि), सूरज (सूर्य) आदि।
3. देशज- जो शब्द क्षेत्रीय प्रभाव के कारण परिस्थिति व आवश्यकतानुसार बनकर प्रचलित हो गए हैं वे देशज कहलाते हैं। जैसे-पगड़ी, गाड़ी, थैला, पेट, खटखटाना आदि।
4. विदेशी या विदेशज– विदेशी जातियों के संपर्क से उनकी भाषा के बहुत से शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे शब्द विदेशी अथवा विदेशज कहलाते हैं। जैसे–स्कूल, अनार, आम, कैंची, अचार, पुलिस, टेलीफोन, रिक्शा आदि। ऐसे कुछ विदेशी शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है।

हिन्दी में अंग्रेजी, यूनानी, अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा चीनी आदि भाषाओं के शब्द प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों की एक संक्षिप्त सूची नीचे दी गई है–

अंग्रेजी–कॉलेज, पैंसिल, रेडियो, टेलीविजन, डॉक्टर, लैटरबक्स, पैन, टिकट, मशीन, सिगरेट, साइकिल, बोतल आदि।

फारसी–अनार, चश्मा, जमींदार, दुकान, दरबार, नमक, नमूना, बीमार, बरफ, रूमाल, आदमी, चुगलखोर, गंदगी, चापलूसी आदि।

अरबी–औलाद, अमीर, कत्ल, कलम, कानून, खत, फकीर, रिश्वत, औरत, कैदी, मालिक, गरीब आदि।

तुर्की–कैंची, चाकू, तोप, बारूद, लाश, दारोगा, बहादुर आदि।

पुर्तगाली–अचार, आलपीन, कारतूस, गमला, चाबी, तिजोरी, तौलिया, फीता, साबुन, तंबाकू, कॉफी, कमीज आदि।

फ्रांसीसी–पुलिस, कार्टून, इंजीनियर, कर्फ्यू, बिगुल आदि।

चीनी–तूफान, लीची, चाय, पटाखा आदि।

यूनानी–टेलीफोन, टेलीग्राफ, ऐटम, डेल्टा आदि।

जापानी–रिक्शा आदि।

प्रयोग के आधार पर शब्द-भेद

प्रयोग के आधार पर शब्द के निम्नलिखित आठ भेद है–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. क्रिया-विशेषण
6. संबंधबोधक
7. समुच्चयबोधक
8. विस्मयादिबोधक

इन उपर्युक्त आठ प्रकार के शब्दों को भी विकार की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. विकारी शब्द–जिन शब्दों का रूप-परिवर्तन होता रहता है वे विकारी शब्द कहलाते हैं। जैसे-कुत्ता, कुत्ते, कुत्तों, मैं मुझे, हमें अच्छा, अच्छे खाता है, खाती है, खाते हैं। इनमें संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं।

2. अविकारी शब्द–जिन शब्दों के रूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता है वे अविकारी शब्द कहलाते हैं। जैसे–यहाँ, किन्तु, नित्य, और, हे अरे आदि। इनमें क्रिया-विशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक आदि हैं।

अर्थ की दृष्टि से शब्द-भेद

अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं–

1. सार्थक शब्द

जिन शब्दों का कुछ-न-कुछ अर्थ हो वे शब्द सार्थक शब्द कहलाते हैं। जैसे-रोटी, पानी, ममता, डंडा आदि।

2. निरर्थक शब्द

जिन शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता है वे शब्द निरर्थक कहलाते हैं। जैसे–रोटी-वोटी, पानी-वानी, डंडा-वंडा इनमें वोटी, वानी, वंडा आदि निरर्थक शब्द हैं।

विशेष–निरर्थक शब्दों पर व्याकरण में कोई विचार नहीं किया जाता है।

पद-विचार

सार्थक वर्ण या वर्णों के समूह को शब्द कहा जाता है। शब्द साभिप्राय होते हैँ। जब कोई सार्थक शब्द वाक्य में प्रयुक्त होता है तब उसे 'पद' कहते हैं। व्याकरण के नियमों के अनुसार विभक्ति, वचन, लिग, काल आदि की योग्यता रखने वाला वर्णों का समूह 'पद' कहलाता है। जैसे–राम विद्यालय जायेगा। यह वाक्य 'राम', 'विद्यालय' और 'जायेगा' तीन पदों से बना है।

हिन्दी में पद पाँच प्रकार के होते हैं–

1. संज्ञा
2. सर्वनाम
3. विशेषण
4. क्रिया
5. अव्यय

1. संज्ञा

भाषा विज्ञान में, संज्ञा एक विशाल, मुक्त शाब्दिक वर्ग का सदस्य है, जिसके सदस्य वाक्यांश के कर्ता के मुख्य शब्द, क्रिया के कर्म, या पूर्वसर्ग के कर्म के रूप में मौजूद हो सकते हैं। शाब्दिक वर्गों को इस संदर्भ में परिभाषित किया जाता है कि उनके सदस्य अभिव्यक्तियों के अन्य प्रकारों के साथ किस तरह संयोजित होते हैं। संज्ञा के लिए भाषावार वाक्यात्मक नियम भिन्न होते हैं। अंग्रेजी में, संज्ञा को उन शब्दों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो उपपद और गुणवाचक विशेषणों के साथ होते हैं और संज्ञा वाक्यांश के शीर्ष के रूप में कार्य कर सकते हैं।

संज्ञा के प्रकार– संज्ञा के तीन भेद हैं–

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से किसी विशेष, व्यक्ति, प्राणी, वस्तु अथवा स्थान का बोध हो उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–जयप्रकाश नारायण, श्रीकृष्ण, रामायण, ताजमहल, कुतुबमीनार, लालकिला हिमालय आदि।

2. जातिवाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से उसकी संपूर्ण जाति का बोध हो उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–मनुष्य, नदी, नगर, पर्वत, पशु, पक्षी, लड़का, कुत्ता, गाय, घोड़ा, भैंस, बकरी, नारी, गाँव आदि।

3. भाववाचक संज्ञा–जिस संज्ञा शब्द से पदार्थों की अवस्था, गुण–दोष, धर्म आदि का बोध हो उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–बुढ़ापा, मिठास, बचपन, मोटापा, चढ़ाई, थकावट आदि।

विशेष वक्तव्य–कुछ विद्वान अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव के कारण संज्ञा शब्द के दो भेद और बतलाते हैं–

1. समुदायवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा शब्दों से व्यक्तियों, वस्तुओं आदि के समूह का बोध हो उन्हें समुदायवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–सभा, कक्षा, सेना, भीड़, पुस्तकालय दल आदि।

2. द्रव्यवाचक संज्ञा–जिन संज्ञा–शब्दों से किसी धातु, द्रव्य आदि पदार्थों का बोध हो उन्हें द्रव्यवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–घी, तेल, सोना, चाँदी, पीतल, चावल, गेहूँ, कोयला, लोहा आदि।

इस प्रकार संज्ञा के पाँच भेद हो गए, किन्तु अनेक विद्वान समुदायवाचक और द्रव्यवाचक संज्ञाओं को जातिवाचक संज्ञा के अंतर्गत ही मानते हैं, और यही उचित भी प्रतीत होता है।

भाववाचक संज्ञा बनाना–भाववाचक संज्ञाएँ चार प्रकार के शब्दों से बनती हैं। जैसे–

1. जातिवाचक संज्ञाओं से

दास दासता
पंडित पांडित्य
बंधु बंधुत्व
क्षत्रिय क्षत्रियत्व
पुरुष पुरुषत्व
प्रभु प्रभुता
पशु पशुता, पशुत्व
ब्राह्मण ब्राह्मणत्व
मित्र मित्रता
बालक बालकपन
बच्चा बचपन
नारी नारीत्व

2. सर्वनाम से

अपना अपनापन, अपनत्व निज निजत्व, निजता
पराया परायापन
स्व स्वत्व
सर्व सर्वस्व
अहं अहंकार
मम ममत्व, ममता

3. विशेषण से

मीठा मिठास
चतुर चातुर्य, चतुराई
मधुर माधुर्य
सुंदर सौंदर्य, सुंदरता
निर्बल निर्बलता सफेद सफेदी
हरा हरियाली
सफल सफलता
प्रवीण प्रवीणता
मैला मैल
निपुण निपुणता
खट्टा खटास

4. क्रिया से

खेलना खेल
थकना थकावट
लिखना लेख, लिखाई
हँसना हँसी
लेना-देना लेन-देन
पढ़ना पढ़ाई
मिलना मेल
चढ़ना चढ़ाई
मुसकाना मुसकान

कमाना कमाई
उतरना उतराई
उड़ना उड़ान
रहना-सहना रहन-सहन
देखना-भालना देख-भाल

संज्ञा के विकारक तत्त्व

लड़का से पुरुष जाति का बोध होता है, वहीं लड़की से स्त्री जाति का बोध होता है। इस तरह लिंग का अर्थ है चिन्ह, जिस चिन्ह से यह बोध हो कि कोई संज्ञा-शब्द पुरुष जाति का है अथवा स्त्री जाति का।

लिंग के भेद–लिंग दो हैं–

1. पुल्लिंग–वैसे शब्द जो पुरुष जाति का बोध कराते हैं पुल्लिंग कहलाते हैं। जैसे–हाथी, कुत्ता, बालक, घोड़ा, भारत, पलंग, पैन, सूर्य, दिन आदि।

2. स्त्रीलिंग–वैसे शब्द जो स्त्री जाति का बोध कराते हैं उन्हें स्त्रीलिंग कहलाते हैं। जैसे–शेरनी, बालिका, गाय, कुर्सी, पैन्सिल, रात, चीनी, माटी, थाली, कटोरी, कठौती, प्याली, चाँदी, चौकी, पेटारी, खली, कुर्सी, काँटी, सीपी, पेटी, बदरी, लकड़ी, साड़ी आदि।

लिंग

व्याकरण के सन्दर्भ में लिंग से तात्पर्य भाषा के ऐसे प्रावधानों से है, जो वाक्य के कर्ता के स्त्री/पुरुष/निर्जीव होने के अनुसार बदल जाते हैं। विश्व की लगभग एक चौथाई भाषाओं में किसी न किसी प्रकार की लिंग व्यवस्था है। हिन्दी में दो लिंग होते हैं (पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग) जबकि संस्कृत में तीन लिंग होते हैं- पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग। फारसी जैसे भाषाओं में लिंग होता नहीं, और भी अंग्रेजी में लिंग सिर्फ सर्वनाम में होता है।

परिभाषा

शब्द के जिस रूप से किसी व्यक्ति, वस्तु आदि के पुरुष जाति अथवा स्त्री जाति के होने का ज्ञान हो उसे लिंग कहते हैं। जैसे-लड़का, लड़की, नर, नारी आदि। इनमें 'लड़का' और 'नर' पुल्लिंग तथा लड़की और 'नारी' स्त्रीलिंग हैं।

हिन्दी में लिंग के दो भेद हैं–

1. पुल्लिंग

जिन संज्ञा शब्दों से पुरुष जाति का बोध हो अथवा जो शब्द पुरुष जाति के अंतर्गत माने जाते हैं वे पुल्लिंग हैं। जैसे–कुत्ता, लड़का, पेड़, सिंह, बैल, घर आदि।

2. स्त्रीलिंग

जिन संज्ञा शब्दों से स्त्री जाति का बोध हो अथवा जो शब्द स्त्री जाति के अंतर्गत माने जाते हैं वे स्त्रीलिंग हैं। जैसे–गाय, घड़ी, लड़की, कुरसी, छड़ी, नारी आदि।

पुल्लिंग की पहचान–पुल्लिंग की पहचान निम्न प्रकार से की जा सकती है–

1. आ, आव, पा, पन न ये प्रत्यय जिन शब्दों के अंत में हों वे प्रायः पुल्लिंग होते हैं। जैसे- मोटा, चढ़ाव, बुढ़ापा, लड़कपन लेन-देन।
2. पर्वत, मास, वार और कुछ ग्रहों के नाम पुल्लिंग होते हैं जैसे-विंध्याचल, हिमालय, वैशाख, सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, राहु, केतु (ग्रह)।
3. पेड़ों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-पीपल, नीम, आम, शीशम, सागौन, जामुन, बरगद आदि।
4. अनाजों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-बाजरा, गेहूँ, चावल, चना, मटर, जौ, उड़द आदि।
5. द्रव पदार्थों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-पानी, सोना, ताँबा, लोहा, घी, तेल आदि।
6. रत्नों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-हीरा, पन्ना, मूँगा, मोती माणिक आदि।
7. देह के अवयवों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-सिर, मस्तक, दाँत, मुख, कान, गला, हाथ, पाँव, होंठ, तालु, नख, रोम आदि।
8. जल, स्थान और भूमंडल के भागों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-समुद्र, भारत, देश, नगर, द्वीप, आकाश, पाताल, घर, सरोवर आदि।
9. वर्णमाला के अनेक अक्षरों के नाम पुल्लिंग होते हैं। जैसे-अ, उ, ए, ओ, क, ख, ग, घ, च, छ, य, र, ल, व, श आदि।

स्त्रीलिंग की पहचान–पुल्लिंग की पहचान निम्न प्रकार से की जा सकती है–

1. जिन संज्ञा शब्दों के अंत में ख होते है, वे स्त्रीलिंग कहलाते हैं। जैसे–ईख, भूख, चोख, राख, कोख, लाख, देखरेख आदि।
2. जिन भाववाचक संज्ञाओं के अंत में ट, वट, या हट होता है, वे स्त्रीलिंग कहलाती हैं। जैसे–झंझट, आहट, चिकनाहट, बनावट, सजावट आदि।
3. अनुस्वारांत, ईकारांत, ऊकारांत, तकारांत, सकारांत संज्ञाएँ स्त्रीलिंग कहलाती है। जैसे–रोटी, टोपी, नदी, चिट्ठी, उदासी, रात, बात, छत, भीत, लू, बालू, दारू, सरसों, खड़ाऊँ, प्यास, वास, साँस आदि।
4. भाषा, बोली और लिपियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–हिन्दी, संस्कृत, देवनागरी, पहाड़ी, तेलुगु पंजाबी गुरुमुखी।
5. जिन शब्दों के अंत में इया आता है वे स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–कुटिया, खटिया, चिड़िया आदि।
6. नदियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती आदि।
7. तारीखों और तिथियों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–पहली, दूसरी, प्रतिपदा, पूर्णिमा आदि।
8. पृथ्वी ग्रह स्त्रीलिंग होते हैं।
9. नक्षत्रों के नाम स्त्रीलिंग होते हैं। जैसे–अश्विनी, भरणी, रोहिणी आदि।

शब्दों का लिंग-परिवर्तन

हिन्दी में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग से पुल्लिंग बनाने के कुछ सामान्य नियम हैं। उन नियमों को सोदाहरण संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. कुछ आकारान्त पुल्लिंग शब्दों के अंतिम 'आ' को 'इया' करके स्त्रीलिंग बनाया जाता है। ऐसे शब्दों में कहीं–कहीं पलना स्वर ह्रस्व हो जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
खाट	खटिया	डिब्बा	डिबिया
बाट	बटिया	घड़ा	घड़िया
गुड्डा	गुड़िया	चिड़ा	चिड़िया

गूजर	गुजरिया	कुत्ता	कुतिया
बच्छा	बछिया	बूढ़ा	बुढ़िया
चूहा	चुहिया	लोटा	लुटिया

2. शब्दों के अंतिम 'अ' को 'आ' करके स्त्रीलिंग बनाया जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**	**पुल्लिंग**	**स्त्रीलिंग**
प्रिय	प्रिया	सदस्य	सदस्या
अध्यक्ष	अध्यक्षा	छात्र	छात्रा
आर्य	आर्या	सुत	सुता
मूर्ख	मूर्खा	शिष्य	शिष्या
वृद्ध	वृद्धा	बाल	बाला

3. अकारान्त अथवा आकारान्त पुल्लिंग शब्दों के अंतिम अ या आ को 'ई' करने से स्त्रीलिंग बन जाता है। उदाहरण–

पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**	**पुल्लिंग**	**स्त्रीलिंग**
देव	देवी	पुत्र	पुत्री
नाना	नानी	मामा	मामी
बकरा	बकरी	कुमार	कुमारी
घोड़ा	घोड़ी	मौसा	मौसी
गीदड़	गीदड़ी	कबूतर	कबूतरी
लड़का	लड़की	किन्नर	किन्नरी
गधा	गधी	दूत	दूती
राक्षस	राक्षसी	दादा	दादी
हरिण	हरिणी	चींटा	चींटी
पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**	**पुल्लिंग**	**स्त्रीलिंग**
चाचा	चाची	साला	साली
सुन्दर	सुन्दरी	भांजा	भांजी
कमलनयन	कमलनयनी	दास	दासी
ब्राह्मण	ब्राह्मणी	पाषाण	पाषाणी
पोता	पोती	भतीजा	भतीजी
भूत	भूतनी	सखा	सखी

4. कुछ संज्ञा शब्दों के अंतिम स्वर को 'आनी' या 'आणी' करके स्त्रीलिंग बनाया जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
पठान	पठानी	देवर	देवरानी
नौकर	नौकरानी	क्षत्रिय	क्षत्रियाणी
मास्टर	मास्टरानी	जेठ	जेठानी
इन्द्र	इन्द्राणी	सेठ	सेठानी

5. 'अक' अंत वाले शब्दों को 'इका' करके स्त्रीलिंग बनाया जाता है। यथा–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
शिक्षक	शिक्षिका	सेवक	सेविका
निर्देशक	निर्देशिका	नायक	नायिका
अध्यापक	अध्यापिका	धावक	धाविका
बालक	बालिका	पाठक	पाठिका
गायक	गायिका	लेखक	लेखिका

6. व्यवसाय-सूचक तथा कुछ अन्य शब्दों के अंतिम अक्षर को 'इन' करके स्त्रीलिंग बनाया जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
साथी	साथिन	भिखारी	भिखारिन
मालिक	मालकिन	माली	मालिन
दूल्हा	दुल्हन	जुलाहा	जुलाहिन
धोबी	धोबिन	सुनार	सुनारिन
पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**	**पुल्लिंग**	**स्त्रीलिंग**
तेली	तेलिन	अभागा	अभागिन
हलवाई	हलवाइन	कहार	कहारिन
ग्वाला	ग्वालिन	नाई	नाइन

7. 'आन' अंत वाले कुछ संज्ञा शब्दों के अन्त में 'अती' लगाकर स्त्रीलिंग बनाया जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
गुणवान	गुणवती	श्रीमान	श्रीमती
रूपवान	रूपवती	बुद्धिमान	बुद्धिमती
महान	महती	भाग्यवान	भाग्यवती

8. कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका स्त्रीलिंग रूप पुल्लिंग से बहुत भिन्न हो जाता है। नीचे ऐसे शब्दों की एक सूची दी जा रही है–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
ससुर	सास	विद्वान	विदुषी
राजा	रानी	पिता	माता
भाई	बहन	विधुर	विधवा
बैल	गाय	वर	वधू
सम्राट	सम्राज्ञी	नर	नारी
महाराजा	महारानी	कवि	कवयित्री
युवक	युवती	साधु	साध्वी
आदमी	औरत	पुरुष	स्त्री

9. कुछ संज्ञा शब्दों में 'इनी' कर देने से स्त्रीलिंग बनाया जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
तपस्वी	तपस्विनी	एकाकी	एकाकिनी
अभिमानी	अभिमानिनी	यशस्वी	यशस्विनी
मनस्वी	मनस्विनी	योगी	योगिनी
मायावी	मायाविनी	हाथी	हथिनी
संन्यासी	संन्यासिनी	स्वामी	स्वामिनी

10. कतिपय संज्ञा शब्दों के अंत में 'ता' को 'त्री' करने से स्त्रीलिंग बनता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
कर्ता	कर्त्री	वक्ता	वक्त्री
अभिनेता	अभिनेत्री	नेता	नेत्री

11. कुछ संज्ञा शब्दों के अंत में 'नी' लगाने से स्त्रीलिंग बनता हैं। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
सिंह	सिंहनी	भूत	भूतनी
चोर	चोरनी	शेर	शेरनी
ऊँट	ऊँटनी	जाट	जाटनी
भील	भीलनी	मोर	मोरनी

12. कुछ शब्दों का प्रयोग प्राय: स्त्रीलिंग के रूप में ही होता है। पुल्लिंग बनाने के लिए ऐसे संज्ञा शब्दों से पूर्व 'नर' शब्द जोड़ दिया जाता है।

स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग
छिपकली	नर छिपकली	कोयल	नर कोयल
चील	नर चील	तितली	नर तितली
मक्खी	नर मक्खी	मछली	नर मछली
गिलहरी	नर गिलहरी		

13. कुछ शब्द ऐसे हैं, जो नित्य पुल्लिंग कहे जाते हैं, अर्थात् जिनका केवल पुल्लिंग रूप ही प्रचलित है। स्त्रीलिंग बनाने के लिए संज्ञा से पूर्व 'मादा' शब्द जोड़ दिया जाता है। जैसे–

पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
खरगोश	मादा खरगोश	खटमल	मादा खटमल
गरुड़	मादा गरुड़	बिच्छू	मादा बिच्छू
चीता	मादा चीता	उल्लू	मादा उल्लू
तोता	मादा तोता	बाज	मादा बाज

कुछ प्रचलित स्त्रीलिंग शब्दों की सूची

(सही लेखन के लिए आवश्यक)

अक्ल	क्षमा	झाड़	दया	भीख
अपील	क्षमता	झांक	दवा	भूख
आन	क्षीक	टंकार	दवात	ममता
आभा	गंगा	ठाट	दिवार	माला
आस	गंध	डंफ	दिशा	मिठास
आवाज	गर्माहट	डंक	दिखावट	मैल
आँख	घबराहट	डाल	दीया	यमुना
आँच	धनता	डाक	देह	याद

इति	चमक	जूँ	दौड़	रक्षा
इच्छा	चहक	डाह	धाक	रग
उषा	चाल	डायन	धार	रट
उष्णता	चाह	ढाल	धाह	राह
ऊष्णता	चाट	तलब	धूल	ललाट
कला	चिकनाहट	नस	ललक	कथा
चीख	ताक	नाद	लिपि	कविता

विशेष वक्तव्य–जो प्राणिवाचक सदा शब्द ही स्त्रीलिंग हैं अथवा जो सदा ही पुल्लिंग हैं उनके पुल्लिंग अथवा स्त्रीलिंग जताने के लिए उनके साथ 'नर' व 'मादा' शब्द लगा देते हैं। जैसे–

स्त्रीलिंग	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग	पुल्लिंग
मक्खी	नर मक्खी	कोयल	नर कोयल
गिलहरी	नर गिलहरी	मैना	नर मैना
तितली	नर तितली	बाज	मादा बाज
खटमल	मादा खटमल	चील	नर चील
कछुआ	नर कछुआ	कौआ	नर कौआ
भेड़िया	मादा भेड़िया	उल्लू	मादा उल्लू
मच्छर	मादा मच्छर		

वचन

भाषाविज्ञान में वचन (नम्बर) एक संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया आदि की व्याकरण सम्बन्धी श्रेणी है, जो इनकी संख्या की सूचना देती है (एक, दो, आदि)। अधिकांश भाषाओं में दो वचन ही होते हैं- एकवचन तथा बहुवचन , किन्तु संस्कृत तथा कुछ और भाषाओं में द्विवचन भी होता है।

वचन के भेद–हिन्दी में दो वचन होते हैं–

एकवचन

शब्द के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध हो, उसे एकवचन कहते हैं। जैसे-लड़का, गाय, सिपाही, बच्चा, कपड़ा, माता, माला, पुस्तक, स्त्री, टोपी बंदर, मोर आदि।

बहुवचन

शब्द के जिस रूप से अनेकता का बोध हो उसे बहुवचन कहते हैं। जैसे-लड़के, गायें, कपड़े, टोपियाँ, मालाएँ, माताएँ, पुस्तकें, वधुएँ, गुरुजन, रोटियाँ, स्त्रियाँ, लताएँ, बेटे आदि।

एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग

(क)आदर के लिए भी बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे-

(1) भीष्म पितामह तो ब्रह्मचारी थे।

(2) गुरुजी आज नहीं आये।

(3) शिवाजी सच्चे वीर थे।

(ख)बड़प्पन दर्शाने के लिए कुछ लोग वह के स्थान पर वे और मैं के स्थान हम का प्रयोग करते हैं जैसे-

(1) मालिक ने कर्मचारी से कहा, हम मीटिंग में जा रहे हैं।

(2) आज गुरुजी आए तो वे प्रसन्न दिखाई दे रहे थे।

(ग)केश, रोम, अश्रु, प्राण, दर्शन, लोग, दर्शक, समाचार, दाम, होश, भाग्य आदि ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है। जैसे-

(1) तुम्हारे केश बड़े सुन्दर हैं।

(2) लोग कहते हैं।

बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग

(क)तू एकवचन है जिसका बहुवचन है तुम किन्तु सभ्य लोग आजकल लोक-व्यवहार में एकवचन के लिए तुम का ही प्रयोग करते हैं जैसे-

(1) मित्र, तुम कब आए।

(2) क्या तुमने खाना खा लिया।

(ख)वर्ग, वृंद, दल, गण, जाति आदि शब्द अनेकता को प्रकट करने वाले हैं, किन्तु इनका व्यवहार एकवचन के समान होता है। जैसे-

(1) सैनिक दल शत्रु का दमन कर रहा है।

(2) स्त्री जाति संघर्ष कर रही है।

(ग)जातिवाचक शब्दों का प्रयोग एकवचन में किया जा सकता है। जैसे-

(1) सोना बहुमूल्य वस्तु है।

(2) मुंबई का आम स्वादिष्ट होता है।

बहुवचन बनाने के नियम

1. अकारांत वाले शब्दों में 'अ' के स्थान पर 'एँ' लगाकर बहुवचन बनाया जाता है। उदाहरण के लिए–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
चादर	चादरें	भैंस	भैंसें
गाय	गायें	पुस्तक	पुस्तकें
रात	रातें	आँख	आँखें
मेज	मेजें	बात	बातें
कमीज	कमीजें	शर्त	शर्तें
पलक	पलकें	तस्वीर	तस्वीरें
सड़क	सड़कें	बहन	बहनें

2. आकारांत वाले पुल्लिंग शब्दों में 'आ' को 'ए' करके बहुतवचन बनाया जाता है। यथा–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कुत्ता	कुत्ते	किला	किले
धागा	धागे	लोटा	लोटे
तौलिया	तौलिए	गधा	गधे
कुरता	कुरते	घोड़ा	घोड़े
बेटा	बेटे	चिमटा	चिमटे
कपड़ा	कपड़े	कौआ	कौए

3. आकारांत वाले स्त्रीलिंग शब्दों के आगे 'एँ' जोड़ने से बहुवचन बनता है। यथा–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
कला	कलाएँ	समस्या	समस्याएँ
कथा	कथाएँ	अध्यापिका	अध्यापिकाएँ
पत्रिका	पत्रिकाएँ	लता	लताएँ
वार्ता	वार्ताएँ	हवा	हवाएँ
शिक्षिका	शिक्षिकाएँ	माला	मालाएँ
मात्रा	मात्राएँ	कन्या	कन्याएँ
कविता	कविताएँ	महिला	महिलाएँ

4. 'ईकारांत' स्त्रीलिंग शब्दों के अंत में 'ई' को 'इयाँ' करके बहुवचन बनाया जाता है। जैसे–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
सखी	सखियाँ	थाली	थालियाँ
डाली	डालियाँ	मक्खी	मक्खियाँ
रोटी	रोटियाँ	मछली	मछलियाँ
तकली	तकलियाँ	बिजली	बिजलियाँ
चूड़ी	चूड़ियाँ	नदी	नदियाँ
बाली	बालियाँ	कलाई	कलाइयाँ
नाली	नालियाँ	पूरी	पूरियाँ
ताली	तालियाँ	पत्नी	पत्नियाँ
रानी	रानियाँ	बेटी	बेटियाँ

5. जिस स्त्रीलिंग शब्द के अंत में 'या' होता है उसमें 'या' को 'याँ' में बदल कर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
लुटिया	लुटियाँ	गुड़िया	गुड़ियाँ
कुतिया	कुतियाँ	चिड़िया	चिड़ियाँ
चुहिया	चुहियाँ	चुटिया	चुटियाँ

6. उकारांत और ऊकारांत शब्दों के अंत 'एँ' जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है। ऐसे शब्दों में 'ऊ' 'उ' में बदल जाता है। जैसे–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
बहू	बहुएँ	धातु	धातुएँ
वधू	वधुएँ	वस्तु	वस्तुएँ

7. कुछ शब्दों के अंत में गण, वृंद, जन, वर्ग, दल आदि लगाकर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मुनि	मुनिगण	विद्वान	विद्वज्जन
मतदाता	मतदातागण	शिक्षक	शिक्षग–वर्ग
लेखक	लेखकवृंद	कवि	कविगण
गुरु	गुरुजन	खग	खगवृंद

8. सर्वनाम शब्दों के बहुवचन रूप–

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
मैं	हम	तू	तुम
यह	ये	वह	वे
इस	इन	उस	उन
मेरा	हमारा	तेरा	तुम्हारा

नोट–कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके रूप दोनों वचनों में एक समान ही प्रयुक्त होते हैं, तथा 'गण' आदि लगाकर भी बहुवचन बनाए जाते हैं। जैसे–लेखक का बहुवचन लेखक भी होता है और लेखकवृंद भी।

कारक के साथ प्रयुक्त करते समय प्राय: एकवचन के अंत में 'ओं' लगाकर बहुवचन बनाया जाता है। जैसे–चिड़िया का बहुवचन है चिड़ियाँ, किन्तु कर्ता रूप में 'चिड़ियों' होगा? जैसे–चिड़ियों ने यह घोंसला बनाया है।

कारक

रूपविज्ञान के सन्दर्भ में, किसी वाक्य, मुहावरा या वाक्यांश में संज्ञा या सर्वनाम का क्रिया के साथ उनके सम्बन्ध के अनुसार रूप बदलना कारक कहलाता है। अर्थात् व्याकरण में संज्ञा या सर्वनाम शब्द की वह अवस्था जिसके द्वारा वाक्य में उसका क्रिया के साथ संबंध प्रकट होता है उसे कारक कहते हैं। संज्ञा या सर्वनाम का क्रिया से सम्बन्ध जिस रूप से जाना जाता है, उसे कारक कहते हैं। कारक यह इंगित करता है कि वाक्य में संज्ञा या सर्वनाम का काम क्या है। कारक कई रूपों में देखने को मिलता है।

कुछ भाषाओं में संज्ञा और सर्वनाम के अतिरिक्त विशेषण और क्रियाविशेषण (ऐडवर्ब) में भी विकार आते हैं। जैसे –'शीतलेन जलेन' (संस्कृत) में 'शीतलेन' विशेषण है।

विभिन्न भाषाओं में कारकों की संख्या तथा कारक के अनुसार शब्द का रूप-परिवर्तन भिन्न-भिन्न होता है। संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं में आठ कारक होते हैं। जर्मन भाषा में चार कारक हैं।

कारक विभक्ति–संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के बाद 'ने, को, से, के लिए', आदि जो चिह्न लगते हैं वे चिन्ह कारक विभक्ति कहलाते हैं।

कारक विभक्ति चिन्ह (परसर्ग)

हिन्दी में आठ कारक होते हैं। उन्हें विभक्ति चिन्हों सहित नीचे देखा जा सकता है–

कर्ता कारक	ने
कर्म कारक	को
करण कारक	से (द्वारा के अर्थ में)
सम्प्रदान कारक	को, के लिए
अपादान कारक	से (पृथकता के अर्थ में)
सम्बंध कारक	का, के, की
अधिकरण कारक	में, पर
सम्बोधन कारक	हे, अरे! अहो!

कारक चिन्ह स्मरण करने के लिए इस पद की रचना की गई हैं–

कर्ता ने अरु कर्म को, करण रीति से जान।
संप्रदान को, के लिए, अपादान से मान।।
का, के, की, संबंध हैं, अधिकरणादिक में मान।
रे ! हे ! हो ! संबोधन, मित्र धरहु यह ध्यान।।

विशेष–कर्ता से अधिकरण तक विभक्ति चिन्ह (परसर्ग) शब्दों के अंत में लगाए जाते हैं, किन्तु संबोधन कारक के चि–हे, रे, आदि प्रायः शब्द से पूर्व लगाए जाते हैं।

1. कर्ता कारक

जिस रूप से क्रिया (कार्य) के करने वाले का बोध होता है वह 'कर्ता' कारक कहलाता है। इसका विभक्ति–चिन्ह 'ने' है। इस 'ने' चिन्ह का वर्तमानकाल और भविष्यकाल में प्रयोग नहीं होता है। इसका सकर्मक धातुओं के साथ भूतकाल में प्रयोग होता है। जैसे– 1.राम ने रावण को मारा। 2.लड़की स्कूल जाती है।

पहले वाक्य में क्रिया का कर्ता राम है। इसमें 'ने' कर्ता कारक का विभक्ति–चिऋ है। इस वाक्य में 'मारा' भूतकाल की क्रिया है। 'ने' का प्रयोग प्रायः भूतकाल में होता है। दूसरे वाक्य में वर्तमानकाल की क्रिया का कर्ता लड़की है। इसमें 'ने' विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है।

विशेष–

(1) भूतकाल में अकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ भी ने परसर्ग (विभक्ति चिह्न) नहीं लगता है। जैसे-वह हँसा।

(2) वर्तमानकाल व भविष्यतकाल की सकर्मक क्रिया के कर्ता के साथ ने परसर्ग का प्रयोग नहीं होता है। जैसे-वह फल खाता है। वह फल खाएगा।

(3) कभी-कभी कर्ता के साथ 'को' तथा 'स' का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे–

(अ) बालक को सो जाना चाहिए। (आ) सीता से पुस्तक पढ़ी गई।

(इ) रोगी से चला भी नहीं जाता। (ई) उससे शब्द लिखा नहीं गया।

2. कर्म कारक

क्रिया के कार्य का फल जिस पर पड़ता है, वह कर्म कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिन्ह 'को' है। यह चिन्ह भी बहुत-से स्थानों पर नहीं लगता। जैसे- 1. मोहन ने साँप को मारा। 2. लड़की ने पत्र लिखा। पहले वाक्य में 'मारने' की क्रिया का फल साँप पर पड़ा है। अत: साँप कर्म कारक है। इसके साथ परसर्ग 'को' लगा है।

दूसरे वाक्य में 'लिखने' की क्रिया का फल पत्र पर पड़ा। अत: पत्र कर्म कारक है। इसमें कर्म कारक का विभक्ति चिन्ह 'को' नहीं लगा।

3. करण कारक

कर्त्ता जिस माध्यम, साधन या उपकरण से क्रिया सम्पन्न करता है, उसे करण कहते हैं। इसका चिन्ह 'से' अथवा 'द्वारा' है। उदाहरण–

राम ने रावण को बाण से मारा। सोहन बस से पटना गया।

प्रथम वाक्य में कर्ता राम ने रावण को मारने के लिए बाण को साधन के रूप में प्रयोग किया और दूसरे वाक्य में यात्रा का माध्यम है बस। अत: 'बाण' तथा 'बस' करण कारक हैं।

4. संप्रदान कारक

4. सम्प्रदान कारक–वाक्य के जिस शब्द से जिसके लिए कार्य किया जाए, उसका बोध कराने वाला शब्द सम्प्रदान कारक कहलाता है। इसका परसर्ग 'के लिए' है। उदाहरण देखिए–

बच्चे के लिए दूध लाओ।

मैं पूजा के लिए फूल लाया हूँ।

उपर्युक्त वाक्यों में 'बच्चे के लिए' और 'पूजा के लिए' से ज्ञात होता है कि दूध या फूल लाने की क्रिया किसके लिए की गई है। ये सम्प्रदान कारक के उदाहरण हैं।

5. अपादान कारक

संज्ञा के जिस रूप से एक वस्तु का दूसरी से अलग होना पाया जाए वह अपादान कारक कहलाता है। इसका विभक्ति-चिन्ह 'से' है। जैसे- 1.बच्चा छत से गिर पड़ा। 2.संगीता घोड़े से गिर पड़ी।

इन दोनों वाक्यों में 'छत से' और घोड़े 'से' गिरने में अलग होना प्रकट होता है। अत: घोड़े से और छत से अपादान कारक हैं।

6. संबंध कारक

शब्द के जिस रूप से किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु से संबंध प्रकट हो वह संबंध कारक कहलाता है। इसका विभक्ति चिन्ह 'का', 'के', 'की', 'रा', 'रे', 'री' है। जैसे- 1.यह राधेश्याम का बेटा है। 2.यह कमला की गाय है।

इन दोनों वाक्यों में 'राधेश्याम का बेटे' से और 'कमला का' गाय से संबंध प्रकट हो रहा है। अत: यहाँ संबंध कारक है।

7. अधिकरण कारक

शब्द के जिस रूप से क्रिया के आधार का बोध होता है उसे अधिकरण कारक कहते हैं। इसके विभक्ति-चिन्ह 'में', 'पर' हैं। जैसे- 1.भँवरा फूलों पर मँडरा रहा है। 2.कमरे में टी.वी. रखा है।

इन दोनों वाक्यों में 'फूलों पर' और 'कमरे में' अधिकरण कारक है।

8. संबोधन कारक

संज्ञा अथवा सर्वनाम के जिस रूप से किसी को पुकारने या उसे सम्बोधित करने का बोध हो, उसे सम्बोधन कारक कहते हैं। इसका विभक्ति चिऋ 'हो!, अरे!, अहो!, ओ!,' आदि हैं। उदाहरण–

अरे राम! तुम कहाँ जा रहे हो?
हे भगवान्! मेरी मदद करो।
अहो! हम मैच जीत गये।

'अरे राम!', 'हे भगवान!' और 'अहो' से किसी को पुकारने, या संबोधित करने का बोध होता है, अतः यह सम्बोधन कारक है। सम्बोधन कारक का प्रयोग कारक चिह्न रहित भी होता है। उदाहरण–

भाई! तुम वहाँ क्या कर रहे हो?
लड़कियों! पंक्ति में खड़े हो जाओ।

सर्वनाम

जब हम किसी के विषय में कुछ कह रहे होते हैं तो वाक्य में बार-बार उसके नाम का प्रयोग अटपटा लगता है। जैसे–महात्मा गांधी के विषय में कुछ कहना है तो वाक्य यदि कुछ इस तरह से बनाये जायें–''महत्मा गांधी को राष्ट्रपिता कहा जाता है। महात्मा गांधी देश को आजाद कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गांधी सत्य और अहिंसा के पूजारी थे।'' तो अटपटा लगता है। लेकिन यदि इसे इस तरह से प्रस्तुत किया जाए कि ''महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता कहा जाता है। उन्होंने देश को आजाद कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे सत्य और अहिंसा के पूजारी थे।'' यह पढ़ने-सुनने में सहज और स्वाभाविक लगता है। संज्ञा के स्थान पर लगने वाले ऐसे शब्दों को सर्वनाम कहते हैं।

सर्वनाम के भेद- सर्वनाम के छह भेद हैं–

1. पुरुषवाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम का प्रयोग वक्ता या लेखक स्वयं अपने लिए अथवा श्रोता या पाठक के लिए अथवा किसी अन्य के लिए करता है वह पुरुषवाचक सर्वनाम कहलाता है। पुरुषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते हैं-

(1) उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम- जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला अपने लिए करे, उसे उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-मैं, हम, मुझे, हमारा आदि।

(2) मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम- जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला सुनने वाले के लिए करे, उसे मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-तू, तुम, तुझे, तुम्हारा आदि।

(3) अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम- जिस सर्वनाम का प्रयोग बोलने वाला सुनने वाले के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष के लिए करे उसे अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-वह, वे, उसने, यह, ये, इसने, आदि।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम

जो सर्वनाम किसी व्यक्ति वस्तु आदि की ओर निश्चयपूर्वक संकेत करें वे निश्चयवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। इनमें 'यह', 'वह', 'वे' सर्वनाम शब्द किसी विशेष व्यक्ति आदि का निश्चयपूर्वक बोध करा रहे हैं, अत: ये निश्चयवाचक सर्वनाम है।

3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम

जिससे अनिश्चित होने का बोध हो अथवा जो सर्वनाम किसी वस्तु या व्यक्ति की ओर ऐसे संकेत करें कि उनकी स्थिति अनिश्चित या अस्पष्ट रहे, उन्हें अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। उदाहरण के लिए कोई, किसी, कुछ आदि।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम का वाक्यों में प्रयोग–

राधा! आज किसी का फोन आया था।

सड़क पर कुछ गिर गया है।

यहाँ 'किसी' और 'कुछ' अनिश्चितता का बोध कराने वाले सर्वनाम हैं।

4. संबंधवाचक सर्वनाम

परस्पर एक-दूसरी बात का संबंध बतलाने के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग होता है उन्हें संबंधवाचक सर्वनाम कहते हैं। इनमें 'जो', 'वह', 'जिसकी', 'उसकी', 'जैसा', 'वैसा'-ये दो-दो शब्द परस्पर संबंध का बोध करा रहे हैं। ऐसे शब्द संबंधवाचक सर्वनाम कहलाते हैं।

5. प्रश्नवाचक सर्वनाम

जो सर्वनाम संज्ञा शब्दों के स्थान पर तो आते ही है, किन्तु वाक्य को प्रश्नवाचक भी बनाते हैं वे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहलाते हैं। जैसे-क्या, कौन आदि। इनमें 'क्या' और 'कौन' शब्द प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं, क्योंकि इन सर्वनामों के द्वारा वाक्य प्रश्नवाचक बन जाते हैं।

6. निजवाचक सर्वनाम

जिससे स्वयं या निज का बोध हो अथवा जब वक्ता अपने लिए 'आप' या 'अपने आप' का प्रयोग करता है, वह निजवाचक सर्वनाम माना जाता है।

निजवाचक सर्वनाम में वाक्यों का प्रयोग–

अपना कार्य मैं आप ही कर लूँगा।

अपनी हालत के बारे में वह आप ही नहीं सोचता।

इन वाक्यों में 'आप' निजवाचक सर्वनाम हैं।

सर्वनाम शब्दों के विशेष प्रयोग

(1) आप, वे, ये, हम, तुम शब्द बहुवचन के रूप में हैं, किन्तु आदर प्रकट करने के लिए इनका प्रयोग एक व्यक्ति के लिए भी होता है।

(2) 'आप' शब्द स्वयं के अर्थ में भी प्रयुक्त हो जाता है। जैसे-मैं यह कार्य आप ही कर लूँगा।

विशेषण

संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। जैसे–अच्छा लड़का, तीन पुस्तकें, नई कलम इत्यादि। इनमे अच्छा, तीन और नई शब्द विशेषण है, जो विशेष्य की विशेषता बतलाते हैं।

विशेष्य–जिस संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्द की विशेषता बताई जाए वह विशेष्य कहलाता है। यथा- गीता सुन्दर है। इसमें 'सुन्दर' विशेषण है और 'गीता' विशेष्य है। विशेषण शब्द विशेष्य से पूर्व भी आते हैं और उसके बाद भी।

पूर्व में, जैसे- (1) थोड़ा-सा जल लाओ। (2) एक मीटर कपड़ा ले आना।

बाद में, जैसे- (1) यह रास्ता लंबा है। (2) खीरा कड़वा है।

विशेषण के भेद–विशेषण के चार भेद हैं–

1. गुणवाचक विशेषण

जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा अथवा सर्वनाम शब्दों के गुण-दोष का बोध हो वे गुणवाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे–

(1) भाव- अच्छा, बुरा, कायर, वीर, डरपोक आदि।

(2) रंग- लाल, हरा, पीला, सफेद, काला, चमकीला, फीका आदि।

(3) दशा- पतला, मोटा, सूखा, गाढ़ा, पिघला, भारी, गीला, गरीब, अमीर, रोगी, स्वस्थ, पालतू आदि।
(4) आकार- गोल, सुडौल, नुकीला, समान, पोला आदि।
(5) समय- अगला, पिछला, दोपहर, संध्या, सवेरा आदि।
(6) स्थान- भीतरी, बाहरी, पंजाबी, जापानी, पुराना, ताजा, आगामी आदि।
(7) गुण- भला, बुरा, सुन्दर, मीठा, खट्टा, दानी, सच, झूठ, सीधा आदि।
(8) दिशा- उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी आदि।

2. परिमाणवाचक विशेषण

जिन विशेषण शब्दों से संज्ञा या सर्वनाम की मात्रा अथवा नाप-तोल का ज्ञान हो वे परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं। परिमाणवाचक विशेषण के दो उपभेद है–

(1)निश्चित परिमाणवाचक विशेषण- जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की निश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे–

(क) मेरे सूट में साढ़े तीन मीटर कपड़ा लगेगा।
(ख) दस किलो चीनी ले आओ।
(ग) दो लिटर दूध गरम करो।

(2)अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण- जिन विशेषण शब्दों से वस्तु की अनिश्चित मात्रा का ज्ञान हो। जैसे–

(क) थोड़ी-सी नमकीन वस्तु ले आओ।
(ख) कुछ आम दे दो।
(ग) थोड़ा-सा दूध गरम कर दो।

3. संख्यावाचक विशेषण

2. संख्यावाचक विशेषण–जो विशेषण विशेष्य (वस्तु या व्यक्ति) की संख्या का बोध कराते हैं, उन्हें संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। उदाहरण–

राधा के पास पन्द्रह पेंसिल हैं।
थोड़ा पानी पिलादो।
कुछ खाने को दो।
इन वाक्यों में 'पन्द्रह', 'थोड़ा' और 'कुछ' संख्यावाचक विशेषण हैं।
संख्यावाचक विशेषण के दो उपभेद हैं–

(क) निश्चित संख्यावाचक विशेषण

(ख) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण

(क) निश्चित संख्यावाचक विशेषण–जो विशेषण एक निश्चित संख्या या क्रम के बोधक हों, उन्हें निश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। उदाहरण के लिए–एक, दो, सातवाँ, सौवाँ, आदि। ये चार प्रकार के हैं–

(i) गणनावाचक–जो विशेषण गिनती या गणना का बोध कराएँ। जैसे–एक, दो, दस, बीस आदि।

(ii) क्रमवाचक–वे विशेषण जो वस्तुओं या व्यक्तियों के क्रम (Order) का बोध कराएँ। जैसे–पाँचवाँ, बीसवाँ आदि।

(iii) आवृतिवाचक–जो विशेषण संख्या के गुणन का बोध कराएँ। जैसे–दुगुना, चौगुना आदि।

(iv) समूहवाचक या समुदायवाचक–वे विशेषण जो समूह या समुदाय के बोधक हों। जैसे–पाँचों, सातों आदि।

(ख) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण–जिस विशेषण से विशेष्य की निश्चित संख्या का ज्ञान न हो, उन्हें अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। उदाहरण के लिए–कुछ, थोड़े, अनेक, कई आदि।

नोट–कभी-कभी निश्चित संख्यावाचक विशेषण भी अनिश्चित संख्यावाचक बन जाते हैं। जैसे–

पेड़ पर तीस-चालीस आम थे।

सौ बार कहा है बदमाशी मत करो।

इन वाक्यों में तीस-चालीस या सौ निश्चित संख्या होने पर भी अनिश्चित बन गया हैं, क्योंकि यहाँ वक्ता का तात्पर्य अनिश्चित संख्या से ही है।

4. संकेतवाचक (निर्देशक) विशेषण

जो सर्वनाम संकेत द्वारा संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं वे संकेतवाचक विशेषण कहलाते हैं।

विशेष-क्योंकि संकेतवाचक विशेषण सर्वनाम शब्दों से बनते हैं, अतः ये सार्वनामिक विशेषण कहलाते हैं। इन्हें निर्देशक भी कहते हैं।

(1) परिमाणवाचक विशेषण और संख्यावाचक विशेषण में अंतर- जिन वस्तुओं की नाप-तोल की जा सके उनके वाचक शब्द परिमाणवाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे-'कुछ दूध लाओ'। इसमें 'कुछ' शब्द

तोल के लिए आया है। इसलिए यह परिमाणवाचक विशेषण है। 2.जिन वस्तुओं की गिनती की जा सके उनके वाचक शब्द संख्यावाचक विशेषण कहलाते हैं। जैसे-कुछ बच्चे इधर आओ। यहाँ पर 'कुछ' बच्चों की गिनती के लिए आया है। इसलिए यह संख्यावाचक विशेषण है। परिमाणवाचक विशेषणों के बाद द्रव्य अथवा पदार्थवाचक संज्ञाएँ आएँगी जबकि संख्यावाचक विशेषणों के बाद जातिवाचक संज्ञाएँ आती हैं।

(2) सर्वनाम और सार्वनामिक विशेषण में अंतर- जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा शब्द के स्थान पर हो उसे सर्वनाम कहते हैं। जैसे-वह मुंबई गया। इस वाक्य में वह सर्वनाम है। जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा से पूर्व अथवा बाद में विशेषण के रूप में किया गया हो उसे सार्वनामिक विशेषण कहते हैं। जैसे-वह रथ आ रहा है। इसमें वह शब्द रथ का विशेषण है। अत: यह सार्वनामिक विशेषण है।

विशेषण की अवस्थाएँ

विशेषण शब्द किसी संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतलाते हैं। विशेषता बताई जाने वाली वस्तुओं के गुण-दोष कम-ज्यादा होते हैं। गुण-दोषों के इस कम-ज्यादा होने को तुलनात्मक ढंग से ही जाना जा सकता है। तुलना की दृष्टि से विशेषणों की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं-

(1) मूलावस्था—मूलावस्था में विशेषण का तुलनात्मक रूप नहीं होता है। वह केवल सामान्य विशेषता ही प्रकट करता है। जैसे- 1.सावित्री सुंदर लड़की है। 2.सुरेश अच्छा लड़का है। 3.सूर्य तेजस्वी है।

(2) उत्तरावस्था—जब दो व्यक्तियों या वस्तुओं के गुण-दोषों की तुलना की जाती है तब विशेषण उत्तरावस्था में प्रयुक्त होता है। जैसे- 1.रवीन्द्र चेतन से अधिक बुद्धिमान है। 2.सविता रमा की अपेक्षा अधिक सुन्दर है।

(3) उत्तमावस्था—उत्तमावस्था में दो से अधिक व्यक्तियों एवं वस्तुओं की तुलना करके किसी एक को सबसे अधिक अथवा सबसे कम बताया गया है। जैसे- 1.पंजाब में अधिकतम अन्न होता है। 2.संदीप निकृष्टतम बालक है।

विशेष—केवल गुणवाचक एवं अनिश्चित संख्यावाचक तथा निश्चित परिमाणवाचक विशेषणों की ही ये तुलनात्मक अवस्थाएँ होती हैं, अन्य विशेषणों की नहीं।

अवस्थाओं के रूप—

1. विशेषण से पूर्व 'अधिक', 'सबसे अधिक' लगाकर, जैसे–

मूलावस्था	*उत्तरावस्था*	*उत्तमावस्था*
छोटा	अधिक छोआ	सबसे छोटा
मोटा	अधिक मोटा	सबसे अधिक मोटा
अच्छा	अधिक अच्छा	सबसे अधिक अच्छा

2. विशेषण के साथ 'तर' तथा 'तम' लगाकर। जैसे–

मूलावस्था	*उत्तरावस्था*	*उत्तमावस्था*
स्पष्ट	स्पष्टतर	स्पष्टतम
निकट	निकटतर	निकटतम
प्रिय	प्रियतर	प्रियतम
दृढ़	दृढ़तर	दृढ़तम
न्यून	न्यूनतर	न्यूनतम
तीव्र	तीव्रतर	तीव्रतम
लघु	लघुतर	लघुतम
विशाल	विशालतर	विशालतम
अधिक	अधिकतर	अधिकतम
मृदु	मृदुतर	मृदुतम
गहन	गहनतर	गहनतम
बलवान	बलवत्तर	बलवत्तम
महान	महानतर	महानतम
सुन्दर	सुन्दरतर	सुन्दरतम
मधुर	मधुरतर	मधुरतम
उच्च	उच्चतर	उच्चतम

विशेषण-रचना–विशेषणों की रचना विभिन्न शब्दों से की जाती है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं–

शब्द	**विशेषण**	**शब्द**	**विशेषण**
कल्पना	कल्पित	भारत	भारतीय
ग़लती	ग़लत	दिन	दैनिक
वेद	वैदिक	मानव	मानवीय
दु:ख	दु:खी	पशु	पाशविक

ग्राम	ग्रामीण	स्वर्ग	स्वर्गीय
इच्छा	इच्छुक	अज्ञान	अज्ञानी
दया	दयालु	अभिमान	अभिमानी
पाप	पापी	अपमान	अपमानित
स्वर्ण	स्वर्णिम	इतिहास	ऐतिहासिक
ईश्वर	ईश्वरीय	चमक	चमकीला

प्रविशेषण–विशेषण की विशेषता बताने वाले शब्द को प्रविशेषण कहते हैं। जैसे–

राधा बहुत मोटी है।

इस वाक्य में 'मोटी' विशेषण है और 'बहुत' शब्द उससे पहले आकर उसकी विशेषता बता रहा है। यह प्रविशेषण है। कुछ अन्य उदाहरण देखिए–

रमेश अत्यंत महात्वाकांक्षी है।

सतपुरा बड़ा भयानक वन है।

इन वाक्यों में 'अत्यंत' और 'बड़ा' प्रविशेषण हैं जिनसे क्रमशः 'चतुर' और 'भयानक' विशेषणों की विशेषता प्रकट होती है।

क्रिया

जिन शब्दों से किसी कार्य का करना या होना व्यक्त हो उन्हें क्रिया कहते हैं। जैसे- रोया, खा रहा, जायेगा आदि। उदाहरणस्वरूप अगर एक वाक्य 'मैंने खाना खाया' देखा जाये तो इसमें क्रया 'खाया' शब्द है। 'इसका नाम मोहन है' में क्रिया 'है' शब्द है। 'आपको वहाँ जाना था' में दो क्रिया शब्द हैं - 'जाना' और 'था'।

क्रिया के भी कई रूप होते हैं, जो प्रत्यय और सहायक क्रियाओं द्वारा बदले जाते हैं। क्रिया के रूप से उसके विषय संज्ञा या सर्वनाम के लिंग और वचन का भी पता चल जाता है। क्रिया वह विकारी शब्द है, जिससे किसी पदार्थ या प्राणी के विषय में कुछ विधान किया जाता है। अथवा जिस विकारी शब्द के प्रयोग से हम किसी वस्तु के विषय में कुछ विधान करते हैं, उसे क्रिया कहते हैं। जैसे–

1. घोड़ा जाता है।
2. पुस्तक मेज पर पड़ी है।
3. मोहन खाना खाता है।
4. राम स्कूल जाता है।

उपर्युक्त वाक्यों में जाता है, पड़ी है और खाता है क्रियाएँ हैं।

क्रिया के साधारण रूपों के अंत में ना लगा रहता है जैसे-आना, जाना, पाना, खोना, खेलना, कूदना आदि। साधारण रूपों के अंत का ना निकाल देने से जो बाकी बचे उसे क्रिया की धातु कहते हैं। आना, जाना, पाना, खोना, खेलना, कूदना क्रियाओं में आ, जा, पा, खो, खेल, कूद धातुएँ हैं। शब्दकोश में क्रिया का जो रूप मिलता है उसमें धातु के साथ ना जुड़ा रहता है। ना हटा देने से धातु शेष रह जाती है। ठलरू त्ंरैंतउं

अन्य उदाहरण:

1. गीता गाती है।
2. बच्चा खेलता है।
3. श्याम हंसता है।
4. कीड़ा बिलबिलाता है।
5. कुत्ता भोंकता है।
6. सुधांशु शायर है।
7. विकास खाना खाता है।
8. संकल्प मेरा भाई है।

धातु

क्रिया का मूल रूप धातु कहलाता है। जैसे-लिख, पढ़, जा, खा, गा, रो, पा आदि। इन्हीं धातुओं से लिखता, पढ़ता, आदि क्रियाएँ बनती हैं।

क्रिया के भेद

क्रिया के दो भेद हैं–

1. अकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं का फल सीधा कर्ता पर ही पड़े वे अकर्मक क्रिया कहलाती हैं। ऐसी अकर्मक क्रियाओं को कर्म की आवश्यकता नहीं होती। अकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण हैं-

(1) गौरव रोता है।
(2) साँप रेंगता है।
(3) रेलगाड़ी चलती है।

कुछ अकर्मक क्रियाएँ- लजाना, होना, बढ़ना, सोना, खेलना, अकड़ना, डरना, बैठना, हँसना, उगना, जीना, दौड़ना, रोना, ठहरना, चमकना, डोलना, मरना, घटना, फाँदना, जागना, बरसना, उछलना, कूदना आदि।

2. सकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं का फल (कर्ता को छोड़कर) कर्म पर पड़ता है वे सकर्मक क्रिया कहलाती हैं। इन क्रियाओं में कर्म का होना आवश्यक हैं, सकर्मक क्रियाओं के अन्य उदाहरण हैं–

(1) मैं लेख लिखता हूँ।
(2) रमेश मिठाई खाता है।
(3) सविता फल लाती है।
(4) भँवरा फूलों का रस पीता है।

एककर्मक क्रिया–वह क्रिया जिसका केवल एक कर्म हो, एककर्मक क्रिया कहलाती है। जैसे–

वह अखबार पढ़ता है।

इसमें 'अखबार' ही एक कर्म है।

द्विकर्मक क्रिया–जिन क्रियाओं के दो कर्म होते हैं, वे द्विकर्मक क्रियाएँ कहलाती हैं। द्विकर्मक क्रियाओं के उदाहरण हैं–

(1) मैंने श्याम को पुस्तक दी।
(2) सीता ने राधा को रुपये दिए।

ऊपर के वाक्यों में 'देना' क्रिया के दो कर्म हैं। अत: देना द्विकर्मक क्रिया हैं।

प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के भेद

प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के निम्नलिखित पाँच भेद हैं–

1. सामान्य क्रिया–जहाँ केवल एक क्रिया का प्रयोग होता है वह सामान्य क्रिया कहलाती है। जैसे–

1. आप आए।
2. वह नहाया आदि।

2. संयुक्त क्रिया–जहाँ दो अथवा अधिक क्रियाओं का साथ-साथ प्रयोग हो वे संयुक्त क्रिया कहलाती हैं। जैसे-

1. सविता महाभारत पढ़ने लगी।
2. वह खा चुका।

3. नामधातु क्रिया–संज्ञा, सर्वनाम अथवा विशेषण शब्दों से बने क्रियापद नामधातु क्रिया कहलाते हैं। जैसे-हथियाना, शरमाना, अपनाना, लजाना, चिकनाना, झुठलाना आदि।

4. प्रेरणार्थक क्रिया–जिस क्रिया से यह ज्ञात हो कि कर्ता स्वयं कार्य न करके किसी अन्य को कार्य के लिए प्रेरित करता है, उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं। जैसे–

प्रबन्धक सहकर्मियों से कार्य सम्पन्न करवाता है।

अध्यापक छात्रों से श्यामपट्ट पर लिखवाता है।

यहाँ 'करवाता' व 'लिखवाता' क्रिया प्रेरणार्थक है।

प्रेरणार्थक क्रिया के भी दो रूप हैं–(क) प्रथम प्रेरणार्थक, (ख) द्वितीय प्रेरणार्थक। जैसे–

(क)श्रवण ने भिक्षुक को खाना खिलाया। (प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया)

(ख)श्रवण ने अपने पुत्र से भिक्षुक को खाना खिलवाया। (द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया)

प्रथम वाक्य में श्रवण भिक्षुक को खाना खाने के लिए प्रेरित कर रहा है, इसमें प्रेरक एक है, यह प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया है। दूसरे वाक्य में दो प्रेरक हैं–श्रवण और उसका पुत्र। श्रवण ने अपने पुत्र को तथा पुत्र ने भिक्षुक को प्रेरित किया। यहाँ द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया है।

5. पूर्वकालिक क्रिया–किसी क्रिया से पूर्व यदि कोई दूसरी क्रिया प्रयुक्त हो तो वह पूर्वकालिक क्रिया कहलाती है। जैसे-मैं अभी सोकर उठा हूँ। इसमें 'उठा हूँ' क्रिया से पूर्व 'सोकर' क्रिया का प्रयोग हुआ है। अत: 'सोकर' पूर्वकालिक क्रिया है।

विशेष–पूर्वकालिक क्रिया या तो क्रिया के सामान्य रूप में प्रयुक्त होती है अथवा धातु के अंत में 'कर' अथवा 'करके' लगा देने से पूर्वकालिक क्रिया बन जाती है। जैसे-

(1)बच्चा दूध पीते ही सो गया।

(2)लड़कियाँ पुस्तकें पढ़कर जाएँगी।

अपूर्ण क्रिया

कई बार वाक्य में क्रिया के होते हुए भी उसका अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता। ऐसी क्रियाएँ अपूर्ण क्रिया कहलाती हैं। जैसे-गाँधीजी थे। तुम हो। ये क्रियाएँ अपूर्ण क्रियाएँ है। अब इन्हीं वाक्यों को फिर से पढ़िए–

गांधीजी राष्ट्रपिता थे। तुम बुद्धिमान हो।

इन वाक्यों में क्रमशः 'राष्ट्रपिता' और 'बुद्धिमान' शब्दों के प्रयोग से स्पष्टता आ गई। ये सभी शब्द 'पूरक' हैं।

अपूर्ण क्रिया के अर्थ को पूरा करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उन्हें पूरक कहते हैं।

काल

काल भाव, आवाज और पहलू के साथ, चार गुणों में से कम से कम एक है, जो अभिव्यक्ति स्पष्ट कर सकते हैं।

काल एक अभिव्यक्ति के घटनाक्रम के साथ सामयिक सन्दर्भों का विपर्यास व्यतिरेक दर्शाते हैं। सभी भाषाएँ समान काल इस्तेमाल करती हैं - वर्तमान, भूत और भविष्य, हालांकि हमेशा इन कालों की अभिव्यक्ति का अनुवाद स्पष्ट रूप से एक भाषा से दूसरी भाषा में नहीं किया जा सकता। जबकि सभी भाषाओं में क्रिया के ठेठ रूप होते हैं जिसके द्वारा वे शब्दकोशों में पहचाने जाते हैं और क्रमबद्ध किये जाते हैं, साधारणतः सबसे आम वर्तमान काल या एक साधारण रूप, उनके काल अभिव्यक्त करने के तरीकों का इस्तेमाल, भाषाओं के बीच भिन्न है।

कुछ ऐसी भाषाएं हैं (जैसे पृथक भाषाएं, चीनी भाषा समान) जिनमें काल क्रिया रूप के माध्यम से अंतःकुंचित नहीं होता और न ही संरचनात्मक दृष्टि से अभिव्यक्त होता है, बल्कि इसके बजाय, जब भी आवश्यकता होती है तब, सामयिक क्रिया विशेषण के इस्तेमाल से अंतर्निहित किया जाता है और कुछ (जैसे जापानी भाषा) में सामयिक जानकारी अंतःकुंचित विशेषण के इस्तेमाल द्वारा प्रकट होती है। कुछ भाषाओं (जैसे रूसी) में पहलू और काल पर एक साथ संकेत करने के लिए एक एकल क्रिया अंतःकुंचित की जा सकती है।

काल के निम्नलिखित तीन भेद हैं–

1. भूतकाल

क्रिया के जिस रूप से बीते हुए समय (अतीत) में कार्य संपन्न होने का बोध हो वह भूतकाल कहलाता है। जैसे-

(1) बच्चा गया।

(2) बच्चा गया है।

(3) बच्चा जा चुका था।

ये सब भूतकाल की क्रियाएँ हैं, क्योंकि 'गया', 'गया है', 'जा चुका था', क्रियाएँ भूतकाल का बोध कराती है।

भूतकाल के भेद–कार्य हो चुकने के समय और ढंग में भिन्नता के आधार पर भूतकाल के छः भेद होते हैं–

(i) सामान्य भूत (ii) आसान्य भूत

(iii) अपूर्ण भूत (vi) पूर्ण भूत

(v) संदिग्ध भूत (iv) हेतुहेतुमद् भूत

सामान्य भूत–जहाँ क्रिया के रूप से कार्य के पूरे हो जाने का साधारण ढंग से बोध हो, वहाँ सामान्य भूतकाल होता है। जैसे–

मालिक ने नौकर को वेतन दिया।

वेतन देने का काम पूरा होने का बोध साधारण ढंग से होने के कारण यहाँ सामान्य भूत है। कुछ अन्य उदाहरण–

राजेश आया।

तुमने खाना खाया।

काजल ने गीत सुनाया।

आसन्न भूत–आसन्न का अर्थ है निकट। क्रिया के जिस रूप से यह बोध हो कि कार्य निकट भूत में (कुछ समय पूर्व) हुआ है, उसे आसन्न भूत कहते हैं। जैसे–

सुन्दर गया है।

यहाँ यह आभास होता है कि जाने का कार्य कुछ समय पूर्व ही हुआ है। 'अभी' शब्द लागने से यह भेद और भी स्पष्ट होता है। जैसे–नरेन्द्र अभी खाया है। कुछ अन्य उदाहरण–

विद्यालय खुल गयी है।

अभी आपने मुकेश के गाने सुना।

पूर्ण भूत–क्रिया के जिस रूप से यह ज्ञात हो कि कार्य पहले ही पूरा हो चुका है, उसे पूर्ण भूत कहते हैं। जैसे–

बस जा चुकी थी।

इस वाक्य में 'थी' के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि कार्य पहले ही पूरा हो चुका है, अतः यहाँ पूर्ण भूतकाल है। कुछ अन्य उदाहरण–

कृष्ण ने कंस को मारा था।

भरत ने संकुन्तला से प्यार किया था।

महात्मा गांधी ने अफ्रीका वासियों को न्याय दिलाया था।

अपूर्ण भूत–जिस क्रिया से यह ज्ञात हो कि भूतकाल में कार्य सम्पन्न नहीं हुआ था–अभी चल रहा था, उसे अपूर्ण भूत कहते हैं। जैसे–'राजेन्द्र पानी पी रहा था' वाक्य से ज्ञात होता है कि घटना तो भूतकाल की है, किन्तु जिस समय का वर्णन है, तब तक पानी पीने का कार्य पूरा नहीं हुआ था। अतः यहाँ अपूर्ण भूत है। अन्य उदाहरण–

खिलाड़ी खेल रहे थे।

अध्यापक पढ़ रहा था।

शान्ति कायम थी।

5. संदिग्ध भूत- क्रिया के जिस रूप से भूतकाल का बोध तो हो किन्तु कार्य के होने में संदेह हो वहाँ संदिग्ध भूत होता है। जैसे-

बच्चा आया होगा।

श्याम ने पत्र लिखा होगा।

कमल गया होगा।

6. हेतुहेतुमद भूत- क्रिया के जिस रूप से बीते समय में एक क्रिया के होने पर दूसरी क्रिया का होना आश्रित हो अथवा एक क्रिया के न होने पर दूसरी क्रिया का न होना आश्रित हो वहाँ हेतुहेतुमद भूत होता है। जैसे-

यदि श्याम ने पत्र लिखा होता तो मैं अवश्य आता।

यदि वर्षा होती तो फसल अच्छी होती।

2. वर्तमान काल

क्रिया के जिस रूप से कार्य का वर्तमान काल में होना पाया जाए उसे वर्तमान काल कहते हैं। जैसे–

(1) मुनि माला फेरता है।

(2) श्याम पत्र लिखता होगा।

इन सब में वर्तमान काल की क्रियाएँ हैं, क्योंकि 'फेरता है', 'लिखता होगा', क्रियाएँ वर्तमान काल का बोध कराती हैं।

इसके निम्नलिखित तीन भेद हैं–

1. सामान्य वर्तमान–क्रिया के जिस रूप से सामान्यतः यह प्रकट हो कि कार्य का समय वर्तमान में है, न कार्य के अपूर्ण होने का संकेत मिले न संदेह का, वहाँ सामान्य वर्तमान होता है। जैसे–'बच्चा खिलौनों से खेतला है।'। वाक्य

में 'खेलना' प्रस्तुत समय में है, किन्तु न तो वह अपूर्ण है और न ही अनिश्चित, अतः यहाँ सामान्य वर्तमान काल है। कुछ अन्य उदाहरण देखिए–

रमेश पुस्तक पढ़ता है। नौकर पौधों को पानी देता है।

2. अपूर्ण वर्तमान–क्रिया के जिस रूप से यह बोध हो कि कार्य अभी चल ही रहा है, समाप्त नहीं हुआ है वहाँ अपूर्ण वर्तमान होता है। जैसे-

बच्चा रो रहा है।

श्याम पत्र लिख रहा है।

कमल आ रहा है।

संदिग्ध वर्तमान–जिस क्रिया-रूप से वर्तमान काल में कार्य के होने में संदेह का बोध हो, उसे संदिग्ध वर्तमान काल कहते हैं। जैसे–'पंडित जी पूजा करा रहे होंगे। वाक्य में 'रहे होंगे' से पूजा कराने के कार्य को निश्चित रूप से नहीं कहा गया, उसमें संदेह की स्थिति बनी हुई है, अतः यहाँ संदिग्ध वर्तमान है। अन्य उदाहरण देखिए–

राजेन्द्र पढ़ता होगा।

हलवाई लड्डू बनाता होगा।

आज कार्यालय खुला होगा।

3. भविष्यत काल

क्रिया के जिस रूप से यह ज्ञात हो कि कार्य भविष्य में होगा वह भविष्यत काल कहलाता है। जैसे- (1) श्याम पत्र लिखेगा। (2) शायद आज संध्या को वह आए।

इन दोनों में भविष्यत काल की क्रियाएँ हैं, क्योंकि लिखेगा और आए क्रियाएँ भविष्यत काल का बोध कराती हैं।

इसके निम्नलिखित दो भेद हैं-

1. सामान्य भविष्यत- क्रिया के जिस रूप से कार्य के भविष्य में होने का बोध हो उसे सामान्य भविष्यत कहते हैं। जैसे–

श्याम पत्र लिखेगा।

हम घूमने जाएँगे।

2. संभाव्य भविष्यत्–क्रिया के जिस रूप से ज्ञात हो कि भविष्य में होने वाला कार्य पूर्ण रूप से निश्चित नहीं है अपितु होने की संभावना है, उसे संभाव्य

भविष्यत् कहते हैं। जैसे–'शायद वह तुम्हें मिलेगा। वाक्य में भविष्य में 'उसके' मिलने की संभावना होने से संभाव्य भविष्यत् है। अन्य उदाहरण देखिए–

संभवत: आज आंधी आयेगी।

हो सकता है कि तुल कल पटना जाओगे।

शायद कल उसका पत्र आए।

वाच्य

क्रिया के उस परिवर्तन को वाच्य कहते हैं, जिसके द्वारा इस बात का बोध होता है कि वाक्य के अन्तर्गत कर्ता, कर्म या भाव में से किसकी प्रधानता है।

यहाँ निम्नलिखित वाक्यों को ध्यान से देखें–

वह समाचार-पत्र पढ़ता है।

उससे कहानी नहीं लिखी जाती।

उससे तो दौड़ा भी नहीं गया।

इन वाक्यों में 'पढ़ता है', 'नहीं लिखी जाती', 'दौड़ा भी नहीं गया'–क्रिया के विभिन्न रूपों का विधान किया गया है। इस विधान के विषय क्रमश: कर्ता, कर्म तथा भाव हैं। इसे ही वाच्य कहा जाता है।

वाच्य के भेद–वाच्य के तीन भेद हैं–

1. **कर्तृवाच्य**- क्रिया के जिस रूप से वाक्य के उद्देश्य (क्रिया के कर्ता) का बोध हो, वह कर्तृवाच्य कहलाता है। इसमें लिंग एवं वचन प्राय: कर्ता के अनुसार होते हैं। जैसे-

बच्चा खेलता है।

घोड़ा भागता है।

इन वाक्यों में 'बच्चा', 'घोड़ा' कर्ता हैं तथा वाक्यों में कर्ता की ही प्रधानता है। अत: 'खेलता है', 'भागता है' ये कर्तृवाच्य हैं।

कर्मवाच्य–क्रिया के जिस रूप में कर्म प्रधान हो, उसे कर्मवाच्य कहते हैं। उदाहरण के लिए–

लेखकों द्वारा कहानियाँ लिखी गईं।

प्यासे को पानी दी गई।

उससे पुस्तक पढ़ी गई।

उक्त वाक्यों में कर्म प्रधान हैं तथा उन्हीं के लिए 'लिखी गईं', 'दी गई' तथा 'पढ़ी गई' क्रियाओं का विधान हुआ है, अत: यहाँ कर्मवाच्य है।

3. भाववाच्य- क्रिया के जिस रूप से वाक्य का उद्देश्य केवल भाव (क्रिया का अर्थ) ही जाना जाए वहाँ भाववाच्य होता है। इसमें कर्ता या कर्म की प्रधानता नहीं होती है। इसमें मुख्यत: अकर्मक क्रिया का ही प्रयोग होता है और साथ ही प्राय: निषेधार्थक वाक्य ही भाववाच्य में प्रयुक्त होते हैं। इसमें क्रिया सदैव पुल्लिंग, अन्य पुरुष के एक वचन की होती है।

प्रयोग–प्रयोग तीन प्रकार के होते हैं–

1. कर्तरि प्रयोग- जब कर्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुरूप क्रिया हो तो वह 'कर्तरि प्रयोग' कहलाता है। जैसे-

लड़का पत्र लिखता है।

लड़कियाँ पत्र लिखती है।

इन वाक्यों में 'लड़का' एकवचन, पुल्लिंग और अन्य पुरुष है और उसके साथ क्रिया भी 'लिखता है' एकवचन, पुल्लिंग और अन्य पुरुष है। इसी तरह 'लड़कियाँ पत्र लिखती हैं' दूसरे वाक्य में कर्ता बहुवचन, स्त्रीलिंग और अन्य पुरुष है तथा उसकी क्रिया भी 'लिखती हैं' बहुवचन स्त्रीलिंग और अन्य पुरुष है।

2. कर्मणि प्रयोग- जब क्रिया कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुरूप हो तो वह 'कर्मणि प्रयोग' कहलाता है। जैसे–

उपन्यास मेरे द्वारा पढ़ा गया।

छात्रों से निबंध लिखे गए।

युद्ध में हजारों सैनिक मारे गए।

इन वाक्यों में 'उपन्यास', 'सैनिक', कर्म कर्ता की स्थिति में हैं अत: उनकी प्रधानता है। इनमें क्रिया का रूप कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुरूप बदला है, अत: यहाँ 'कर्मणि प्रयोग' है।

भावे प्रयोग–इसमें क्रिया का रूप सदैव अन्य पुरुष, पुल्लिंग और एकवचन में रहता है, वह कर्ता या कर्म के अनुसार नहीं होता। ध्यान रखिए कि तीनों वाच्यों में भावे प्रयोग देखे जा सकते हैं। जैसे–

कर्तृवाच्य में– रमेश ने लड़के को पीटा।
रमेश ने लड़कों को पीटा।
रमेश ने लड़की को पीटा।

कर्मवाच्य में– पत्नी द्वारा पती के लिए खाना परोसा गया।
पत्नी द्वारा पती और बच्चों के लिए खाना परोसा गया।
पत्नी द्वारा सबके लिए खाना परोसा गया।

भाववाच्य में– उससे रोया नहीं गया।
उनसे रोया नहीं गया।
हमसे रोया नहीं गया।

वाच्य परिवर्तन

1. कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाना–
   (1) कर्तृवाच्य की क्रिया को सामान्य भूतकाल में बदलना चाहिए।
   (2) उस परिवर्तित क्रिया-रूप के साथ काल, पुरुष, वचन और लिंग के अनुरूप जाना क्रिया का रूप जोड़ना चाहिए।
   (3) इनमें 'से' अथवा 'के द्वारा' का प्रयोग करना चाहिए। जैसे-

कर्तृवाच्य कर्मवाच्य–

श्यामा उपन्यास लिखती है। श्यामा से उपन्यास लिखा जाता है।
श्यामा ने उपन्यास लिखा। श्यामा से उपन्यास लिखा गया।
श्यामा उपन्यास लिखेगी। श्यामा से (के द्वारा) उपन्यास लिखा जाएगा।

2. कर्तृवाच्य से भाववाच्य बनाना–
   (1) इसके लिए क्रिया अन्य पुरुष और एकवचन में रखनी चाहिए।
   (2) कर्ता में करण कारक की विभक्ति लगानी चाहिए।
   (3) क्रिया को सामान्य भूतकाल में लाकर उसके काल के अनुरूप जाना क्रिया का रूप जोड़ना चाहिए।
   (4) आवश्यकतानुसार निषेधसूचक 'नहीं' का प्रयोग करना चाहिए। जैसे-

कर्तृवाच्य भाववाच्य–

बच्चे नहीं दौड़ते। बच्चों से दौड़ा नहीं जाता।
पक्षी नहीं उड़ते। पक्षियों से उड़ा नहीं जाता।
बच्चा नहीं सोया। बच्चे से सोया नहीं जाता।

क्रिया-विशेषण

जिन शब्दों से क्रिया की विशेषता का पता चलता है उन्हें क्रियाविशेषण कहते हैं। जैस - वह धीरे-धीरे चलता है। इस वाक्य में 'चलता' क्रिया है और 'धीरे-धीरे' उसकी विशेषता बता रहा है। अत: 'धीरे-धीरे' क्रियाविशेषण है।

अर्थानुसार क्रिया-विशेषण के निम्नलिखित चार भेद हैं–

1. कालवाचक क्रिया-विशेषण- जिस क्रिया-विशेषण शब्द से कार्य के होने का समय ज्ञात हो वह कालवाचक क्रिया-विशेषण कहलाता है। इसमें बहुधा ये शब्द प्रयोग में आते हैं- यदा, कदा, जब, तब, हमेशा, तभी, तत्काल, निरंतर, शीघ्र, पूर्व, बाद, पीछे, घड़ी-घड़ी, अब, तत्पश्चात्, तदनंतर, कल, कई बार, अभी फिर कभी आदि।

2. स्थानवाचक क्रिया-विशेषण- जिस क्रिया-विशेषण शब्द द्वारा क्रिया के होने के स्थान का बोध हो वह स्थानवाचक क्रिया-विशेषण कहलाता है। इसमें बहुधा ये शब्द प्रयोग में आते हैं- भीतर, बाहर, अंदर, यहाँ, वहाँ, किधर, उधर, इधर, कहाँ, जहाँ, पास, दूर, अन्यत्र, इस ओर, उस ओर, दाएँ, बाएँ, ऊपर, नीचे आदि।

3. परिमाणवाचक क्रिया- विशेषण-जो शब्द क्रिया का परिमाण बतलाते हैं वे 'परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण' कहलाते हैं। इसमें बहुधा थोड़ा-थोड़ा, अत्यंत, अधिक, अल्प, बहुत, कुछ, पर्याप्त, प्रभूत, कम, न्यून, बूँद-बूँद, स्वल्प, केवल, प्रायः अनुमानतः, सर्वथा आदि शब्द प्रयोग में आते हैं।

कुछ शब्दों का प्रयोग परिमाणवाचक विशेषण और परिमाणवाचक क्रिया-विशेषण दोनों में समान रूप से किया जाता है। जैसे-थोड़ा, कम, कुछ काफी आदि।

4. रीतिवाचक क्रिया-विशेषण- जिन शब्दों के द्वारा क्रिया के संपन्न होने की रीति का बोध होता है वे 'रीतिवाचक क्रिया-विशेषण' कहलाते हैं। इनमें बहुधा ये शब्द प्रयोग में आते हैं- अचानक, सहसा, एकाएक, झटपट, आप ही, ध्यानपूर्वक, धड़ाधड़, यथा, तथा, ठीक, सचमुच, अवश्य, वास्तव में, निःसंदेह, बेशक, शायद, संभव हैं, कदाचित, बहुत करके, हाँ, ठीक, सच, जी, जरूर, अतएव, किसलिए, क्योंकि, नहीं, न, मत, कभी नहीं, कदापि नहीं आदि।

संबंधबोधक अव्यय

जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम का संबंध वाक्य के अन्य शब्दों के साथ बताते हैं उन्हें संबंधबोधक कहते हैं। जो अविकारी शब्द संज्ञा, सर्वनाम के बाद आकर वाक्य के दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध बताए उसे संबंधबोधक कहते हैं।

अर्थ के अनुसार संबंधबोधक अव्यय के निम्नलिखित भेद हैं–

1. **कालवाचक** – पूर्व, उपरान्त, बाद आदि।
2. **स्थानवाचक** – पीछे, आगे, नीचे, ऊपर, पास आदि।
3. **दिशावाचक** – ओर, तरफ़, आदि।
4. **तुलनावाचक** – अपेक्षा, आदि।
5. **साधनवाचक** – द्वारा, के हाथ, सहारे आदि।
6. **कारणवाचक** – कारण, के मारे आदि।
7. **भिन्नतावाचक** – बिना, अलावा, सिवा आदि।
8. **विरोधवाचक** – विपरीत, विरुद्ध प्रतिकूल आदि।
9. **उद्देश्यवाचक** – के लिए, खातिर, के अर्थ आदि।
10. **संग्रहवाचक** – तक, भर, समेत, मात्र, अंतर्गत आदि।
11. **विषयवाचक** – के नाम, विषय, बाबत आदि।
12. **सादृश्यवाचक**–समान, तुल्य, योग्य आदि।
13. **विनिमयवाचक**–बदले, जगह आदि।
14. **सहचरवाचक**–साथ, संग, सहित आदि।

क्रिया-विशेषण और सम्बन्धबोधक में अंतर–अनेक शब्द क्रिया-विशेषण भी हैं तथा सम्बन्धबोधक भी। प्रयोग में जब ये क्रिया की विशेषता प्रकट करें, तब क्रिया-विशेषण कहलाते हैं तथा जब संज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ आकर उनका वाक्य के शेष शब्दों के साथ सम्बंध बताएँ तब सम्बन्धबोधक। जैसे–'आप आगे देखिए' क्रिया-विशेषण है वहीं 'आप मेरे आगे देखिए' सम्बन्धबोधक है।

समुच्चयबोधक अव्यय

जो अव्यय दो शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को मिलाने वाले अव्यय समुच्चयबोधक अव्यय कहलाते हैं। इन्हें 'योजक' भी कहते हैं। जैसे-

श्रुति और गुंजन पढ़ रहे हैं।

मुझे टेपरिकार्डर या घड़ी चाहिए।

सीता ने बहुत मेहनत की किन्तु फिर भी सफल न हो सकी।

बेशक वह धनवान है, परन्तु है कंजूस।

इनमें 'और', 'या', 'किन्तु', 'परन्तु' शब्द आए हैं, जोकि दो शब्दों अथवा दो वाक्यों को मिला रहे हैं। अतः ये समुच्चयबोधक अव्यय हैं।

समुच्चयबोधक के दो भेद हैं–

1. समानाधिकरण समुच्चयबोधक।
2. व्यधिकरण समुच्चयबोधक।

1. समानाधिकरण समुच्चयबोधक

जिन समुच्चयबोधक शब्दों के द्वारा दो समान वाक्यांशों पदों और वाक्यों को परस्पर जोड़ा जाता है, उन्हें समानाधिकरण समुच्चयबोधक कहते हैं। जैसे- 1.सुनंदा खड़ी थी और अलका बैठी थी। 2.ऋतेश गाएगा तो ऋतु तबला बजाएगी। इन वाक्यों में और, तो समुच्चयबोधक शब्दों द्वारा दो समान शब्द और वाक्य परस्पर जुड़े हैं।

समानाधिकरण समुच्चयबोधक के भेद- समानाधिकरण समुच्चयबोधक चार प्रकार के होते हैं–

(क) संयोजक- जो शब्दों, वाक्यांशों और उपवाक्यों को परस्पर जोड़ने वाले शब्द संयोजक कहलाते हैं। और, तथा, एवं व आदि संयोजक शब्द हैं।

(ख) विभाजक- शब्दों, वाक्यांशों और उपवाक्यों में परस्पर विभाजन और विकल्प प्रकट करने वाले शब्द विभाजक या विकल्पक कहलाते हैं। जैसे-या, चाहे अथवा, अन्यथा, वा आदि।

(ग) विरोधसूचक- दो परस्पर विरोधी कथनों और उपवाक्यों को जोड़ने वाले शब्द विरोधसूचक कहलाते हैं। जैसे-परन्तु, पर, किन्तु, मगर, बल्कि, लेकिन आदि।

(घ) परिणामसूचक- दो उपवाक्यों को परस्पर जोड़कर परिणाम को दर्शाने वाले शब्द परिणामसूचक कहलाते हैं। जैसे-फलत:, परिणामस्वरूप, इसलिए, अत:, अतएव, फलस्वरूप, अन्यथा आदि।

2. व्यधिकरण समुच्चयबोधक

किसी वाक्य के प्रधान और आश्रित उपवाक्यों को परस्पर जोड़ने वाले शब्द व्यधिकरण समुच्चयबोधक कहलाते हैं।

व्यधिकरण समुच्चयबोधक के भेद- व्यधिकरण समुच्चयबोधक चार प्रकार के होते हैं–

(क) कारणसूचक- दो उपवाक्यों को परस्पर जोड़कर होने वाले कार्य का कारण स्पष्ट करने वाले शब्दों को कारणसूचक कहते हैं। जैसे- कि, क्योंकि, इसलिए, चूँकि, ताकि आदि।

(ख) संकेतसूचक- जो दो योजक शब्द दो उपवाक्यों को जोड़ने का कार्य करते हैं, उन्हें संकेतसूचक कहते हैं। जैसे- यदि....तो, जा...तो, यद्यपि.... तथापि, यद्यपि...परन्तु आदि।

(ग) उदेश्यसूचक- दो उपवाक्यों को परस्पर जोड़कर उनका उद्देश्य स्पष्ट करने वाले शब्द उद्देश्यसूचक कहलाते हैं। जैसे- इसलिए कि, ताकि, जिससे कि आदि।

(घ) स्वरूपसूचक- मुख्य उपवाक्य का अर्थ स्पष्ट करने वाले शब्द स्वरूपसूचक कहलाते हैं। जैसे-यानी, मानो, कि, अर्थात् आदि।

विस्मयादिबोधक अव्यय

जो अव्यय शब्द प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आकर आश्चर्य, शोक, घृणा आदि भावों का बोध कराते हैं, उन्हें विस्मयादिबोधक कहते हैं। जैसे–

ओहो! आप यहाँ।

हाय! मैं तो लुट गया।

इन वाक्यों के प्रारम्भ में आए हुए शब्द–'ओहो' तथा 'हाय' क्रमशः आश्चर्य, तथा शोक के भाव व्यक्त करते हैं। ये विस्मयादिबोधक हैं।

इन अविकारी शब्दों का प्रयोग वाक्य के प्रारम्भ में होता है तथा इनका वाक्य की रचना से सीधा सम्बंध नहीं होता। इन शब्दों के बाद विशेष चिऋ (!) लगता है।

प्रमुख विस्मयादिबोधक शब्द निम्नलिखित हैं–

विस्मयबोधक–ओहो!, क्या!, ऐ!, अरे! आदि।

हर्षबोधक–शाबाश!, धन्य-धन्य!, अहा!, वाह-वाह! आदि।

शोकबोधक–राम-राम!, हे भगवान!, हाय!, आह!, ओह!, हे राम! आदि।

घृणाबोधक–थू-थू!, हुर-हुर!, छिः छिः!, धिक्! आदि

भयबोधक–ओह!, बाप रे! आदि।

स्वीकारबोधक–ठीक!, जी हाँ!, अच्छा!, हाँ-हाँ! आदि।

शब्द-रचना

शब्द-संरचना का आशय नये शब्दोँ का निर्माण, शब्दोँ की बनावट और शब्द-गठन से है। हिन्दी मेँ दो प्रकार के शब्द होते हैं–रूढ और यौगिक। शब्द रचना की दृष्टि से केवल यौगिक शब्दों का अध्ययन किया जाता है। यौगिक

शब्दों मेँ ही उपसर्ग और प्रत्यय का प्रयोग करके नये शब्दोँ की रचना होती है।

शब्द रचना के चार प्रकार हैं–

उपसर्ग

भाषा में शब्दों का निर्माण अनेक प्रकार से होता है। हम पहले पढ़ चुके हैं कि शब्द अनेक प्रकार के होते हैं–यौगिक, योगरूढ़, देशज, विदेशी आदि। संरचना की दृष्टि से यौगिक और योगरूढ़ समान हैं। इन शब्दों की रचना निम्नलिखित चार प्रकार से हो सकती है–

(क) उपसर्ग लगाकर (ख) प्रत्यय लगाकर

(ग) समास द्वारा (घ) संधि द्वारा

ध्यान रहे, कुछ शब्दों में उपसर्ग तथा प्रत्यय दोनों लगाए जाते हैं। शब्द-रचना के उपर्युक्त चार प्रकारों पर क्रमशः विस्तार से विचार किया जाएगा।

उपसर्ग (Prefix)**से शब्द-रचना–**उपसर्ग उन शब्दांशों को कहते हैं, जो किसी शब्द के प्रारम्भ में जुड़कर उसके अर्थ में विशेषता ला देते हैं।

उदाहरण के लिए–अप (अपमान), अनु (अनुकरण), दुर् (दुर्दशा) आदि उपसर्ग हैं।

उपसर्ग	अर्थ-विशेषता	उदाहरण
अप	बुरा या हीन	अपमान, अपकार, अपयश,
अव	बुरा या हीन	अवगुण, अवनति, अवज्ञा
अति	अधिक	अतिरिक्त, अत्यधिक, अत्याचार
अधि	ऊपर, श्रेष्ठ	अधिकारी, अध्यक्ष, अधिपति
आ	तक, समेत	आजन्म, आमरण, आचरण
दुर्	बुरा, कठिन	दुर्घटना, दुर्दशा, दुर्गम
दुस्	कठिन	दुस्साहस, दुस्तर, दुष्चरित्र
निर्	बिना	निर्धन, निर्गुण, निर्दय
निस्	रहित	निस्संदेह, निस्वार्थ, निस्सार
नि	अभाव, अधिक	निषेध, निवारण, नितांत
अभि	सामने	अभिमुख, अभिमान, अभ्यागत
उत्	ऊपर, श्रेष्ठ	उत्तर, उत्कर्ष, उत्सर्ग
प्र	अधिक	प्रगति, प्रभाव प्रबल

प्रति	विरुद्ध, हरएक	प्रतिकूल, प्रतिकार, प्रतिदिन
उप	गौण	उपवन, उपमंत्री, उपनाम
परि	चारों ओर	परिसर, परिपूर्ण, परिक्रमा
वि	विशेष, अभाव	विशुद्ध, विज्ञान, वियोग
अनु	पीछे	अनुकरण, अनुचर, अनुज
सम	अच्छा, सामने	सम्मति, सम्पूर्ण, सम्मुख
परा	उल्टा, पीछे	पराजय, पराभव, पराधीन

(ख) हिन्दी के उपसर्ग–ये प्राय: संस्कृत उपसर्गों के अपभ्रंश मात्र ही हैं।

उपसर्ग	**अर्थ-विशेषता**	**उदाहरण**
अ	अभाव, निषेध	अचेत, अछूत, अथाह
अन	अभाव, निषेध	अनपढ़ अनहोनी, अनजान
अध	आधा	अधपका, अधिखिला, अधमरा
उन	कम	उनतीस, उनचास, उनसठ
कु	बुरा	कुढंग, कुठौर, कुचैला
चौ	चार	चौराहा, चौपाया, चौकोर
नि	रहित	निडर, निकम्मा, निपूता
पर	दूसरा, बाद का	परपुरुष, परलोक, परोपकार
भर	पूरा	भरपेट, भरपूर, भरसक
सु	अच्छा	सुगंध, सुडौल, सुफल

(ग) उर्दू के उपसर्ग–

उपसर्ग	**अर्थ-विशेषता**	**उदाहरण**
अल	निश्चित	अलबेला, अलबत्ता, अलमस्त
बद	बुरा	बदबू, बदसूरत, बदकिस्मत
बे	रहित	बेईमान, बेचैन, बेजान
हर	प्रति	हरएक, हररोज़, हरघड़ी
ना	नहीं	नालायक, नापसंद, नाचीज़
ग़ैर	निषेध	ग़ैरहाजिर, ग़ैरसरकारी, ग़ैरजरूरी
खुश	अच्छा	खुशबू, खुशदिल, खुशनसीब
कम	थोड़ा	कमजोर, कमअक्ल, कमबख्त

हम	साथ, समान	हमउम्र, हमवतन, हमदर्द
ला	रहित	लापता, लाचार, लापरवाह
दर	में	दरअसल, दरहकीकत, दरमियान
सर	मुख्य	सरपंच, सरदार, सरहद

(घ) उपसर्ग की तरह प्रयुक्त होने वाले संस्कृत अव्यय–

अव्यय	अर्थ-विशेषता	उदाहरण
अन	रहित	अनजान, अनर्थ, अनादि
अधः	नीचे	अधःपतन, अधोमुख, अधोगति
कु	बुरा	कुकर्म, कुविचार, कुपात्र
स	सहित	सजल, सहर्ष, सन्मार्ग
सह	साथ	सहयोग, सहपाठी, सहोदर
चिर	पुराना	चिरकाल, चिरायु, चिरन्तन
बहिः	बाहर	बहिर्मुख, बहिष्कार, बहिर्गमन
पुरा	पुराना, पहला	पुरातन, पुरातत्त्व, पुराचीन
पुनः	फिर	पुनर्जन्म, पुनर्निर्माण, पुनर्विवाह

प्रत्यय

प्रत्यय वे शब्द हैं, जो दूसरे शब्दों के अन्त में जुड़कर, अपनी प्रकृति के अनुसार, शब्द के अर्थ में परिवर्तन कर देते हैं। प्रत्यय शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है–प्रति. अय। प्रति का अर्थ होता है 'साथ में, पर बाद में' और अय का अर्थ है 'चलने वाला', अतः प्रत्यय का अर्थ होता है साथ में पर बाद में चलने वाला। जिन शब्दों का स्वतंत्र अस्तित्त्व नहीं होता वे किसी शब्द के पीछे लगकर उसके अर्थ में परिवर्तन कर देते हैं।

प्रत्यय का अपना अर्थ नहीं होता और न ही इनका कोई स्वतंत्र अस्तित्त्व होता है। प्रत्यय अविकारी शब्दांश होते हैं, जो शब्दों के बाद में जोड़े जाते है।कभी कभी प्रत्यय लगाने से अर्थ में कोई बदलाव नहीं होता है। प्रत्यय लगने पर शब्द में संधि नहीं होती, बल्कि अंतिम वर्ण में मिलने वाले प्रत्यय में स्वर की मात्र लग जाएगी लेकिन व्यंजन होने पर वह यथावत रहता है।

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं–

1. कृत प्रत्यय।
2. तद्धित प्रत्यय।

1. कृत प्रत्यय

जो प्रत्यय धातुओं के अंत में लगते हैं वे कृत प्रत्यय कहलाते हैं। कृत प्रत्यय के योग से बने शब्दों को (कृत्अंत) कृदंत कहते हैं। जैसे–राखन्हारा=राखनहारा, घट्इया=घटिया, लिख्आवट=लिखावट आदि।

(क) कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय–जिन कृत् प्रत्ययों से क्रिया करने वाले अर्थात् कर्ता का बोध हो, उन्हें कर्तृवाचक कृत प्रत्यय कहते हैं। जैसे–

प्रत्यय	*शब्द-रूप*
अक्कड़	भुलक्कड़, पियक्कड़, बुझक्कड़
इया	गढ़िया, जड़िया, धुनिया
ऊ	रट्टू, बिगाऊ, खाऊ
वैया	गवैया, लुटैया, खवैया
हारा	पालनहारा, सोवनहारा, राखनहारा
आड़ी	खिलाड़ी, अनाड़ी, अगाड़ी

(ख) कर्मवाचक कृत प्रत्यय– जिन प्रत्ययों से कर्मवाचक शब्दों की रचना होती है, उन्हें कर्मवाचक कृत् प्रत्यय कहते हैं। जैसे–

औना	बिछौना, खिलौना
नी	ओढ़नी, सुंघनी

(ग) करणवाचक कृत् प्रत्यय–जिन प्रत्ययों से क्रिया के करण अर्थात् साधन का बोध हो, वे करणवाचक कृत प्रत्यय कहलाते हैं। जैसे–

अन	बेलन, झाड़न, बंधन
ऊ	झाड़ू
नी	कतरनी, सुमरनी, धौंकनी

(घ) भाववाचक कृत् प्रत्यय–जिन कृत् प्रत्ययों से भाववाचक संज्ञाएँ बनें, वे भाववाचक कृत् प्रत्यय कहलाते हैं। जैसे–

अन	मिलन, जलन, मनन
आई	पढ़ाई, सिलाई लड़ाई
आवा	पछतावा, भुलावा, छलावा
आवट	लिखावट, सजावट
आहट	घबराहट, चिल्लाहट, बिलबिलाहट

(ड.) क्रियार्थक कृत् प्रत्यय–जिन कृत् प्रत्ययों से क्रिया शब्द वाले विशेषण अथवा विशेष अर्थ वाली क्रियाएँ बनें, उन्हें क्रियार्थक कृत् प्रत्यय कहते हैं। जैसे–

ता	चलता, बहता, चढ़ता
ता हुआ	खाता हुआ, जाता हुआ, पढ़ता हुआ
ते ही	खाते ही, उठते ही, बैठते ही
ते-ते	चलते-चलते, हँसते-हँसते, गाते-गाते

2. तद्धित प्रत्यय

जो प्रत्यय संज्ञा, सर्वनाम अथवा विशेषण के अंत में लगकर नए शब्द बनाते हैं तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं। इनके योग से बने शब्दों को 'तद्धितांत' अथवा तद्धित शब्द कहते हैं। जैसे-अपना़पन=अपनापन, दानव़ता=दानवता आदि।

(क) भाववाचक तद्धित–जिनके योग से शब्द भाववाचक संज्ञाएँ बन जाते हैं। जैसे–

प्रत्यय	*शब्द-रूप*
आहट	कड़वाहट, चिकनाहट, गरमाहट
पन	बचपन, लड़कपन, बालपन
आस	मिठास, भड़ास, खटास
ई	भलाई, बुराई, अच्छाई
ता	पशुता, सुन्दरता, दासता
त्व	कवित्व, अपनत्व, देवत्व

(ख) कर्तृवाचक तद्धित–जिस तद्धित से किसी कार्य के करने वाले (कर्तत्व) का बोध हो। जैसे–

गर	बाजीगर, जादूगर, कारीगर
वान	गाड़ीवान, कोचवान, धनवान
क	लेखक, पाठक, सचेतक
कार	कलाकार, साहित्यकार, पत्रकार
आर	लुहार, सुनार
वाला	ताँगेवाला, घरवाला, सब्जीवाला
इया	रसोइया, आढ़तिया, सुखिया
एरा	सपेरा, ठठेरा, चितेरा

(ग) सम्बन्धवाचक तद्धित–जिन प्रत्ययों के योग से किसी संबंध का बोध हो। जैसे–

ई	पंजाबी, गुजराती, लुधियानवी
एरा	चचेरा, ममेरा, फुफेरा
एक	धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक

(घ) ऊनता-वाचक तद्धित–जिन प्रत्ययों से छोटेपन का बोध हो। जैसे–

ई	टोकरी, पहाड़ी, ढोलकी
इया	डिबिया, लुटिया, खटिया
ड़ा	बछड़ा, मुखड़ा, दुखड़ा
ड़ी	गठड़ी, संदूकड़ी, टुकड़ी
री	छतरी, कोठरी, बाँसुरी

(ड.) गुणवाचक तद्धित–जिन प्रत्ययों से किसी गुण का बोध हो। जैसे–

आ	भूखा, ठंडा, मीठा
ई	लोभी, जंगली, भारी
आऊ	उपजाऊ, पंडिताऊ
ईला	रंगीला, रसीला, चमकीला
ऊ	बाज़ारू, पेटू, पढ़ाकू
लु	कृपालु, दयालु, श्रद्धालु
वी	यशस्वी, तपस्वी, तेजस्वी

(च) क्रमवाचक तद्धित–जिन प्रत्ययों से क्रम का बोध हो। जैसे–

वाँ	पाँचवाँ, बीसवाँ, सौवाँ
सरा	दूसरा, तीसरा
हरा	इकहर, दुहरा, तिहरा

(छ) अपत्यवाचक तद्धित–वंशज या अनुयायी आदि का बोध कराने वाले प्रत्यय इस वर्ग में आते हैं जैसे–

अ	(रघु) से राघव, (पांडु से) पांडव,
इय	(गंगा से) गांगेय, (राधा से) राधेय
इ	दाशरथि, मारुति

ई	आर्यसमाजी, सनातनी, दयानंदी
य	(दिति से) दैत्य, (अदिति से) आदित्य

इनके अतिरिक्त कुछ प्रत्यय स्त्रीलिंग वाचक (ई, लड़का से लड़की आदि) तथा बहुवचन वाचक (एँ, कन्या से कन्याएँ आदि) भी होते हैं जिनकी चर्या यथास्थान की गई है।

कुछ शब्दों में उपसर्ग तथा प्रत्यय दोनों का योग होता है। जैसे–बदनसीबी = बद + नसीब + ई।

संधि

संधि-संधि शब्द का अर्थ है मेल। दो निकटवर्ती वर्णों के परस्पर मेल से जो विकार (परिवर्तन) होता है वह संधि कहलाता है। जैसे-सम्+तोष=संतोष। देव+इंद्र=देवेंद्र। भानु+उदय=भानूदय।

संधि के भेद-संधि तीन प्रकार की होती हैं-

1. स्वर संधि।
2. व्यंजन संधि।
3. विसर्ग संधि।

1. स्वर संधि

दो स्वरों के मेल से होने वाले विकार (परिवर्तन) को स्वर-संधि कहते हैं। जैसे-विद्या + आलय = विद्यालय।

स्वर-संधि पाँच प्रकार की होती हैं–

1. दीर्घ संधि–जब दो सवर्ण, ऋस्व या दीर्घ, स्वरों का मेल होता है तो वे दीर्घ सवर्ण स्वर बन जाते हैं। इसे दीर्घ स्वर-संधि कहते हैं।

उदाहरण देखें–

(क)	अ + अ = आ	सत्य + अर्थ	= सत्यार्थ
	अ + आ = आ	शिव + आलय	= शिवालय
	आ + अ = आ	विद्या + अर्थी	= विद्यार्थी
	आ + आ = आ	विद्या + आलय	= विद्यालय
(ख)	इ + इ = ई	रवि + इन्द्र = रवीन्द्र	
	इ + ई = ई	मुनि + ईश = मुनीश	
	ई + इ = ई	मही + इन्द्र = महीन्द्र	
	ई + ई = ई	रजनी + ईश = रजनीश	

(ग) उ + उ = ऊ भानु + उदय = भानूदय
उ + ऊ = ऊ लघु + ऊर्मि = लघूर्मि
ऊ + उ = ऊ वधू + उत्सव = वधूत्सव
ऊ + ऊ = ऊ भु + ऊर्ध्व = भूर्ध्व

2. गुण संधि–अ, आ के साथ इ, ई का मेल होने प 'ए'(उ, ऊ का मेल होने पर 'ओ'(ऋ का मेल होने पर 'अर्' हो जाने का नाम गुण संधि है। जैसे–

(क) अ + इ = ए देव + इन्द्र = देवेन्द्र
आ + ई = ए देव + ईश = देवेश
आ + इ = ए महा + इन्द्र = महेन्द्र
आ + ई = ए रमा + ईश = रमेश
अ + उ = ओ सूर्य + उदय = सूर्योदय
अ + ऊ = ओ सागर + ऊर्मि = सागरोर्मि
आ + उ = ओ महा + उत्सव = महोत्सव
अ + ऋ = अर् देव + ऋषि = देवर्षि
आ + ऋ = अर् महा + ऋषि = महर्षि

3. वृद्धि संधि–अ, आ, का मेल ए, ऐ के साथ होने से 'ऐ' तथा ओ, औ के साथ होने से 'औ' में परिवर्तन को वृद्धि संधि कहते हैं। जैसे–

अ + ए = ऐ लोक + एषणा = लोकैषणा
अ + ऐ = ऐ मत + ऐक्य = मतैक्य
आ + ए = ऐ सदा + एव = सदैव
आ + ऐ = ऐ महा + ऐश्वर्य = महैश्वर्य
अ + ओ = औ वन + ओषधि = वनौषधि
अ + औ = औ देव + औदार्य = देवौदार्य
आ + ओ = औमहा + ओषधि = महौषधि
आ + औ = औमहा + औत्सुक्य = महौत्सुक्य

4. यण संधि–इ, ई, उ, ऊ या ऋ का मेल यदि असमान स्वर से होता है तो इ, ई को 'य'(उ, ऊ को 'व' और ऋ को 'र' हो जाता है। जैसे–

(क) इ + अ = य यदि + अपि = यद्यपि
इ + आ = या इति + आदि = इत्यादि
ई + अ = य देवी + अर्पण = देव्यर्पण
ई + आ = या नदी + आगमन = नद्यागमन

(ख) उ + अ = व अनु + अय = अन्वय
उ + आ = वा सु + आगत = स्वागत
उ + इ = वि अनु + इत = अन्वित
उ + ए = वे अनु + एषण = अन्वेषण
(ग) ऋ + आ = रा पितृ + आज्ञा = पित्राज्ञा

5. अयादि संधि–ए, ऐ तथा ओ, औ का मेल किसी अन्य स्वर के साथ होने से क्रमशः अय्, आय् तथा अव्, आव् होने को अयादि संधि कहते हैं। जैसे–

ए + अ = य ने + अन = नयन
ऐ + अ = य गै + अक = गायक
ओ + अ = व भो + अन = भवन
औ + उ = वु भौ + उक = भावुक

2. व्यंजन संधि

व्यंजन का व्यंजन से अथवा किसी स्वर से मेल होने पर जो परिवर्तन होता है उसे व्यंजन संधि कहते हैं। जैसे-शरत्+चंद्र=शरच्चंद्र।

एक व्यंजन के दूसरे व्यंजन या स्वर से मेल को व्यंजन-संधि कहते हैं। जैसे–

सत् + जन = सज्जन (दोनों व्यंजन)
षट् + आनन = षडानन (एक स्वर तथा एक व्यंजन)

व्यंजन-संधि के मुख्य नियम

1. किसी वर्ग के पहले वर्ण (क्, च्, ट्, त्, प्) का मेल किसी स्वर या वर्ग के तीसरे, चौथे वर्ण या र ल व में से किसी वर्ण से हो तो वर्ग का पहला वर्ण स्वयं ही तीसरे वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। यथा–

दिक् + गज = दिग्गज (वर्ग के तीसरे वर्ण से संधि)
षट् + आनन = षडानन (किसी स्वर से संधि)
षट् + रिपु = षड्रिपु (र से संधि)

अन्य उदाहरण

जगत् + ईश = जगदीश तत् + अनुसार = तदनुसार
वाक् + दान = वाग्दान दिक् + दर्शन = दिग्दर्शन

2. किसी वर्ग के पहले वर्ण (क् च् ट् त् प्) का मेल अनुनासिक वर्ण से होने पर वह वर्ण उसी वर्ग का पाँचवाँ वर्ण बन जाता हैं। जैसे–

वाक् + मय = वाङ्मय उत् + नयन = उन्नयन

जगत् + नाथ = जगन्नाथ तत् + मय = तन्मय

3. त् या द् का मेल च या छ से होने पर त् या–के स्थान पर च् होता है/ज या झ से होने पर ज्/ ट या ठ से होने पर ट्/ ड या ढ से होने पर ड् और ल होने पर ल् होता है। उदाहरण–

जगत् + छाया = जगच्छाया उत् + चारण = उच्चारण

सत् + जन = सज्जन तत् + लीन = तल्लीन

4. त् का मेल किस स्वर, ग, घ, द, ध, ब, भ, र से होने पर त् के स्थान पर द् हो जाता है। जैसे–

सत् + इच्छा = सदिच्छा जगत् + ईश = जगदीश

तत् + रूप = तद्रूप भगवत् + भक्ति = भगवद् भक्ति

5. त् या द् का मेल श से होने पर त् या द् के स्थान पर च् और श के स्थान पर छ हो जाता है। जैसे–

उत् + श्वास = उच्छवास सत् + शास्त्र = सच्छास्त्र

6. त् या द् का मेल ह से होने पर त् या द् के स्थान पर द् और ह के स्थान पर ध हो जाता है। जैसे–

पद् + हति = पद्धति उत् + हार = उद्धार

7. स्वर के साथ छ का मेल होने पर छ के स्थान पर 'च्छ' हो जाता है। जैसे–

आ + छादन = आच्छादन परि + छेद = परिच्छेद

8. म् का क से म तक किसी वर्ण से मेल होने पर म् के स्थान पर उस वर्ण वाले वर्ग का पाँचवाँ वर्ण हो जाएगा। जैसे–

सम् + तुष्ट = सन्तुष्ट सम् + योग = संयोग

3. विसर्ग-संधि

विसर्ग (:) के बाद स्वर या व्यंजन आने पर विसर्ग में जो विकार होता है उसे विसर्ग-संधि कहते हैं। जैसे-मन: + अनुकूल = मनोनुकूल।

विसर्ग-संधि के मुख्य नियम

(क)विसर्ग के पहले यदि 'अ' और बाद में भी 'अ' अथवा वर्गों के तीसरे, चौथे पाँचवें वर्ण, अथवा य, र, ल, व हो तो विसर्ग का ओ हो जाता है। जैसे–

मनः + अनुकूल = मनोनुकूल अधः + गति = अधोगति मनः + बल = मनोबल

(ख)विसर्ग से पहले अ, आ को छोड़कर कोई स्वर हो और बाद में कोई स्वर हो, वर्ग के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्ण अथवा ऱ, र, ल, व, ह में से कोई हो तो विसर्ग का र या ँ हो जाता है। जैसे–

निः + आहार = निराहार निः + आशा = निराशा निः + धन = निर्धन

(ग)विसर्ग से पहले कोई स्वर हो और बाद में च, छ या श हो तो विसर्ग का श हो जाता है। जैसे–

निः + चल = निश्चल निः + छल = निश्छल दुः + शासन = दुश्शासन

(घ)विसर्ग के बाद यदि त या स हो तो विसर्ग स् बन जाता है। जैसे–

नमः + ते = नमस्ते निः+संतान = निस्संतान दुः + साहस = दुस्साहस

(ङ) विसर्ग से पहले इ, उ और बाद में क, ख, ट, ठ, प, फ में से कोई वर्ण हो तो विसर्ग का ष हो जाता है। जैसे–

निः + कलंक = निष्कलंक चतुः + पाद = चतुष्पाद निः + फल = निष्फल

(च)विसर्ग से पहले अ, आ हो और बाद में कोई भिन्न स्वर हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है। जैसे–

निः + रोग = निरोग निः + रस = नीरस

(छ)विसर्ग के बाद क, ख अथवा प, फ होने पर विसर्ग में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे–

अंतः + करण = अंतःकरण

समास

समास का तात्पर्य होता है–संछिप्तीकरण। इसका शाब्दिक अर्थ होता है छोटा रूप। अथार्त जब दो या दो से अधिक शब्दों से मिलकर जो नया और छोटा शब्द बनता है उस शब्द को समास कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो जहाँ

पर कम-से-कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ को प्रकट किया जाए वह समास कहलाता है।

संस्कृत, जर्मन तथा बहुत सी भारतीय भाषाओँ में समास का बहुत प्रयोग किया जाता है। समास रचना में दो पद होते हैं, पहले पद को 'पूर्वपद' कहा जाता है और दूसरे पद को 'उत्तरपद' कहा जाता है। इन दोनों से जो नया शब्द बनता है वो समस्त पद कहलाता है।

जैसे –

रसोई के लिए घर = रसोईघर

हाथ के लिए कड़ी = हथकड़ी

नील और कमल = नीलकमल

रजा का पुत्र = राजपुत्र।

समास के भेद

समास के चार भेद हैं–

1. अव्ययीभाव समास

जिस समास का पहला पद प्रधान हो और वह अव्यय हो उसे अव्ययीभाव समास कहते हैं। जैसे-यथामति (मति के अनुसार), आमरण (मृत्यु कर) इनमें यथा और आ अव्यय हैं।

कुछ अन्य उदाहरण–

पेट भर कर	= भरपेट
जीवन तक	= आजीवन
एक हाथ से दूसरे हाथ	= हाथोहाथ
विधि के अनुसार	= यथाविधि
डर के बिना	= निडर
रात ही रात में	= रातोरात
सामर्थ्य के अनुसार	= यथासामर्थ्य
जन्म से लेकर	= आजन्म
दिन के बाद दिन	= दिनोदिन

अव्ययीभाव समास की पहचान- इसमें समस्त पद अव्यय बन जाता है अर्थात समास होने के बाद उसका रूप कभी नहीं बदलता है। इसके साथ विभक्ति चिऋ भी नहीं लगता। जैसे-ऊपर के समस्त शब्द है।

2. तत्पुरुष समास

जिस समास का उत्तरपद प्रधान हो और पूर्वपद गौण हो उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे-तुलसीदासकृत=तुलसी द्वारा कृत (रचित)

ज्ञातव्य-विग्रह में जो कारक प्रकट हो उसी कारक वाला वह समास होता है। विभक्तियों के नाम के अनुसार इसके छह भेद हैं–

(1) कर्म तत्पुरुष गिरहकट गिरह को काटने वाला
(2) करण तत्पुरुष मनचाहा मन से चाहा
(3) संप्रदान तत्पुरुष रसोईघर रसोई के लिए घर
(4) अपादान तत्पुरुष देशनिकाला देश से निकाला
(5) संबंध तत्पुरुष गंगाजल गंगा का जल
(6) अधिकरण तत्पुरुष नगरवास नगर में वास

(क) नञ् तत्पुरुष समास

जिस समास में पहला पद निषेधात्मक हो उसे **नञ्** तत्पुरुष समास कहते हैं। जैसे–

समस्त पद समास-विग्रह समस्त पद समास-विग्रह
असभ्य न सभ्य अनंत न अंत
अनादि न आदि असंभव न संभव

(ख) कर्मधारय समास

जिस समास का उत्तरपद प्रधान हो और पूर्ववद व उत्तरपद में विशेषण-विशेष्य अथवा उपमान-उपमेय का संबंध हो वह कर्मधारय समास कहलाता है। जैसे-

समस्त पद	*समास-विग्रह*	*समस्त पद*	*समात विग्रह*
चंद्रमुख	चंद्र जैसा मुख	कमलनयन	कमल के समान नयन
देहलता	देह रूपी लता	दहीबड़ा	दही में डूबा बड़ा
नीलकमल	नीला कमल	पीतांबर	पीला अंबर (वस्त्र)
सज्जन	सत् (अच्छा) जन	नरसिंह	नरों में सिंह के समान

(ग) द्विगु समास

जिस समास का पूर्वपद संख्यावाचक विशेषण हो उसे द्विगु समास कहते हैं। इससे समूह अथवा समाहार का बोध होता है। जैसे-

समस्त पद	*समात-विग्रह*	*समस्त पद*	*समास विग्रह*
नवग्रह	नौ ग्रहों का मसूह	दोपहर	दो पहरों का समाहार
त्रिलोक	तीनों लोकों का समाहार	चौमासा	चार मासों का समूह
नवरात्र	नौ रात्रियों का समूह	शताब्दी	सौ अब्दो (सालों) का समूह
अठन्नी	आठ आनों का समूह		

3. द्वंद्व समास

जिस समास में दोनों पद प्रधान हों और दोनों को मिलाने वाला समुच्चयबोधक अव्यय लुप्त हो, उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। जैसे–

माता और पिता	=	माता–पिता
गंगा और यमुना	=	गंगा–यमुना
ऊँचा और नीचा	=	ऊँच–नीच
सीता और राम	=	सीता–राम
नर और नारी	=	नर–रानी
घी और शक्कर	=	घी–शक्कर

4. बहुब्रीहि समास

जिस समास के दोनों पद अप्रधान हों और समस्तपद के अर्थ के अतिरिक्त कोई सांकेतिक अर्थ प्रधान हो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। जैसे–

समस्त पद	*समास-विग्रह*
दशानन	दश है आनन (मुख) जिसके अर्थात् रावण
नीलकंठ	नीला है कंठ जिसका अर्थात् शिव
सुलोचना	सुंदर है लोचन जिसके अर्थात् मेघनाद की पत्नी
पीतांबर	पीले है अम्बर (वस्त्र) जिसके अर्थात् श्रीकृष्ण
लंबोदर	लंबा है उदर (पेट) जिसका अर्थात् गणेशजी
दुरात्मा	बुरी आत्मा वाला (कोई दुष्ट)
श्वेतांबर	श्वेत है जिसके अंबर (वस्त्र) अर्थात् सरस्वती

संधि और समास में अंतर

संधि वर्णों में होती है। इसमें विभक्ति या शब्द का लोप नहीं होता है। जैसे–देव + आलय = देवालय। समास दो पदों में होता है। समास होने

पर विभक्ति या शब्दों का लोप भी हो जाता है। जैसे–माता–पिता=माता और पिता।

कर्मधारय और बहुब्रीहि समास में अंतर– कर्मधारय में समस्त–पद का एक पद दूसरे का विशेषण होता है। इसमें शब्दार्थ प्रधान होता है। जैसे–नीलकंठ=नीला कंठ। बहुब्रीहि में समस्त पद के दोनों पदों में विशेषण–विशेष्य का संबंध नहीं होता अपितु वह समस्त पद ही किसी अन्य संज्ञादि का विशेषण होता है। इसके साथ ही शब्दार्थ गौण होता है और कोई भिन्नार्थ ही प्रधान हो जाता है। जैसे–नील+कंठ=नीला है कंठ जिसका अर्थात शिव।

पद–परिचय

वाक्यगत शब्दों के रूप और उनका पारस्परिक संबंध बताने में जिस प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है वह पद–परिचय या शब्दबोध कहलाता है। वाक्यगत प्रत्येक पद (शब्द) का व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण परिचय देना ही पद–परिचय कहलाता है।

शब्द आठ प्रकार के होते हैं–

1. **संज्ञा**– भेद, लिंग, वचन, कारक, क्रिया अथवा अन्य शब्दों से संबंध।
2. **सर्वनाम**– भेद, पुरुष, लिंग, वचन, कारक, क्रिया अथवा अन्य शब्दों से संबंध। किस संज्ञा के स्थान पर आया है (यदि पता हो)।
3. **क्रिया**– भेद, लिंग, वचन, प्रयोग, धातु, काल, वाच्य, कर्ता और कर्म से संबंध।
4. **विशेषण**– भेद, लिंग, वचन और विशेष्य की विशेषता।
5. **क्रिया–विशेषण**– भेद, जिस क्रिया की विशेषता बताई गई हो उसके बारे में निर्देश।
6. **संबंधबोधक**– भेद, जिससे संबंध है उसका निर्देश।
7. **समुच्चयबोधक**– भेद, अन्वित शब्द, वाक्यांश या वाक्य।
8. **विस्मयादिबोधक**– भेद अर्थात कौन–सा भाव स्पष्ट कर रहा है।

❐❐❐